...११, खण्ड १
सं० १, पू० सं० १२१

Kryaulam

सम्पादक :—

मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव

...र्षिक चन्दा ६॥)
...:माही चन्दा ३॥)

इस अङ्क का मूल्य १)
Price Re. 1/-

THE CHAND PRESS, LIMITED, CHANDRALOK

हिन्दी की सुप्रसिद्ध तथा चुनी हुई

पुस्तकें

हमारे यहाँ से मँगाइए !

पुस्तक	मूल्य
कविता-कौमुदी पहला भाग हिन्दी	३)
कविता-कौमुदी दूसरा भाग हिन्दी	३)
कविता कौमुदी चौथा भाग उर्दू	३)
कविता कौमुदी पाँचवाँ भाग ग्रामगीत	३)
कविता कौमुदी सातवाँ भाग बँगला	३)
काश्मीर सचित्र	५)
भूषण-ग्रन्थावली सटीक ...	१)
पथिक खण्ड काव्य	॥)
मिलन खण्ड काव्य	॥)
स्वप्न खण्ड काव्य	॥)
मानसी कविताओं का सग्रह ...	॥)
स्वप्नों से चित्र (प्रहसन और कहानियाँ)	॥।)
सद्गुरु-रहस्य	२॥)
अयोध्या काण्ड, सटीक सजिल्द	१)
हिन्दी-पद्य-रचना (पिङ्गल) ...	॥)
सुकवि कौमुदी	॥।)
चिन्तामणि	१-)
हिन्दुस्तानी कोष	३)
हिन्दुओं के व्रत और त्योहार ...	२)
कुल-लक्ष्मी (स्त्री-उपयोगी) ...	१॥)
दम्पति-सुहृद	१॥)
अङ्गरेजी-शिष्टाचार	२)
परियों की कहानियाँ	I=)
बीस कहानियाँ	२)
बालकथा कहानी बारह भाग प्रत्येक	I=)
यूरोप की कहानियाँ	२॥)
नई कहानियाँ	I=)
गुपचुप की कहानियाँ दो भाग प्रत्येक	I)
जादू की कहानियाँ	I=)
बताओ तो जानें	I)
सुभद्रा (उपन्यास)	॥)
कौन जाग रहा है	॥)
हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	I=)
मारवाड़ के गीत	I)
नीति-शिक्षावली	=)॥
हिन्दी-पत्र-शिक्षक	=)
हिन्दी प्राइमर दो भाग प्रत्येक ...	-)॥
हिन्दी प्राइमर सचित्र	-)
बालकों के लिए रीडरें चार भाग	=), ≡), I-), ॥)
कन्या-शिक्षावली चार भाग	-), =), ≡), I)

सूचीपत्र मुफ़्त मँगा लीजिए

☞ चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

विषय-सूची

...री हुई

चित्र-सूची

आ रहा है !   आ रहा है !!   आ रहा है !!!

न्यू रॉयल सिनेमा, दिल्ली में

ता० १२ नवम्बर १९३२ से

रणजीत मूवीटोन कम्पनी

का बनाया हुआ

'चाँद' के भूतपूर्व सम्पादक और हिन्दी के प्रसिद्ध कहानी-लेखक

डॉ० धनीराम प्रेम द्वारा लिखित

सम्पूर्ण बोलता, गाता, नाचता हास्यरस का फ़िल्म

(TWO IMPOSTORS)

जिसमें काम करते हैं—

सिनेमा-जगत के सुप्रसिद्ध अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ—

(१) गौरी, (२) दीक्षित, (३) मिस कमला, (४) मिस शान्ता

और जिसके डाइरेक्टर हैं—

श्री० जयन्त देसाई

यह फ़िल्म लेखक के नाटक 'प्राणेश्वरी' का फ़िल्म-रूपान्तर है। और 'चारचक्रम' से भी अधिक हँसाने वाला है। भारतीय सिनेमा-जगत के इस हँसा-हँसा कर लोट-पोट कर देने वाले अद्वितीय फ़िल्म को अवश्य देखिए। ऐसा फ़िल्म भारतवर्ष में आज तक नहीं दिखाया गया। शीघ्र ही संयुक्त-प्रान्त और पञ्जाब के अन्य नगरों में दिखाया जायगा।

बुकिङ्ग के लिए लिखिए—श्रीरणजीत फ़िल्म कम्पनी, दादर, बम्बई

'दो बदमाश' नामक फ़िल्म के कुछ दृश्य

ए-कृष्णास्वामी ट्रयूपुटो से लिखते हैं—"आपकी जड़ी से मैं पास हो गया। एक जड़ी नौकरी के लिए भेज दीजिए।" इन्हीं महात्मा लामायोगी से तिब्बत की कन्दराओं और हिमालय की गुफाओं में ३७ साल भ्रमण कर यह जड़ी और तान्त्रिक कवच मिला है, जिससे नीचे लिखे सब कार्य ज़रूर सिद्ध होंगे, इसमें सन्देह नहीं। ज़रूरत वाले मँगावें।

विशुद्ध प्रेम—के लिए इससे ज़्यादा आज़माई हुई कोई चीज़ संसार में नहीं। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए मूल्य ३॥); (२) रोग से छुटकारा—पुराना बुरे से बुरा असाध्य कोई भी रोग क्यों न हो, इससे शर्तिया आराम होता है, मूल्य ३॥); (३) मुक़द्दमा—चाहे जैसा पेचीदा हो, मगर इससे शर्तिया जीत होगी मूल्य ३॥); (४) रोज़गार-तिजारत में लाभ न होता हो, हमेशा घाटा होता हो, इससे उनका रोज़गार बढ़ेगा और लाभ होगा मूल्य ३॥); (५) नौकरी—जिनकी नौकरी नहीं लगती हो, बेकार बैठे हों या हैसियत की नौकरी न मिलती हो, ज़रूर होगी मूल्य ३॥); (६) परीक्षा—प्रमोशन में इससे ज़रूर कामयाबी मिलेगी। विद्यार्थी और नौकरपेशा ज़रूर आज़माइश करें, मूल्य ३॥); (७) तन्दुरुस्ती के लिए यह अपूर्व है, थोड़े ही समय में स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव पड़ता है, मूल्य ३॥)

मँगाते वक्त अपना नाम, काम ज़रूर लिखें। १ जड़ी का मू० ३॥), २ जड़ी का ६), डाक-ख़र्च ।=) अलग। एक जड़ी से सिर्फ़ एक ही काम होता है।

पता—विजय लौज (सेक्शन डी०), पोस्ट सलकिया, हवड़ा

पागलपन की दवा

डॉ० डब्लू सी० रॉय, एल० एम० एस० की

५० वर्ष से स्थापित मूर्च्छा, मृगी, अनिद्रा, न्यूरस्थेनिया के लिए भी मुफ़ीद है। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि—"मैं डॉ० डब्लू० सी० रॉय की पागलपन की दवा से तथा उसके गुणों से बहुत दिनों से परिचित हूँ।" मूल्य ५) फ़ी शीशी।

पता—एस० सी० रॉय एण्ड कं०
१६७।३ कार्नवालिस स्ट्रीट
या ३६ धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता

तार का पता :—"Dauphin" कलकत्ता

---
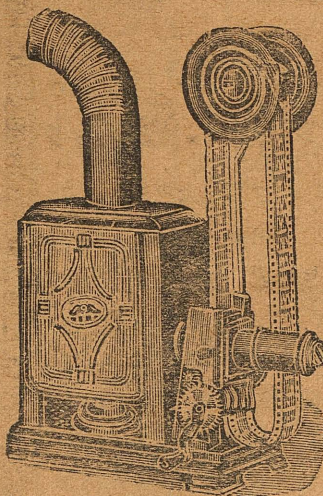
२०) या २५) रु० की नौकरी की आशा में इधर-उधर मारे-मारे फिरने के बजाय हमारे यहाँ से बायस्कोप की मैशीन मँगा कर ५) रु० रोज़ पैदा करो। मैशीन की क़ीमत खेल दिखा कर सिर्फ़ एक दिन में वसूल की जा सकती है। फ़िल्म, ३ प्लेट, मैजिक लालटेन के साथ मुफ़्त भेजा जाता है। इस पर भी मैशीन का दाम लागत मात्र ३) रु०, बढ़िया ४॥), ५॥); पैकिङ्ग-पोस्टेज अलग; फ़िल्म १२) रु० दर्जन।

यूनीवर्सल स्टोर, पोस्ट सलकिया, ज़िला हवड़ा

आश्चर्य नहीं, धोखा नहीं, बिलकुल सच
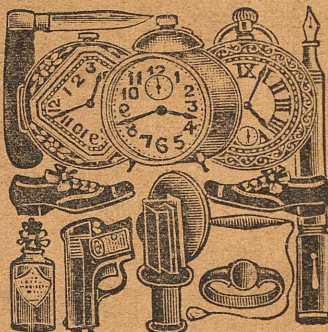
२ घड़ियाँ और सब सामान सिर्फ़ ३॥) में। हमारा ओटो दिल-ख़ुश, जो ताज़े फूलों का निकाला हुआ सार है, अपनी मस्तानी ख़ुशबू से दिल को मस्त और दिमाग़ को तर रखता है, ३० शीशी ३॥ में एक साथ ख़रीदने वाले को १ जर्मन 'बी' टाइमपीस गारण्टी १० साल, १ इन्क्रैयट पॉकेटवाच और १ आइडियल रिस्टवाच मय फ़ीता के, १ क़लम-तराश बढ़िया चाक़ू १ सोनहरी निब वाला बढ़िया फ़ाउन्टेनपेन, १ पिस्तौल, १ केमिकल गोल्ड रिङ्ग, १ पाकेट चर्ख़ा, १ जोड़ा बढ़िया जूता, जिसका नाप ऑर्डर के साथ आना चाहिए।

नोट—माल नापसन्द होने से ७ दिन के अन्दर माल फिरता लेकर दाम वापस।

पता—सूरजदीन शिवराम
नं० ६२, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता

Pioneer—

Here is a truly Wodehousian plot. A young man and his future wife are wondering whether a well-known Raja will attend their wedding ceremonies. Their question is answered by the arrival of a telegram announcing the Raja's inability to appear. But Malti, the girl, is not to be so easily robbed of her Raja, and she asks a dismissed musician from a party invited for the occasion to play the Raja.

The foolishness of the pseudo-Raja creates a number of highly amusing situations, but the arrival of the real Raja puts Malti in a fix. She succeeds, however, in persuading the Raja to say nothing and to allow his impersonator to carry on.

In the meantime the muiscian's wife arrives. She is a woman with the distressing habit of going into fits, in which state she would close her eyes and embrace the man nearest to her. The unfortunate man would be released only upon pronouncing the sesame "dearest."

During the marriage days Malti discovers her future husband in the good woman's embrace, feverishly uttering "dearest" to obtain his freedom. Malti misinterprets his predicament and in her rage refuses to listen to any explanation of an incident which is clear and of which she herself has been a witness. The pseudo-Raja, however, goes beyond the limit in his foolishness and the story ends happily. Good in places.

[लेखिका कुमारी शकुन्तला देवी गुप्ता, बी० ए०, 'हिन्दी-प्रभाकर']

स्त्रियों का जीवन आदर्श बनाने वाली अनुपम पुस्तक !

देवी-समाज में पार्वती का चरित्र जैसा अद्भुत तथा महान है, वैसा किसी का नहीं। पार्वती का पातिव्रत्य तथा सेवा-भाव स्त्री-समाज के लिए अनुपम आदर्श है। इस पुस्तक में जन्म से लेकर सारी कथाएँ बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से लिखी गई हैं। शिव जी के लिए पार्वती वन में तपस्या करने गई थीं। उस समय वन में विचरण करने वाले पशु-पक्षी किस प्रकार उनके आत्मीय बन गए थे—इसका एक दृश्य इस चित्र में देखिए।

इसी प्रकार अनेक तिरङ्गे तथा इकरङ्गे चित्र पुस्तक में दिए गए हैं। एक बार अवश्य पढ़िए ! मूल्य केवल २)

चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक, इलाहाबाद
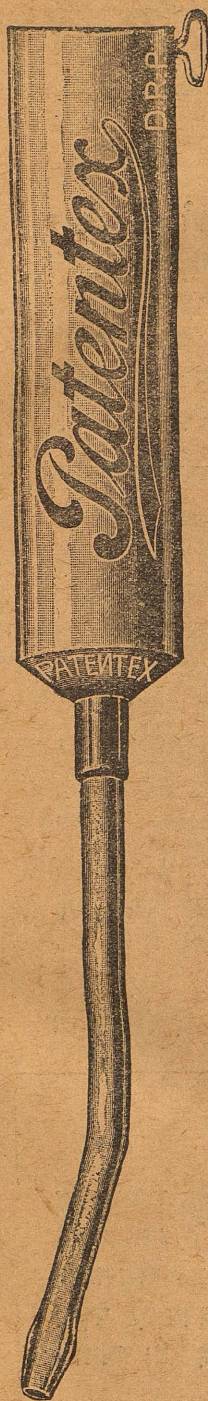
पेटेन्टेक्स

अधिक सन्तान उत्पन्न करके शक्ति-हीन हो जाने वाली माताओं के लिए एक दैवी उपहार

'पेटेन्टेक्स'

एक जैली है, जो सम्भोग के पूर्व प्रयोग में लाई जाती है। इसकी प्रयोग-विधि अन्य साधनों से सरल है और इससे थोड़े ही समय में वीर्य-कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। जर्मनी में बनाई गई इस औषधि का प्रचार सारे संसार में है। आप भी एक बार परीक्षा करके देख लीजिए। मूल्य प्रति ट्यूब का ३।)

मिलने का पता—

मालघम ब्रदर्स,

२६, कस्टम हाउस रोड, बम्बई नं० १

'रस्क'

यह एक ऐसा खाना है, जो कि कमज़ोरों और बीमारों को दिया जा सकता है। यह एक ऐसा भोजन है, जो फ़ायदे के साथ ताक़त भी देता है। आप अपने डॉक्टर से पूछ कर एक टीन तो मँगा ही लीजिए, जिसके दाम केवल १।।) हैं।

देहली बिस्कुट कं० लि०

देहली

बवासीर की अचूक दवा

अगर आप दवा करके निराश हो गए हों, तो एक बार इस पेटेण्ट दवा को भी आज़मावें। ख़ूनी या बादी, नया चाहे पुराना, १५ दिन में जड़ से आराम। ३० दिन में शरीर बलवान न हो तो चौगुना दाम वापस। मूल्य १५ दिन का ३) रु०। ३० दिन का ५) रु०। अपना पता पोस्ट तथा रेलवे का साफ़-साफ़ लिखें।

पता—शुक्र औषधालय,

लहरिया सराय, दरभङ्गा

श्वेत-कुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता! यदि इस जड़ी के तीन ही दिन के लेप से सुफ़ेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना दाम वापस दूँगा। जो चाहें –) का टिकट भेज कर प्रतिज्ञा-पत्र लिखा लें। मूल्य ३) रु०।

पता—वैद्यराज पं० महावीर पाठक,

नं० १२, दरभङ्गा

तलाशे-गुल

क्या जानें बहार आई कि ख़िज़ाँ, यह बाग़ है या वीराना है,
वह गुल ही नहीं तो कुछ भी नहीं, दिल जिसके लिए दीवाना है !

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी
प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं,
तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों
की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १	नवम्बर, १९३२	संख्या १, पूर्ण सं० १२१

मेरी प्याली

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

अपने कविता-कानन की, मैं हूँ कोयल मतवाली।
मुझसे मुखरित हो जाती, उपवन की डाली-डाली॥
मैं जिधर निकल जाती हूँ, मधुमास वहीं आता है।
नीरस जन के जीवन में, रस घोल-घोल जाता है॥

सूखे सुमनों के दल पर, मैं मधु सञ्चालन करती।
मैं प्राणहीन का अपने, प्राणों से पालन करती॥
मेरे जीवन में जानें, कितना मतवालापन है।
कितना है प्राण छलकता, कितना मधु-मिश्रित मन है॥

दोनों हाथों से भर-भर इस मधु को सदा लुटाती।
फिर भी न कभी ख़ाली है, प्याली भरती ही जाती॥

तलाशे-गुल

क्या जानें बहार आई कि ख़िज़ाँ, यह बाग़ है या वीराना है,
वह गुल ही नहीं तो कुछ भी नहीं, दिल जिसके लिए दीवाना है ।

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी
प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं,
तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों
की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १	नवम्बर, १९३२	संख्या १, पूर्ण सं० १२१

मेरी प्याली

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

अपने कविता-कानन की, मैं हूँ कोयल मतवाली।
मुझसे मुखरित हो गाती, उपवन की डाली-डाली॥
मैं जिधर निकल जाती हूँ, मधुमास वहीं आता है।
नीरस जन के जीवन में, रस घोल-घोल जाता है॥

सूखे सुमनों के दल पर, मैं मधु सञ्चालन करती।
मैं प्राणहीन का अपने, प्राणों से पालन करती॥
मेरे जीवन में जानें, कितना मतवालापन है।
कितना है प्राण छलकता, कितना मधु-मिश्रित मन है॥

दोनों हाथों से भर-भर इस मधु को सदा लुटाती।
फिर भी न कमी होती है, प्याली भरती ही जाती!!

नवम्बर, १९३२

हिन्दू जाति का कोढ़

हिन्दू-समाज में छुआछूत का बड़ा ज़ोर है। यह समाज सैकड़ों उप-जातियों में बँटा हुआ है और प्रत्येक जाति की छुटाई-बड़ाई का एक अस्पष्ट सा हिसाब लोगों के दिलों में समाया हुआ है। इस छुटाई-बड़ाई के आधार पर ही यह निश्चय किया जाता है, कि किसी एक जाति का व्यक्ति किन जाति वालों के यहाँ कच्चा खाना खा सकता है, किन जाति वालों का पक्का खाना खा सकता है, किन जाति वालों के हाथ से पानी पी सकता है और किन जाति वालों को छू सकता है! यह हिसाब क्रमशः नीचे की तरफ़ चलता जाता है और अन्त में ऐसी जातियों का नम्बर आता है, जिनके हाथ से खाना-पीना तो दूर, जिनकी छाया स्पर्श हो जाने से ही मनुष्य अपवित्र हो जाते हैं। इस जाति-विभाग की विस्तृत सूची में सर्वोच्च स्थान ब्राह्मणों का है और सबसे नीचे मेहतर, भङ्गी, चाण्डाल आदि आते हैं। कहने को तो ये तमाम जातियाँ हिन्दू कही जाती हैं और उनके धार्मिक तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तों में बहुत-कुछ समानता है, पर लौकिक व्यवहार में वे एक-दूसरे से ऐसी पृथक् रहती हैं, जैसी पृथकता विधर्मियों और विदेशियों से भी नहीं रक्खी जाती।

ये सबसे नीचे दर्जे की जातियाँ वर्तमान समय में अछूत, अस्पृश्य अथवा दलित के नाम से पुकारी जाती हैं। ये भारत के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। हमारे प्रान्तों में मेहतर, चमार, पासी, डोम, दूसाध और बेडिया आदि जातियाँ अछूत मानी जाती हैं। पञ्जाब में मेघ, ओड, चूढ़ा आदि; बम्बई प्रान्त में ढेढ़, महार आदि; मद्रास में परिया, पुलिया, होलिया, माला आदि जातियाँ अछूत मानी जाती हैं। प्राचीन हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में ऐसी तमाम जातियों के लिए केवल चाण्डाल शब्द का प्रयोग किया गया है।

अछूत जातियों की उत्पत्ति कब और किस तरह हुई, इसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार के मत प्रचलित हैं। अधिकांश लोगों की सम्मति में ये लोग अनार्य हैं। जब आर्य लोग इस देश में आए और यहाँ के आदिम निवासियों को उन्होंने जीत लिया तो उनके लिए दो ही मार्ग रह गए। उनमें से कुछ तो पहाड़ों और जङ्गलों में जाकर

रहने लगे और कुछ आर्यों के दास बन गए। इन लोगों की सभ्यता आर्यों से बहुत निकृष्ट श्रेणी की थी और उनमें तरह-तरह के अन्धविश्वास तथा अन्य कुप्रथाएँ भी प्रचलित थीं, जिनके कारण आर्यों ने उनको अपने में न मिलाया, वरन् उनके और अपने बीच में ऐसी बाधाएँ खड़ी कर दीं, जिससे शुद्ध आर्यों का उनसे कभी सम्पर्क न हो सके। वे लोग उनसे सब प्रकार की नीच सेवाएँ कराते थे, और उनको अपने निवास-स्थान से दूर रखते थे। धीरे-धीरे यह प्रथा ज़ोर पकड़ती गई तथा दास लोगों की दशा दिन पर दिन गिरती गई। अन्त में वे पशुओं की सी स्थिति को प्राप्त हो गए। मनुस्मृति हिन्दुओं का प्राचीन धर्म-ग्रन्थ है और उसमें चाण्डालों के व्यवहार के लिए जो नियम लिखे हैं, वे इस बात के प्रमाण हैं कि मनु के समय में अछूत जातियों की स्थिति बहुत गिर गई थी और उनका उच्च जाति के हिन्दुओं से मिलना-जुलना सर्वथा बन्द हो गया था। मनुस्मृति के दसवें अध्याय में चाण्डालों के लिए नियम लिखे हैं :—

(१) चाण्डाल और श्वपच (जो कुत्ते का मांस खाते थे) गाँव से बाहर रहें। वे बर्तन नहीं रख सकते। उनकी सम्पत्ति केवल कुत्ते और गधे हैं।

(२) वे मृत व्यक्तियों के शव के साथ रक्खे गए कपड़े पहिनेंगे और फूटे बर्तनों में भोजन करेंगे। उनके ज़ेवर लोहे के होंगे। वे सदा इधर-उधर घूमते रहेंगे।

(३) धार्मिक कृत्य करते समय किसी द्विजन्मा जातियों के व्यक्ति को उनसे किसी प्रकार का व्यवहार नहीं रखना चाहिए। वे आपस में ही व्यवहार रक्खें और अपने समान लोगों के साथ शादी-विवाह करें।

(४) वे किसी द्विजन्मा व्यक्ति से खाना नहीं पा सकते। उनको भोजन का पदार्थ शूद्र के हाथ से टूटे बर्तन में दिया जाना चाहिए। वे गाँवों और क़स्बों में रात के समय घूम-फिर नहीं सकते।

(५) दिन के समय वे राजा के निर्देशानुसार कोई विशेष चिन्ह धारण करके (जिससे उच्च जाति वालों से उनका अन्तर प्रकट हो सके) जीविका-निर्वाह के लिए इधर-उधर जा सकते हैं। वे गाँव से ऐसी मृत-देह को हटाएँगे जिसका कोई सम्बन्धी नहीं है।

(६) राजा की आज्ञा से और क़ानून की व्यवस्था के अनुसार वे उन लोगों को, जिन्हें प्राण-दण्ड की आज्ञा हुई है, फाँसी देंगे। प्राण-दण्ड पाने वालों के पास जो कपड़े और आभूषण होंगे वे उनको मिलेंगे।

इन नियमों से प्रकट होता है कि मनु के काल में अछूतों की कैसी दशा थी। प्राचीन ख़्याल के हिन्दू मनुस्मृति का समय बहुत पहले का मानते हैं, पर नवीन खोजों के अनुसार विचार किया जाय तो भी वह बौद्ध-काल से पहले की अवश्य होगी। बौद्ध-काल में कई सौ वर्षों के लिए अछूतों की दशा में अन्तर हुआ और समस्त भारत में मनुष्यों की समानता का मन्त्र गूँजने लगा। बुद्ध ने लोगों को समझाया कि आग चाहे चन्दन की लकड़ी की हो अथवा किसी साधारण लकड़ी की, उसमें से शिखा निकलेगी और दाहक शक्ति होगी। इसी प्रकार मनुष्य चाहे किसी कुल में उत्पन्न हुआ हो उसमें मनुष्यत्व के गुण विद्यमान होंगे। पर बौद्ध-धर्म का यह सिद्धान्त अधिक दिनों तक क़ायम न रह सका। ब्राह्मणों ने पुनः अपनी खोई हुई प्रधानता को प्राप्त करने की चेष्टा की और अपने से भिन्न जातियों को पुनः अत्यन्त कठोर बन्धनों में जकड़ दिया। ब्राह्मणों ने अपनी श्रेष्ठता को अक्षुण्ण रखने के लिए कैसे नियमों का अवलम्बन किया था, इसका आभास पाराशर स्मृति में लिखे कुछ नियमों से प्रकट होता है :—

(१) अगर कोई ब्राह्मण किसी चाण्डाल से बात करे तो उसे शुद्ध होने के लिए किसी अन्य ब्राह्मण से बात और गायत्री का जप करना आवश्यक है।

(२) अगर कोई ब्राह्मण किसी चाण्डाल के साथ शयन करे तो उसे तीन दिन तक उपवास करना चाहिए। अगर वह चाण्डाल के साथ एक रास्ते पर चले, तो उसे गायत्री का जप करके शुद्ध होना चाहिए।

(३) अगर ब्राह्मण चाण्डाल को छू ले तो शुद्ध होने के लिए सूर्य का दर्शन और वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए।

(४) यदि ब्राह्मण अनजान में ऐसे कुएँ का पानी पी ले, जो चाण्डालों द्वारा तैयार किया गया हो, तो वह तीन दिन तक केवल एक समय भोजन करने से शुद्ध होता है।

(५) अगर कोई ब्राह्मण ऐसे कुएँ का पानी पी ले जो चाण्डाल के बर्तन से छू गया हो तो वह तीन दिन तक गोमूत्र के साथ पके हुए जौ खाने से शुद्ध होता है।

(६) अगर कोई ब्राह्मण किसी चाण्डाल के पात्र से पानी पी ले तो वह प्रजापत्य यज्ञ करने से शुद्ध होता है, बशर्ते कि उसने पानी को बाहर निकाल दिया हो।

(७) अगर इस प्रकार पिया हुआ पानी पच गया हो तो ब्राह्मण को प्रजापत्य के स्थान पर सन्तारन यज्ञ करना आवश्यक है।

(८) अगर कोई ब्राह्मण अनजान में चाण्डाल का खाना खा ले तो वह लगातार तीन दिन तक गोमूत्र के साथ पके हुए जौ खाने से शुद्ध होता है।

(९) अगर कोई ब्राह्मण अनजान में किसी चाण्डाल को अपने घर में रख ले तो वह कितनी ही प्रायश्चित क्रियाओं के करने तथा अपने घर को आग लगा देने से शुद्ध होता है।

उपरोक्त अवतरण से भली भाँति समझा जा सकता है कि अछूतों और उच्च जातियों के बीच किस प्रकार की विषमय नीति द्वारा भेदभाव की खाई खोदी गई थी और उसे स्थायी रखने के लिए कैसे-कैसे अन्यायपूर्ण नियम रचे गए थे। हिन्दू राजाओं के शासन-काल में अछूतों की सर्वत्र यही दशा रही। मुसलमानों के आगमन से यद्यपि इस देश की सामाजिक दशा पर बहुत-कुछ प्रभाव पड़ा और कितनी ही पुरानी प्रथाएँ लोप हो गईं तथा नई प्रथाएँ चल निकलीं; पर अछूतों की स्थिति में कोई अन्तर न पड़ा। यद्यपि मुसलमानों में किसी प्रकार का जाति-भेद न था और वे नीच से नीच जाति को भी अपने में मिला लेते थे, पर हिन्दुओं ने इससे किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं की। जो हिन्दू किसी प्रकार मुसलमानों के सम्पर्क में आते गए अथवा जिन्होंने छल-बल द्वारा उनके साथ एक बार भी खान-पान कर लिया, उनको हिन्दू-समाज के नेता ब्राह्मण लोग बराबर अपने दायरे से बाहर निकालते गए। कहना नहीं होगा कि इस नीति का अधिकांश कुप्रभाव अछूतों पर ही पड़ा। वे ब्राह्मणों के अत्याचारों से पहले ही दुःख सह रहे थे, इस अवसर पर बहुत बड़ी तादाद में मुसलमान हो गए। आज भी देश भर में जगह-जगह सैकड़ों ऐसी नीच जातियाँ मिलती हैं, जिनकी समस्त जन-संख्या मुसलमान हो गई है और जिनकी एक भिन्न जाति अभी तक क़ायम है। मुसलमानी राजत्व के अन्तकाल और ब्रिटिश-शासन के आरम्भ-काल में इन जातियों की क्या अवस्था थी, इसका विस्तृत विवरण, एक फ़्रान्सीसी पादरी ने, जो मद्रास में अपने मज़हब का प्रचार करने आया था, अपनी पुस्तक में दिया है, जिसका एक अंश यहाँ दिया जाता है :—

"इन अभागे लोगों के प्रति अन्य जाति वालों और विशेषतः ब्राह्मणों के घृणा और उपेक्षा के भाव का पता इस बात से लग सकता है कि कितने ही प्रदेशों में इन लोगों की उपस्थिति अथवा उनके पैरों के निशान से ही समस्त मुहल्ला अपवित्र मान लिया जाता है। जिस सड़क पर ब्राह्मण रहते हैं उस पर से वे निकल नहीं सकते। यदि वे ऐसा पाप-कार्य करें तो ब्राह्मण को उन्हें पीटने का पूरा अधिकार है। पर वे ऐसा इसलिए नहीं करते कि इससे वे अपवित्र हो जाएँगे। इस कारण वे किसी अन्य व्यक्ति से उन्हें इच्छानुसार पिटवा सकते हैं।

"यदि कोई व्यक्ति जान कर या अनजान में किसी अछूत से छू जाता है तो वह तुरन्त ही अशुद्ध हो जाता है, और जब तक स्नान तथा अन्य धार्मिक क्रियाएँ करके शुद्ध न हो जाय, तब तक किसी अन्य व्यक्ति से व्यवहार नहीं कर सकता। किसी भी अछूत व्यक्ति के साथ खाना, उनके पकाए भोजन को छूना, उनके भरे पानी को पीना, उनके छुए मिट्टी के बर्तन को काम में लाना, उनके घर के भीतर पैर रखना अथवा उनको अपने मकान में आने देना आदि इस प्रकार के कार्य हैं, जिनसे मनुष्य तुरन्त ही पतित हो जाता है और जब तक वह कितनी ही प्रकार के व्यय-साध्य तथा कष्ट-साध्य प्रायश्चित न करे तब तक अपनी जाति में सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

"समस्त भारत में अछूत लोगों को ऊँची जाति वाले गुलामों की तरह समझते हैं और उनके साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार किया जाता है। शायद ही किसी प्रदेश में उनको अपने लिए खेती करने का अधिकार हो। उनको बाध्य होकर अन्य जाति वालों के खेतों में काम करना पड़ता है और थोड़ी सी मज़दूरी देकर उनसे सख़्त मिहनत ली जाती है।

"इस तरह की घोर दुर्दशा सहन करते हुए भी वे अभागे अछूत कभी अपनी गिरी हुई स्थिति के विरुद्ध असन्तुष्ट होते अथवा शिकायत करते नहीं देखे जाते। आपस में सहयोग करके और दूसरी जाति वालों को बाध्य करके अपनी दशा सुधारने की चेष्टा करने का ख़याल

तो उनको स्वप्न में भी नहीं आता। उनको किसी तरह यह नहीं समझाया जा सकता कि सब मनुष्य एक ही प्रकार की मिट्टी से बने हैं, अथवा उनको अच्छे व्यवहार का दावा कर सकने का अधिकार है। उनकी दरिद्रता अवर्णनीय है और अधिकांश घटिया से घटिया कपड़ा भी नहीं पाते। उनको प्रायः नङ्गे बदन ही रहना पड़ता है। बहुत हुआ तो वे कोई सड़ा-गला चिथड़ा लपेट लेते हैं। उनको सदैव पेट की चिन्ता बनी रहती है और वे यह भी नहीं समझ पाते कि कल किस तरह खाने को मिलेगा। जब उनको कहीं से रुपया मिल जाता है तो उसे वे फ़ौरन ही शराब में ख़र्च कर डालते हैं। उनका उसूल है कि जब तक पास में कुछ भी हो अथवा किसी प्रकार काम चल सके, तब तक हर्गिज़ काम में हाथ न लगाना।

"मालाबार में पुलिया नाम की एक जाति रहती है, जिसकी दशा अन्य प्रदेश के अछूतों से कहीं अधिक भयङ्कर और दुर्दशा-पूर्ण है। वे पशुओं से भी बदतर समझे जाते हैं। उनको अपने रहने के लिए झोंपड़ी बनाने की भी आज्ञा नहीं, जिससे वे प्रकृति की क्रूरता से रक्षा पा सकें। वे लोग चार बाँस गाड़ कर छप्पर डाल लेते हैं, जो चारों तरफ़ से खुला होता है। इससे वे मेंह से बच जाते हैं, पर हवा चारों तरफ़ से आती रहती है। उनमें से अधिकांश किसी घने पेड़ में घोंसला सा बना लेते हैं और उसीमें पक्षियों की तरह रहते हैं। उनको आम सड़कों पर चलने की भी आज्ञा नहीं है। अगर वे किसी को अपनी तरफ़ आता देखें तो उनको एक विशेष प्रकार का शब्द करना पड़ता है और बहुत सा चक्कर खाकर जाना पड़ता है। उनको किसी अन्य जाति वाले से कम से कम सौ क़दम दूर रहना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। ये लोग बिल्कुल जङ्गली जीवन व्यतीत करते हैं और शेष संसार से उनका किसी तरह का सम्बन्ध नहीं।"

यहाँ तक हमने अछूतों की तत्कालीन दशा का दिग्दर्शन कराया। जब हम उनकी वर्तमान स्थिति पर दृष्टि डालते हैं, तो उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता। यद्यपि ब्रिटिश सरकार के क़ानून के अनुसार विभिन्न जातियों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं माना जाता और किसी भी अपराध के लिए जो दण्ड अछूत को दिया जाता है, वही ब्राह्मण को भी मिलता है। अगर अछूत जाति का व्यक्ति योग्यता प्राप्त कर ले तो वह भी अन्य जातियों के समान बड़ी से बड़ी सरकारी नौकरी पा सकता है। विभिन्न प्रकार के व्यवसायों के करने में भी आजकल किसी जाति के व्यक्ति को रोक नहीं है। अछूतों में से कुछ लोगों ने इन बातों से लाभ उठाया है और वे उन्नति करके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। पर ९९ सैकड़ा अछूत दुर्दशा के उसी गहरे गढ़े में पड़े हुए हैं और इसलिए जो थोड़े से लोग उनमें से उन्नति कर लेते हैं, वे प्रायः अपनी जाति छुपा कर उनसे पृथक हो जाते हैं। उनकी विद्या, शिक्षा, योग्यता और धन-वैभव आदि से उनके पददलित भाइयों का कुछ भी उपकार नहीं होता। वे अभागे आज भी वैसा ही पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जैसा दो-तीन हज़ार वर्ष पहले बिताते थे। हिन्दुओं का शासनाधिकार न रहने से अब वे शास्त्रीय मर्यादा का उल्लङ्घन करने के अपराध में राज्य-दण्ड द्वारा दण्डित नहीं किए जा सकते, पर उनको आर्थिक और सामाजिक रूप से दण्डित करने का अधिकार अब भी उच्च जाति वालों को है और वे उसका प्रयोग करने से कभी नहीं चूकते। इसी कारण देहातों के अछूत ऊँची जाति वालों से बहुत अधिक दबे रहते हैं। शहरों में सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार का प्रभाव अधिक नहीं पड़ता, पर गाँवों और छोटे क़स्बों में ऐसी परिस्थिति में किसी साधारण व्यक्ति का निर्वाह कर सकना असम्भव है। फिर अछूतों की तो शक्ति ही कितनी है? वे हिन्दू ज़मींदारों की ज़मीन में रहते हैं, उन्हीं की ज़मीन में खेती-बारी करते हैं, ऊँची जाति वालों के खेतों में मज़दूरी करते हैं, ऊँची जाति के बौहरों से क़र्ज़ लेते हैं, और ऊँची जाति वालों की अन्य प्रकार की सेवाएँ भी करते हैं। इन्हीं तमाम कार्यों से जो आमदनी होती है उसी से उनका जीवन-निर्वाह होता है। अगर वे सुधारकों की सलाह मान कर अपने वास्तविक अधिकारों का दावा करें तो कल से ही वे केवल भूखों ही न मरने लगें, वरन् उनका डेरा-डण्डा उठा कर फेंक दिया जाय और उनका पेड़ के नीचे ठहर सकना भी असम्भव हो जाय। ऐसी दशा में केवल क़ानूनी अधिकार मिल जाने से अछूतों की दशा सुधर जाने की आशा करना व्यर्थ है।

हिन्दू-समाज के कितने ही उदार-हृदय और दूरदर्शी व्यक्ति बहुत वर्षों से इस दशा को बदलने की चेष्टा कर रहे हैं। बङ्गाल में ब्रह्म-समाज, यू० पी० और पञ्जाब में

आर्य-समाज तथा बम्बई में प्रार्थना-समाज ने इस सम्बन्ध में बहुत-कुछ आन्दोलन किया है और उसके फल से अछूतों में शिक्षा-प्रचार की वृद्धि हुई है और वे अपनी दुर्दशा को अनुभव करने लगे हैं। ईसाइयों ने भी इस सम्बन्ध में प्रशंसनीय कार्य किया है, यद्यपि उनके कार्य में स्वार्थ का पुट रहता है और वे इन लोगों को अपने मज़हब में मिलाने की सदा चेष्टा करते रहते हैं। तो भी ईसाई-स्कूलों द्वारा कितने ही अछूत उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके हैं और उनको स्वच्छता से रहने की आदत भी पड़ गई है। इधर कितने ही वर्षों से कॉङ्ग्रेस ने भी अछूतोद्धार को अपने प्रोग्राम में सम्मिलित कर लिया है और तब से इस आन्दोलन में राजनीतिक भावना भी शामिल हो गई है। यद्यपि व्यावहारिक कार्य, जैसे—शिक्षा-प्रचार, सहभोज, अन्तर्जातीय विवाह, मन्दिर-प्रवेश आदि, आर्य-समाज द्वारा ही सम्पन्न हो रहे हैं, पर कॉङ्ग्रेस के समर्थन और प्रचार करने से सर्व-साधारण का झुकाव इधर अधिक हो गया है और इस विषय की चर्चा भी पहले की अपेक्षा बहुत ज़्यादा बढ़ गई है।

हिन्दू-महासभा भी गत कई वर्षों से अछूतों की दशा सुधारने के लिए चेष्टा कर रही है। उसमें जो लोग सम्मिलित हैं वे अधिकांश नवीन ढङ्ग की शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति हैं और उनको इस बात के स्वीकार करने में किसी प्रकार का एतराज़ नहीं है कि जब अछूत हिन्दू हैं तो हिन्दुओं को प्राप्त साधारण अधिकार उन्हें क्यों न दिए जायँ। अप्रैल १९२८ में महासभा का जो अधिवेशन जबलपुर में हुआ था, उसमें अन्य प्रस्तावों के साथ नीचे लिखे प्रस्ताव भी पास किए गए थे :—

(१) महासभा निश्चय करती है कि अछूत कहे जाने वाले लोगों को भी अन्य जातियों के हिन्दुओं की तरह स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने, सार्वजनिक कुँओं और पानी भरने के अन्य स्थानों से पानी लेने, सार्वजनिक सभाओं में सब लोगों के साथ मिल कर बैठने और सार्वजनिक सड़कों पर चलने का समान अधिकार है। महासभा समस्त हिन्दुओं से अनुरोध करती है कि अछूत कहे जाने वाले लोगों के उपर्युक्त अधिकारों का उपयोग करने में जहाँ-कहीं किसी प्रकार की बाधाएँ हों उनके हटाने की चेष्टा करें।

(२) यह महासभा घोषणा करती है कि अछूत कहे जाने वाले देव-दर्शन के पूर्ण अधिकारी हैं। महासभा समस्त हिन्दुओं से और ख़ासकर हिन्दू-सभाओं से अनुरोध करती है कि अछूतों को देव-दर्शन का वही सुभीता दिलाने की चेष्टा करें जो अन्य हिन्दुओं को प्राप्त है।

(३) पुरोहितों, नाइयों और धोबियों का कर्तव्य है कि वे अन्य जाति वालों के समान अछूतों की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करें।

(४) महासभा घोषणा करती है कि हर एक हिन्दू को, चाहे वह किसी भी जाति का हो, समान राजनीतिक और सामाजिक अधिकार मिलने चाहिएँ।

(५) म्युनिसिपैलिटियों को अछूतों और ख़ासकर मेहतरों के लिए स्वास्थ्यकर मुहल्लों में बसाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

पर इन तमाम परिवर्तनों और चेष्टाओं का प्रभाव कट्टर सनातनी हिन्दुओं पर कुछ भी नहीं पड़ा है। वे अब भी मनुस्मृति, पराशरस्मृति अथवा निर्णय-सिन्धु जैसी दक़ियानूसी किताबों के फेर में पड़े हैं और उन्हीं की बतलाई लकीर पीटते जाने की चेष्टा करते हैं। छुप कर चाहे वे किसी अछूत का जूठा भी खा लें, पर प्रत्यक्ष रूप में किसी ऐसे व्यक्ति का वस्त्र भी उड़ कर छू जाने से अवश्य सचैल स्नान करेंगे। इस प्रकार के लोगों ने इस ढोंग को और भी बुरा रूप दे दिया है और सुधार की चेष्टा करने वाले अछूतों तथा उपदेशकों को प्रायः इसके कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। अभी गत वर्ष बड़ौदा राज्य के एक गाँव का क़िस्सा समाचार-पत्रों में छपा था, जहाँ सार्वजनिक स्कूल में सरकारी आज्ञानुसार अछूत लड़कों के जाने के कारण ऊँची जाति वालों ने उन पर अकथनीय अन्याय किए थे। उन लोगों को पानी भरने और रास्ता चलने से ही नहीं रोका गया, उनके घरों और खेतों में आग तक लगा दी गई। संयुक्त-प्रान्त के कितने ही गाँवों में भी सुधार की चेष्टा करने वाले अछूत इसी प्रकार तङ्ग किए गए हैं। यहाँ के शहरों में अगर आप किसी ऊँची जाति वालों के मुहल्ले में जाकर देखें तो आपको पता लगेगा कि अछूत लोग सड़क पर लगे नल से भी पानी नहीं भर सकते। यदि कोई ऐसा करता है और अड़ोस-पड़ोस वालों को पता लग जाता है तो बड़ा

झगड़ा खड़ा हो जाता है और मार-पीट तक की नौबत आ जाती है। कितनी ही म्युनिसिपैलिटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों ने इस आशय के प्रस्ताव पास किए हैं कि उनके स्कूलों में तमाम जातियों के लड़के पढ़ सकते हैं। पर जब अछूत-बालक पढ़ने को जाते हैं तो उनको तमाम लड़कों से बहुत दूर ज़मीन पर बैठाया जाता है और पढ़ाई की तरफ़ भी कम ख़्याल किया जाता है। यदि कोई नवीन विचारों का शिक्षक अछूत लड़कों को ऊँची जाति वालों के साथ बैठा दे तो दूसरे ही दिन तमाम लोग अपने लड़कों को स्कूल जाने से रोक देते हैं। कलकत्ते में हिन्दू-स्कूल एक बड़ी पुरानी शिक्षा-संस्था है। अभी कौन्सिल में सवाल पूछे जाने पर पत्ता लगा कि उसमें अछूत जातियों के लड़के दाख़िल नहीं हो सकते। मानो उसके सञ्चालकों के मतानुसार अछूत हिन्दू ही नहीं हैं। मन्दिर-प्रवेश का प्रश्न भी आजकल स्थान-स्थान पर उठ रहा है और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए अछूतों और उनके समर्थकों को सत्याग्रह करके उसी प्रकार तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ रहे हैं, जैसे राजनीतिक अधिकारों के लिए अन्य हिन्दुओं को सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करके उठाने पड़ रहे हैं।

'सनातनी' हिन्दुओं की इस मूर्खतापूर्ण नीति का परिणाम हिन्दू-समाज और समस्त देश के लिए घातक हो रहा है। सच पूछा जाय तो अछूत जातियों का अस्तित्व भारत के स्वराज्य प्राप्त करने के मार्ग में एक बड़ी बाधा है और जब तक यह अनर्थकारी प्रथा पूर्णतया दूर न होगी तब तक देश का स्वतन्त्र हो सकना असम्भव नहीं तो दुस्सम्भव अवश्य है। इस कलङ्कपूर्ण प्रथा के कारण हिन्दू किसी निष्पक्ष विदेशी के सम्मुख अपनी स्वतन्त्रता का दावा भी अच्छी तरह पेश नहीं कर सकते। क्योंकि वह फ़ौरन जवाब देगा कि जब तुमने अपने कई करोड़ भाइयों को ग़ुलाम बना कर अवनति के गड्ढे में ढकेल रक्खा है तो तुम अन्य देश वालों के अपने ऊपर शासन करने की किस मुँह से शिकायत करते हो। इसी प्रकार जब उपनिवेशों में भारतवासियों के साथ अन्याय और अपमान का व्यवहार किया जाता है और उनको नीच तथा गन्दा बतला कर शहर के मुख्य भाग से दूर रहने को बाध्य किया जाता है तो इस देश वाले बड़ी हाय-तोबा मचाते हैं। पर जब उपनिवेशों के अधिकारी कहते हैं कि क्या तुम अपने देश में अछूत लोगों को इसी तरह नहीं रखते तो हमारे मुँह पर एक कड़ी चपत सी लग जाती है।

दूसरी बड़ी हानि इस प्रथा के फल से हिन्दू-समाज की यह हो रही है कि उसके करोड़ों व्यक्ति हिन्दू-धर्म को त्याग कर दूसरे धर्मों में दीक्षित होते जाते हैं। आज भारत में जो क़रीब एक करोड़ देशी ईसाई दिखलाई पड़ते हैं यह हिन्दुओं की नालायक़ी का ही नतीजा है। मुसलमानों की संख्या-वृद्धि का भी प्रधान कारण यही है। आश्चर्य का विषय है कि सैकड़ों वर्षों से अपनी मूर्खतापूर्ण नीति का कुपरिणाम आँखों से देखते हुए भी यह धर्म का ढोंग रचने वाले लोग आँखें नहीं खोलते और अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मार रहे हैं। शोक का विषय है कि अपने को राम-कृष्ण का उपासक और वेद तथा उपनिषदों का ज्ञाता समझने वाले हिन्दू एक मुसलमान और ईसाई को जो अधिकार राज़ी से दे देते हैं, वही अधिकार हिन्दू-धर्म के अनुयायी अछूतों को देना किसी प्रकार स्वीकार नहीं करते। इस विषय में वे जिस प्रकार की नीति से काम लेते हैं, उसका समर्थन साधारण बुद्धि रखने वाला एक बालक भी नहीं करेगा। यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है कि एक अछूत जब तक हिन्दू है तब तक वह किसी व्यवहार के योग्य नहीं समझा जाता पर जैसे ही वह मुसलमान या ईसाई हो जाय उसे तमाम अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में पञ्जाब का एक क़िस्सा बड़ा हृदय-विदारक है। वहाँ पर मेघ नाम की एक जाति रहती है जो अछूत समझी जाती है। एक बार उस जाति के कुछ लोग सड़क बना रहे थे। दोपहर के समय उनको बड़ी प्यास लगी और वे समीप के एक कुएँ से पानी पीने गए। पर उच्च जाति के हिन्दुओं ने, जो वहाँ पानी भर रहे थे, उनको रोक दिया। मेघ लोग पानी के बिना तड़प रहे थे और पास में कोई ऐसा कुँआ या जलाशय न था जहाँ वे अपनी प्यास बुझा सकते। अचानक उनको सामने एक मस्जिद दिखलाई दी और उसी समय उनको एक युक्ति सूझ गई। वे लोग मस्जिद में घुसे और वहाँ से मुसलमान बन कर पुनः पानी के लिए कुँए पर आए। कुँए से मुसलमानों को पानी लेने की निषेधाज्ञा न थी और इसलिए अब हिन्दू लोग उन्हें न रोक सके। हृदयहीनता और बेवक़ूफ़ी की हद हो

गई। हिन्दू से मुसलमान हो जाने के कारण पाँच मिनट के भीतर मेघ कुँए से पानी भरने लायक़ हो गए! अगर उन हिन्दुओं में कुछ भी असलियत और शर्म का भाव होता तो इस दृश्य के बाद उनका यही कर्तव्य था कि वे आत्म-हत्या करके मर जाते। हम नहीं समझते कि ऐसे लोगों की निन्दा करें या उन पर तरस खायँ। क्योंकि इस प्रकार अपना घर आप ही जला कर ख़ुश होने वाला व्यक्ति तो केवल पागल ही माना जा सकता और पागल व्यक्ति की निन्दा करना या उस पर क्रोध प्रकट करना निरर्थक है। हिन्दुओं ने अछूत जातियों की जैसी दुर्दशा कर दी है और उनको प्रति दिन जिस प्रकार के अन्याय सहने पड़ते हैं उससे उनमें अपने आप ही हिन्दू-धर्म को त्याग कर किसी अन्य समुदाय में सम्मिलित होने की भावना पैदा हो जानी सम्भव है। इतने पर भी इस प्रकार प्रत्यक्षतः मुसलमान ईसाइयों को अछूतों से उत्तम बतलाना उनको इस कार्य के लिए और भी उकसाना है।

कितने ही 'धर्मात्मा' लोग कहते हैं कि अछूत नीच सेवा के लिए ही उत्पन्न हुए हैं और वे अपनी वर्तमान स्थिति में सब प्रकार सन्तुष्ट हैं। यह सच है कि अधिकांश अछूत अभी तक अज्ञानावस्था में पड़े हैं और उन्होंने अपनी दुर्दशा को स्वाभाविक तथा अनिवार्य समझ कर सन्तोष धारण कर लिया है। पर इससे यह समझ लेना कि उनके दिल के भीतर भी असन्तोष का भाव नहीं है, अथवा वे इसी प्रकार सदा उच्च जाति वालों के अन्यायों को ख़ुशी से सहते रहेंगे, भूल है। अन्याय का फल कभी नष्ट नहीं हो सकता और यदि अछूतों ने सैकड़ों वर्ष तक अन्यायों को चुपचाप सह लिया है और अब भी सहते जाते हैं, तो इसका अन्तिम फल यह होगा कि जब उनके असन्तोष की आग भड़केगी तो वह प्रलयकारी रूप धारण कर लेगी, जिसमें हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज का बहुत बड़ा भाग स्वाहा हो जायगा। यद्यपि स्वार्थ के कारण कितने ही ऊँची जाति वालों को अछूतों का सन्तोष स्वाभाविक जान पड़ता है, पर दरअसल उसके कितने ही कारण हैं। इस सम्बन्ध में एक समाज-सुधारक ने अब से बहुत वर्ष पहले लिखा था :—

"अछूतों की वर्तमान स्थिति के सैकड़ों वर्ष तक क़ायम रहने से ऊँची और नीची जाति वालों की मानसिक दशा में ऐसा परिवर्तन हो गया है कि वे अपने वर्तमान सम्बन्ध को सर्वथा स्वाभाविक समझते हैं। अछूत लोग, जो कष्टमय और पतित जीवन बिताते हैं, जिनको अन्य जातियों के साथ किसी प्रकार का सामाजिक व्यवहार रखने की अनुमति नहीं है, जोकि ऊँची जाति वालों के नज़दीक भी नहीं जा सकते, जिनके साथ उतनी भी रियायत नहीं की जाती जितनी कि एक गन्दे से गन्दे पशु के साथ की जाती है, इस प्रकार के व्यवहार को सर्वथा स्वाभाविक समझते हैं और उनको अपनी पतित अवस्था का कुछ भी पता नहीं है। वे कभी इस बात को नहीं सोचते कि उनकी अवस्था में सुधार हो सकता है, और मनुष्य होने के नाते उनको कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार हैं जो किसी भी विपरीत सामाजिक प्रथा द्वारा अपहरण नहीं किए जा सकते।"

अछूतों के इस सन्तोष का एक प्रधान कारण है इस प्रथा पर धर्म की मुहर लगा देना। जैसा कि आधुनिक साम्यवादी विद्वानों का कथन है कि 'धर्म लोगों के लिए अफ़ीम है।' धर्म के नाम पर लोग नीच कार्य भी ख़ुशी से करने लगते हैं और अपने उचित अधिकारों से वञ्चित होकर भी दुःखी नहीं होते। पश्चिमी देशों में समाज की जो विभिन्न श्रेणियाँ की गई हैं उनका आधार सामाजिक और विशेषतः आर्थिक नियमों पर है। इसलिए अन्याय की मात्रा के बढ़ते ही वहाँ के लोग असन्तुष्ट हो जाते हैं और विप्लव की आग भड़क उठती है। इस समस्या को भारत के प्राचीन ब्राह्मणों ने एक नए ही तरीक़े से हल किया था। उन्होंने अछूतों के साथ जो बलात्कार किया वह धर्म के नाम पर था! अछूतों को समझाया गया कि सब प्रकार की नीच सेवा तथा टहल करना और उसके बदले में थोड़ा सा पारिश्रमिक पाकर सन्तुष्ट हो जाना तुम्हारा धर्म है, ईश्वर ने तुम्हारे लिए यही विधान किया है। यदि तुम ईश्वर के आदेशानुसार चलोगे तो उसका फल तुमको परलोक में मिलेगा और दूसरे जन्म में तुम श्रेष्ठ वंश में जन्म लोगे। इस अन्धविश्वास ने धीरे-धीरे अछूतों के हृदय में ऐसी जड़ जमा ली है कि उनको कभी ख़याल भी नहीं आता कि यह हमारे फँसाने के लिए एक जाल बनाया गया है। वे कभी अपने दिल में यह सवाल नहीं करते कि आख़िर ईश्वर ने सदा के लिए हमको ही नीच टहल करने और घूँसे-लात खाने के लिए क्यों निर्दिष्ट कर दिया है? पर यदि

इस प्रकार का प्रश्न यदि किया भी जाय, तो हमारे धर्मगुरु उसका भी बड़ा बढ़िया उत्तर दे सकते हैं। वे कहेंगे, कि तुमने पूर्व जन्म में कोई ऐसा दुष्कर्म या अपराध किया था, जिसके फल-स्वरूप तुमको अछूत के घर जन्म लेकर ये कष्ट सहने पड़ रहे हैं। इस प्रकार के अन्ध-विश्वास फैलाने वाले का, इसके सिवाय कोई इलाज नहीं, कि ऐसे धूर्तों पर तुरन्त ही दो हाथ जमाए जाएँ और कह दिया जाय, कि आपने पूर्वजन्म में हमारे साथ जो व्यवहार किया था, उसी का बदला हम चुका रहे हैं।

कितने ही लोगों का कहना है कि अछूतों के पूर्वजों ने कोई बड़ा सामाजिक अपराध किया था, उसी के फल-स्वरूप उन्हें यह दण्ड दिया गया है। पहली बात तो यह है कि हमारे सामने ऐसा कोई प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर अछूतों के पूर्वजों के अपराध करने की बात सच मानी जा सके, और यदि यह सच भी हो, तो सैकड़ों-हज़ारों वर्ष पहले किसी व्यक्ति द्वारा किए गए अपराध का दण्ड उसके वर्तमान वंशजों को देना घोर असभ्यता का सूचक है। सभ्य जातियों के क़ानून के अनुसार जो अपराध करे, वही उसके दण्ड का पात्र माना जाता है।

अछूत-प्रथा का जन्म चाहे ऐतिहासिक कारणों से हुआ हो, चाहे शास्त्रों के अनुशासन के अनुसार उसकी उत्पत्ति हो, और चाहे ईश्वर ने ही इस प्रकार का विधान बना दिया हो, अब समय आ गया है कि उसे बिना विलम्ब जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दिया जाय। इस प्रकार के अन्ध-विश्वास इस बीसवीं सदी में क़ायम नहीं रह सकते। इस ज़माने में कोई भी व्यक्ति इस कारण उन्नति करने से नहीं रोका जा सकता कि उसने किसी अछूत के घर में जन्म लिया है। यदि हिन्दू-समाज ने इस तरफ़ ध्यान न दिया तो उसे घोर अन्तर्विप्लव का सामना करना पड़ेगा, जिससे उसकी नींव तक हिल जायगी। इसमें सन्देह नहीं, कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ब्राह्मणों के प्रभुत्व को हटाना आवश्यक है। क्योंकि वंशगत धर्मगुरुओं का होना वंशगत अछूत-प्रथा की जड़ है। मन्दिरों के सुधार की भी बड़ी आवश्यकता है। जिन मन्दिरों में व्यभिचार-लीला के अड्डे खोले जा सकें, पर जिनमें शुद्ध आचरण करने वाला अछूत प्रवेश न कर सके, ऐसे स्थानों के नष्ट हो जाने में ही सर्वसाधारण की भलाई है। यदि मन्दिरों के स्वार्थी पुजारी और महन्त आदि शीघ्र ही उनकी गन्दगी दूर करके उन्हें वास्तविक आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करने का स्थान न बनाएँगे और प्रत्येक शुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति को वहाँ जाने का समान अधिकार न देंगे तो वह दिन दूर नहीं है, जब कि ये मन्दिर ही न रहेंगे! किसी ज़माने में इन मन्दिरों और मूर्तियों को विधर्मियों ने नष्ट किया था, पर अब स्वयं हिन्दू अपने समाज की रक्षा और शुद्धता के लिए उनको चूर-चूर कर डालेंगे! जो लोग समझते हैं कि मन्दिर और मूर्तियों में ही हिन्दू-धर्म समाया हुआ है, वे मूर्ख हैं। हिन्दू-धर्म की नींव सच्चे आध्यात्मिक ज्ञान पर है, जिसका इन पत्थर की इमारतों तथा पुतलों से कोई सम्बन्ध नहीं।

देश की स्वतन्त्रता के लिए भी इस समस्या का शीघ्र से शीघ्र हल हो जाना आवश्यक है। सच पूछा जाय तो इसी पाप के कारण भारत पराधीन हुआ था। जब किसी जाति का एक भाग दूसरे भाग पर अन्याय करता है तो या तो अन्याय सहने वाला भाग विद्रोह करके अन्याय करने वाले का मिज़ाज दुरुस्त कर देता है, अथवा धीरे-धीरे वह मनुष्यत्व से गिर जाता है और समस्त जाति निर्बल हो जाती है। यही अवस्था यहाँ अछूतों के सम्बन्ध में हुई। ब्राह्मणों और अन्य उच्च जाति के हिन्दुओं ने उनको ऐसे कठोर बन्धनों में जकड़ा जिससे वे विद्रोह कर सकने में असमर्थ हो गए। इसके फल से वे सब प्रकार से दीन-हीन और पतित हो गए। साथ ही ऊँची जाति के हिन्दू भी इस प्रभुता को पाकर मदान्ध हो गए और ऐश-आराम तथा पारस्परिक कलह में पड़ कर शक्तिहीन बन गए। ऐसी अवस्था में मुट्ठी भर विदेशियों ने ही हमला करके उनको हटा दिया। भारत-वर्ष ही नहीं, जिन-जिन देशों में ग़ुलामी-प्रथा अधिक समय तक जारी रही है, उन सब का अन्तिम परिणाम यही हुआ है। रोम, यूनान, मिश्र आदि के पतन का यही कारण था। इसलिए जब तक यह पाप-प्रथा हिन्दू-समाज से दूर न होगी, उसमें वास्तविक शक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती और न वह राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकती है। आशा है, हिन्दू-समाज अब भी आँखें खोलेगा और धर्म का ढोंग करने वाले स्वार्थियों की बातों पर ध्यान न देकर, इस कलङ्क को अपने मस्तक पर से हटा कर ही चैन लेगा।

❀ ❀ ❀

बङ्गाल और क्रान्तिवाद

दरिद्रता और दासता तथा दमन और स्वेच्छाचारिता क्रान्ति की जननी है। दरिद्रता के प्राङ्गण में जब असह्य दासता चीत्कार करने लगती है, तब यही चारों शक्तियाँ आपस में एक-दूसरे से टकरा कर क्रान्ति का जन्म देती हैं और उसी क्रान्ति को क्रिया-रूप में विद्रोह और उसी के निखरे हुए स्वरूप को इतिहासकारों ने राष्ट्रीयता के नाम से उद्घोषित किया है। विद्रोह की प्रज्वलित अग्नि में स्वेच्छाचारी दमन, घी अथवा राल का काम देता है। इसका भी कारण कम रहस्यपूर्ण नहीं है। राजनैतिक विप्लव के समय राष्ट्र का निश्चय दिन-प्रतिदिन दृढ़ होता जाता है और जिस प्रकार नदी में आई हुई बाढ़ कगारों को अपनी प्रचण्ड लहरों से टकरा कर छिन्न-भिन्न कर देती है, जिस प्रकार मार खाता हुआ पानी बड़ी-बड़ी सुदृढ़ दीवारों को फोड़ कर अपना रास्ता निकाल लेता है, ठीक उसी प्रकार क्रान्ति के वेग को भी समझना चाहिए। दमन से उस क्रान्ति के एक अङ्ग को क्षण भर के लिए दबा लेना सम्भव हो सकता है; किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र अथवा सामूहिक क्रान्ति को अनिश्चित काल तक दबाए रखने में संसार की सारी पाशविक शक्तियाँ, यदि एक साथ भी काम में लाई जावें, तब भी सफल नहीं हो सकतीं। जिस प्रकार दीवार से टकराते हुए पानी का समुचित प्रबन्ध करके ही उस दीवार की रक्षा की जा सकती है; ठीक उसी प्रकार राष्ट्र की राजनैतिक आकांक्षाओं का समुचित आदर करके ही कोई भी गवर्नमेण्ट चैन से शासन कर सकती है, अन्यथा नहीं। अभी हाल ही में गवर्नमेण्ट की ओर से बङ्गाल-पुलिस-शासन की जो सन् १९३१ की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उससे बङ्गाल में पिछले २५ वर्षों में क्रान्तिकारी आन्दोलन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है और हमारी उपर्युक्त धारणा की पुष्टि भी होती है। अस्तु—

इस रिपोर्ट में बतलाया गया है कि सन् १९३१ में केवल ९ हत्याएँ तथा ६७ विभिन्न आतङ्ककारी उपद्रव आदि हुए हैं। इसके मुक़ाबले में पिछले क्रान्तिकारी उपद्रवों की चर्चा करते हुए, इसी रिपोर्ट में बतलाया गया है, कि सन् १९०७ से सन् १९१४ तक, अर्थात् ७ वर्षों में क्रान्तिकारियों के कुल १२५ उपद्रव हुए थे। [जिसमें बङ्गाल के अतिरिक्त, पूर्वीय बङ्गाल (चटगाँव तथा बारीसाल आदि) तथा आसाम की संख्या भी शामिल है] जिसका औसत फ़ी महीना १·३ होता है। पर सन् १९१५ की तीसरी मई तक इन उपद्रवों की संख्या १५ बतलाई गई है, अर्थात् पिछले ८ वर्षों (सन् १९०७ से १९१५ तक) के औसत से इन उपद्रवों में ५० सैकड़ा की वृद्धि हुई। इस सिलसिले में यह बात स्मरण रखने की है कि इसी मास अर्थात् मई सन् १९१५ में भारत-रक्षा-क़ानून (Defence of Indian Act) की १२वीं (अ) धारा काम में लाई गई थी और इसके द्वारा जून १९१६ तक २३३ सन्दिग्ध-क्रान्तिकारी गिरफ़्तार कर लिए गए थे। पर आगे की तालिका देखने से पता चलता है कि घटने की अपेक्षा, क्रान्तिकारियों के उपद्रव और भी बढ़ गए। मई १९१५ से जून १९१६ तक विभिन्न स्थानों में क्रान्तिकारियों के ३८ उपद्रव हुए, जिनमें २० राजनैतिक हत्याएँ भी शामिल हैं! अर्थात् इन उपद्रवों का औसत १·३ से बढ़ कर २·७ हो गया!!

इसके बाद ज़रा भी किसी पर क्रान्तिकारी होने का सन्देह होते ही उसे नज़रबन्द करने की नीति काम में लाई जाने लगी और इस नई नीति के अनुसार जून, १९१६ से नवम्बर, १९१९ तक १,०२९ नवयुवकों को, बिना किसी प्रत्यक्ष कार्रवाई के नज़रबन्द बना दिया गया! इसके परिणाम-स्वरूप कहा जाता है कि जून, १९१८ के अन्त तक क्रान्तिकारियों का आन्दोलन लगभग शान्त रहा। सन् १९१९ में भी केवल २ उपद्रव हुए और सन् १९२० बिलकुल सकुशल बीता। दिसम्बर, सन् १९१९ से इन नज़रबन्द व्यक्तियों को 'एमनेस्टी' (सार्वजनिक क्षमादान) के अनुसार मुक्त करना आरम्भ किया गया और इसके कारण १,२६२ नज़रबन्द व्यक्ति छोड़ दिए गए। इन लोगों को धीरे-धीरे छोड़ने का क्रम फ़रवरी, सन् १९२० तक जारी रहा। सन् १९२१ में कोई भी दुर्घटना नहीं हुई और सन् १९२२ में केवल १ ऐसी घटना हुई; किन्तु रिपोर्ट में कहा गया है कि सन् १९२३ से फिर क्रान्तिकारियों का आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा। यद्यपि इस रिपोर्ट में इस साल की एक भी दुर्घटना का उल्लेख नहीं है। रिपोर्ट में कहा गया है कि सन् १९२४ में

परिस्थिति ऐसी भीषण हो गई कि गवर्नमेण्ट को बाध्य होकर एक ऑर्डिनेन्स जारी करना पड़ा। इस ऑर्डिनेन्स के अनुसार ७६ व्यक्ति गिरफ़्तार करके नज़रबन्द कर दिए गए। इस रिपोर्ट में यह खुले शब्दों में स्वीकार किया गया है कि इस ऑर्डिनेन्स ने उन क्रान्तिकारियों पर वज्र-प्रहार का काम किया, जो अभी डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया एक्ट वाली चोट से सँभल भी न पाए थे। रिपोर्ट के शब्द ये हैं :—

"This sudden action *was a blow to the terrorists* who had not recovered from that dealt them by the arrests under the Defence of India Act."

इस सरकारी रिपोर्ट का यह भी कहना है कि अधिकांश नेताओं ने कुछ दिनों तक क्रान्तिकारी उपद्रवों से दूर रह कर, अपना सङ्गठन करने का निश्चय किया। एक दल ने ५ वर्ष तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया था, पर साथ ही दूसरे दलों को अपने नेताओं की यह नीति पसन्द नहीं आई और उन्होंने क्रान्तिकारी आन्दोलन को पुनर्जीवित करने के अभिप्राय से अपने एक स्वतन्त्र दल का सङ्गठन आरम्भ कर दिया। रिपोर्ट का कहना है कि सन् १९२५ में बङ्गाल क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट एकमात्र इस 'नए दल' का मुक़ाबला करने के लिए पास किया गया था। गवर्नमेण्ट रिपोर्ट का कहना है कि इसका फल बड़ा व्यापक हुआ, अर्थात् अक्टूबर, सन् १९२४ से सन् १९२८ के अन्त तक क्रान्तिकारियों द्वारा केवल एक व्यक्ति की हत्या की जा सकी। जनवरी, १९२९ के अन्त में, जो लोग सन् १९१८ के बङ्गाल रेगुलेशन की तीसरी धारा के अनुसार राजबन्दी (State Prisoners) बनाए गए थे, उन्हें छोड़ दिया गया।

इस रिपोर्ट में कहा गया है कि सन् १९२९ से क्रान्तिकारी आन्दोलन ने फिर से भीषण रूप धारण करना प्रारम्भ किया। सन् १९२५ के बङ्गाल क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट के समाप्त होते ही, अर्थात् अप्रैल, १९३० में, क्रान्तिकारियों द्वारा चटगाँव के शस्त्रागार पर हमला किया गया। इसी वर्ष क्रान्तिकारियों द्वारा कुल ३६ विभिन्न उपद्रव किए गए, जिसमें १९ राजनैतिक हत्याएँ भी शामिल हैं। चटगाँव वाले शस्त्रागार पर हमला होते ही सन् १९२५ वाले बङ्गाल क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट को आगामी ५ वर्षों के लिए पुनः जारी कर दिया गया और फल-स्वरूप अप्रैल, १९३० से सन् १९३१ के अन्त तक, कहा जाता है, कुल ९९० व्यक्ति पकड़े गए, जिनमें से १७२ व्यक्तियों को छोड़ दिया गया, शेष ८१९ 'नज़रबन्द' हैं। सरकारी रिपोर्ट के शब्दों में १९३१ का साल 'चिन्ताओं का युग' रहा है। इस वर्ष बङ्गाल क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट को और भी विस्तृत एवं व्यापक बनाने के लिए उसमें सन् १९३१ वाले ऑर्डिनेन्स की ९वीं धारा भी जोड़ दी गई और अक्टूबर, १९३१ से ये दोनों क़ानून ही काम में लाए जा रहे हैं। इस रिपोर्ट का सारांश यह है, कि पिछले २५ वर्षों में विभिन्न प्रकार के कुल ३४२ क्रान्तिकारी उपद्रव हुए और इसके अतिरिक्त क्रान्तिकारियों द्वारा १०९ राजनैतिक हत्याएँ की गईं !!

इस सरकारी रिपोर्ट में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि इन क्रान्तिकारी उपद्रवों की अधिकतर ज़िम्मेदारी कॉङ्ग्रेस तथा समाचार-पत्रों पर है ; जिनके द्वारा खुल्लम-खुल्ला गवर्नमेण्ट तथा अङ्गरेज़ों की निन्दा होती है !

इस ऊटपटाङ्ग अभियोग को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए हम गवर्नमेण्ट से केवल इतना ही पूछना चाहते हैं, कि यदि कॉङ्ग्रेस ही इन उपद्रवों के लिए ज़िम्मेदार है, तो इसके 'प्रचार' का इतना घातक प्रभाव बङ्गाल पर ही क्यों पड़ा है ? बम्बई पर क्यों नहीं, जो कॉङ्ग्रेस के 'प्रचार' का समस्त भारत में एक अन्यतम केन्द्र है ??

सच बात तो यह है कि सोया हुआ व्यक्ति जगाया जा सकता है, पर जो जाग कर भी सोते रहने का भान कर रहा हो, उसे कैसे जगाया जाय ? गवर्नमेण्ट बङ्गाल की स्थिति से अनभिज्ञ हो, सो बात नहीं है। बङ्गाल के भूतपूर्व गवर्नर सर स्टैनली जैक्सन जब तक बङ्गाल के टुकड़ों पर पलते रहे, तब तक उन्होंने भी इसी तरह के भान किए थे, पर वही सर स्टैनली जैक्सन को इङ्गलैण्ड पहुँचते ही बङ्गाल के आतङ्कवाद का रहस्यपूर्ण कारण समझने में कठिनाई नहीं हुई। आपने स्पष्ट शब्दों में इसका कारण बङ्गाल की भीषण दरिद्रता और उस पर होने वाले भीषणतर अत्याचारों की जी खोल कर निन्दा की है और इन दोनों कारणों को दूर करने पर ज़ोर दिया है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं, कि अङ्गरेज़ी शासन ने जनता के विचार-स्वातन्त्र्य के वैध अधिकारों

में बाधा देते-देते अपने को बहुत ही अप्रिय बना लिया है और अब नौबत यहाँ तक पहुँच गई है कि उसे अपना अस्तित्व क़ायम रखने के लिए नित्य नए-नए एवं सर्वथा स्वेच्छाचारी क़ानून गढ़ने पड़ते हैं, जो किसी भी आत्म-सम्मान को टकों के स्वार्थ से मूल्यवान समझने वाली सरकार के लिए, लज्जा की बात है। उसे अब इस प्रकार के अनर्गल प्रलापों को छोड़ कर अपनी शासन-पद्धति में सुधार करना चाहिए।

हमारी स्थिति स्पष्ट है, इस प्रकार के क्रान्तिकारी आन्दोलनों, एवं आतङ्कवाद को हमने सदा ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। इन कार्यों की जितनी तीव्र निन्दा हमने समय-समय पर की है, उतनी शायद किसी ने न की होगी; पर साथ ही हमारी दृष्टि में नौकरशाही की उद्दण्डता भी उतनी ही घातक है, जितनी सशस्त्र क्रान्ति के पक्षपातियों की नीति।

❀ ❀ ❀

चाँद—नवम्बर, १९२२

राष्ट्रीय जीवन में स्त्री का महत्व

[सम्पादकीय]

आज, जब कि भारत के हर एक क्षेत्र में परिवर्तन हो रहा है और भारतीय समाज एक नए आदर्श की ओर क़दम बढ़ा रहा है, इस विषय पर विचार करना नितान्त आवश्यक है कि इस परिवर्तन में स्त्री को कौन सा स्थान मिलना उचित है? यदि हम पौराणिक काल को दृष्टि से हटा दें, तब भी भारत के ऐतिहासिक काल में हमें ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेंगे, जिनसे हम साबित कर सकते हैं कि कुछ ज़माने तक यहाँ स्त्रियाँ, न केवल आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं, बल्कि पूजनीय समझी जाती थीं। भारतीय इतिहास इस बात की गवाही देगा कि एक स्त्री के अपमान के कारण कभी-कभी घोर युद्ध तक हुए, जिनमें ख़ून की नदियाँ बहीं। सम्भव है कि हमारे कुछ युवा देशवासी, जिनकी दृष्टि पाश्चात्य सभ्यता के नक़ली प्रकाश के कारण अन्ध हो गई है, यह कहने को तत्पर हो जावें कि भारत में स्त्री कभी भी आदर की दृष्टि से नहीं देखी गई। परन्तु सच तो यह है कि इन युवकों का ऐसा कहना इतिहास और सत्यता का ख़ून करना होगा। अपने इस कथन के समर्थन में हम केवल एक ही उदाहरण देना काफ़ी समझते हैं। जब कि भारतीय समाज पतन के रास्ते पर था और मुल्क में मुसलमानी दौरदौरा था, उस समय भी स्त्रियों का कितना आदर होता था, इसका प्रमाण यह उदाहरण देगा।

एक समय का ज़िक्र है कि शिवाजी की सेना औरङ्गज़ेब की मुसलमानी सेना से लड़ रही थी। इस लड़ाई में शिवाजी के एक सेनापति ने दुश्मन का बहुत सा धन लूटा और स्त्रियों को भी क़ैद किया। सेना के नियम के अनुसार इस सेनापति ने यह लूटा हुआ धन शिवाजी को नज़र किया और साथ ही उसने इन पकड़ी हुई स्त्रियों को भी शिवाजी के सामने पेश किया। इन्हें क़ैद की हालत में देखते ही शिवाजी क्रोध से लाल हो गए और तुरन्त हुक्म दिया कि यह स्त्रियाँ मुक्त कर दी जावें। इस सेनापति को भी यह कह कर निकाल दिया कि "जो पुरुष स्त्री का महत्व नहीं जानता, वह शिवाजी की सेना में कार्य करने योग्य नहीं है।"

यह केवल एक ही उदाहरण है। परन्तु यदि हम भारत के असली इतिहास पर दृष्टि डालें, तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्राचीन काल में इस देश की स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था। दुर्भाग्य से कुछ दिन बाद भारत का पतन आरम्भ हुआ और इस पतन-काल में भारतीय समाज में अनेक बुराइयों के साथ एक इस बुराई ने भी प्रवेश किया कि लोग स्त्रियों को बहुत नीची निगाह से देखने लगे। दुर्भाग्यवश हमें यह मानना पड़ेगा कि आज भी इस देश में ऐसे लोग मौजूद हैं, जो स्त्री को अपने 'सुख का साधन' समझते हैं। स्त्रियों के बारे में इन लोगों की यही कल्पना है कि बाज़ार में जिस प्रकार अनेक खिलौने मिलते हैं, उसी प्रकार स्त्री भी धन द्वारा ख़रीदी और आजीवन अपने अधीन रक्खी जा सकती है। दुःख का विषय केवल यह है कि ऐसे लोग

हमारे शिक्षित समुदाय में पाए जाते हैं और इनकी संख्या कुछ कम नहीं है। परन्तु सच पूछा जावे तो स्त्रियों को पुरुषों से नीचा स्थान देना न्याय-सङ्गत नहीं कहा जा सकता।

स्त्री मातृ-रूप से पुरुष को जन्म देने वाली; पत्नी-रूप से जन्म भर उसका साथ देने वाली और कन्या-रूप से उसकी गोद में खेलने वाली एक पवित्र आत्मा है। अर्थात् स्त्री, पुरुष के जीवन की तीनों अवस्थाओं में दैवी प्रेम का परिचय देकर पुरुष को पुत्र, पति और पिता के चढ़ते हुए पदों पर आरूढ़ कराने वाली आत्मा है। ईश्वर ने भी स्त्रियों के लिए स्त्री-रूप धारण किया है। निष्काम बुद्धि से ईश्वर की भक्ति करने वाले सत्पुरुषों को पुरुष-कोटि में परमोच्च पद दिया जाता है और ऐसे साधू लाख पुरुषों में एक भी नहीं मिलते। परन्तु आत्म-यज्ञ में अपनी इच्छा, अभिलाषा और आकांक्षाओं की आहुति डाल कर पतिमय परमेश्वर की निष्काम बुद्धि से निर्व्याज सेवा करने वाली साध्वी प्रायः प्रत्येक भारतीय गृह में दिखाई देगी।

जो पुरुष-जाति आज पूर्वीय देशों में स्त्री को पैरों तले कुचलने में ही अभिमान मानती है, उसकी बाल्यावस्था में उसका पालन-पोषण करने की, युवावस्था में उसे सत्कार्य की ओर प्रवृत्त कराने की और वृद्धावस्था में सब कठिनाइयों को तथा आपत्तियों को आनन्द के साथ सहन करने और धैर्य देने की ज़िम्मेदारी परमात्मा ने स्त्री के नाज़ुक कन्धे ही पर डाली है। यदि पुरुष ईश्वर की कीर्ति है, तो स्त्री परमेश्वर की मूर्ति है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय जीवन में स्त्री का महत्व पुरुष से कहीं अधिक है और इस महत्व को ध्यान में रखते हुए स्त्री के प्रति अपना व्यवहार निश्चित करना प्रत्येक विचारशील पुरुष का कर्तव्य है; क्योंकि स्त्रियों के प्रति हमारे व्यवहार पर ही हमारे राष्ट्र की वर्तमान और भावी अवस्था निर्भर है। यदि हम स्त्रियों को पशु समझ कर, पशुओं के समान निरक्षर और अज्ञानी रक्खेंगे, तो उनकी गोद में खेलने वाली सन्तान, जोकि हमारे भावी समाज का मुख्य आधार-स्तम्भ है, निरक्षर और अज्ञानी निकलेगी। इस सन्तान को स्कूलों में उत्तम-उत्तम शिक्षा देने का प्रबन्ध भले ही किया जावे, पिता भी उसके सामने अपना ज्ञान-भण्डार भले ही खोल कर रख दे, परन्तु इन सब बातों का उतना अच्छा परिणाम कदापि नहीं हो सकता, जितना कि मातृ-शिक्षा का होगा।

यह एक निसर्ग-सिद्ध नियम है कि मनुष्य की बाल्यावस्था में उसका हृदय जिन बातों को ग्रहण कर लेता है, वे बहुत काल तक टिकती हैं। बालक को अपनी माता के साथ जितना काल व्यतीत करने को मिलता है, उतना काल वह न तो पिता के साथ व्यतीत करता है और न किसी अन्य के साथ। ऐसी अवस्था में यदि माता अपढ़ हुई, तो उससे इस बालक को कोई लाभ न होगा। परन्तु यदि वह लिखी-पढ़ी तथा ज्ञानी हुई तो अपने ज्ञान से बालक को नैतिक, शारीरिक, मानसिक और धार्मिक सभी शिक्षा दे सकती है। बालक के हृदय पर उच्च, वीरतापूर्ण तथा देश-प्रेमपूर्ण भावों को अङ्कित करके समाज का एक स्तम्भ मज़बूत बना सकती है। केवल इतना ही नहीं, बल्कि बालक अपनी शिक्षा-प्राप्त माता के दुग्ध-पान के साथ ज्ञान का भी मधुर अमृतपान करता है। यही हाल बालक की शारीरिक शिक्षा का भी है। यदि हम परदे की प्रथा के कारण अथवा अन्य किसी कुप्रथा के कारण स्त्रियों को पक्षियों के समान घर के पिंजरे में बन्द रक्खें तथा उन्हें प्रकृति की शुद्ध हवा का सेवन करने के सुख से वञ्चित रक्खें, तो उसका, न केवल उनके शरीर पर ही प्रभाव पड़ेगा, बल्कि ऐसा करने से उनकी आत्मा के विकास में भी बाधा पड़ेगी। वह रोगी, कमज़ोर और व्यवहार-शून्य बनेंगी। रोगी और कमज़ोर माताओं से निरोगी और मज़बूत सन्तान पैदा होने की आशा करना, पत्थर से पानी निकालने के समान मूर्खतापूर्ण होगा। यही कारण है कि प्राचीन काल में स्पार्टा देश के शासक स्त्रियों का स्वास्थ्य सुधारने की उतनी ही ख़बरदारी लेते थे, जितनी कि पुरुषों के स्वास्थ्य सुधारने की। देश में जगह-जगह व्यायामशालाएँ स्थापित की गई थीं, जहाँ पर पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी व्यायाम करने जाती थीं। केवल इतना ही नहीं, स्पार्टा के शासकों ने अपने राष्ट्र के स्वास्थ्य को सुधारने के लिए यह क्रूर और अमानुषिक नियम बना रक्खा था कि जो बालक या बालिका कमज़ोर पैदा हों, वह तुरन्त मार डाले जावें। उद्देश्य केवल यही था, कि मुल्क में कमज़ोर माता-पिता न रहने पावें; क्योंकि जब यह बालक या बालिका बड़े होंगे और बड़े होने पर भी कमज़ोर ही रहेंगे, तो इनसे

पैदा होने वाली सन्तान भी अवश्य ही कमज़ोर निकलेगी। साधन कितना ही निन्दनीय क्यों न हो, परन्तु उद्देश्य निस्सन्देह बहुत उच्च था। पिता के स्वास्थ्य के साथ ही साथ माताओं के स्वास्थ्य की ओर आवश्यक ध्यान देने के कारण ही उस समय स्पार्टा देश उन्नति के शिखर पर पहुँचा था।

जो बात स्त्रियों के शारीरिक तथा बुद्धि सम्बन्धी शिक्षा के बारे में है, वही हाल उनकी नैतिक शिक्षा के बारे में भी सच है। यदि माताएँ नैतिक शिक्षा सम्पन्ना हों तो वे अपने बालकों को भी उच्च नैतिक शिक्षा दे सकती हैं। प्राचीन ऐतिहासिक काल में जो चीनी यात्री हिन्दुस्तान में भ्रमण करने आया था, उसने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "मैं भारत के जिस हिस्से में गया, मैंने एक भी मकान में ताला लगा न पाया।" यह केवल उस काल की नैतिक शिक्षा का ही फल था। पाश्चात्य इतिहासकारों को भी विवश होकर यह स्वीकार करना पड़ा है कि भारत में उस समय अनीति और अनाचार की मात्रा बहुत कम थी। उस समय के सच्चे भारतीय इतिहास का हम अध्ययन करें, तो हमें पता चल जावेगा कि उस काल में स्त्रियों को नैतिक शिक्षा देने का क़ाफ़ी प्रबन्ध था। यह सच है, कि उस समय की स्त्रियाँ ऊँची-ऊँची एड़ी के बूट पहन कर, मैनचेस्टर (विलायती) की पतली साड़ियाँ पहन कर अथवा हलके-हलके छाते लेकर स्कूलों में नहीं जाती थीं। परन्तु पुराण-श्रवण द्वारा, ईश्वर-कीर्तन द्वारा, वेद और उपनिषद के मनन द्वारा तथा कई अन्य साधनों से उन्हें जो नैतिक शिक्षा दी जाती थी, उसका अल्पांश भी आज हमारे स्कूल और कॉलिजों में नहीं दिया जाता!

हमारे कहने का उद्देश्य यह कदापि नहीं है, कि केवल स्त्रियों की नैतिक शिक्षा के कारण ही उस समय भारत में अनीति और अनाचार का साम्राज्य स्थापित नहीं था; क्योंकि स्त्री ही राष्ट्र की निर्माणकर्ता अथवा सङ्गठनकर्ता नहीं है। स्त्री के साथ-साथ अन्य कई शक्तियाँ भी हर वक़्त राष्ट्र पर अपना असर डालती रहती हैं। हमारा उद्देश्य केवल यही दिखलाना है, कि यदि स्त्रियों को नैतिक शिक्षा दी जावे तो वे उस शिक्षा से सन्तान को भी बहुत लाभ पहुँचा सकती हैं और इस तरह राष्ट्र की नैतिक उन्नति करने का श्रेय पा सकती हैं।

इस तरह यह स्पष्ट है कि किसी भी समाज की उन्नति या अवनति उस समाज की स्त्रियों के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति पर ही बहुत हद तक निर्भर है। जब असली हालत यह है, तो भारतीय स्त्री का महत्व कम करना राष्ट्र के लिए घातक है। हमारा तो यही अटल सिद्धान्त है कि किसी भी राष्ट्र में स्त्री को पुरुष से अधिक उच्च नहीं, तो कम से कम बराबरी का स्थान तो अवश्य ही मिलना चाहिए।

❀ ❀ ❀

समर्पण

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

सूखी सी अधखिली कली हैं;
परिमल नहीं, पराग नहीं।
किन्तु, कुटिल भौंरों के चुम्बन, का—
है इन पर दाग़ नहीं॥
तेरी अतुल कृपा का बदला,
नहीं चुकाने आई हूँ।
केवल पूजा में ये कलियाँ,
भक्ति-भाव से लाई हूँ॥
प्रणय जल्पना, विनय कल्पना,
मधुर वासनाएँ प्यारी।
मृदु अभिलाषा, विजयी आशा—
सजा रही थीं फुलवारी॥
किन्तु गर्व का झोंका आया;
यदपि गर्व वह था तेरा।
उजड़ गई फुलवारी सारी—
बिगड़ गया सब कुछ मेरा !!
बची हुई स्मृति की कलियाँ,
मैं बटोर कर लाई हूँ।
तुझे सुझाने, तुझे रिझाने—
तुझे मनाने आई हूँ॥
प्रेम-भाव से हो अथवा हो,
दया-भाव से ही स्वीकार !
ठुकराना मत इसे, जान कर—
मेरा छोटा सा उपहार !!
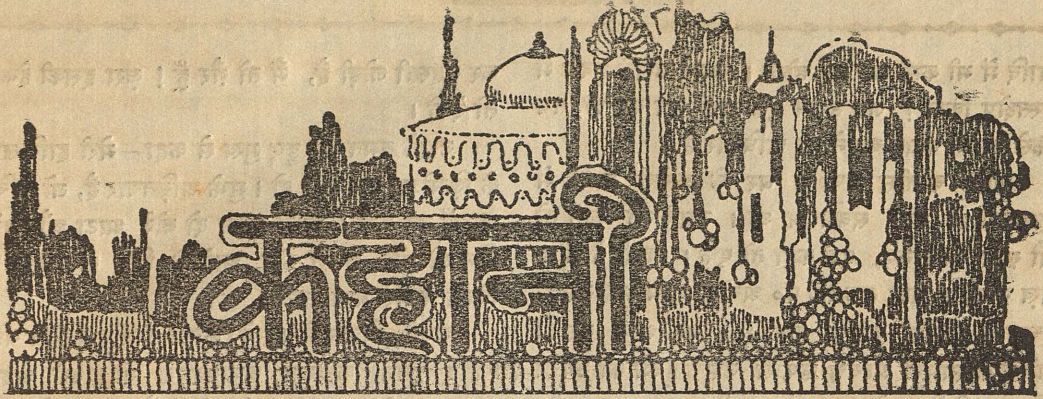
बेटों वाली विधवा

[श्री० प्रेमचन्द जी]

पण्डित अयोध्यानाथ का देहान्त हुआ तो सबने कहा, ईश्वर आदमी को ऐसी ही मौत दे। चार जवान बेटे थे, एक लड़की। चारों लड़कों के विवाह हो चुके थे, केवल लड़की क्वाँरी थी। सम्पत्ति भी काफ़ी छोड़ी। एक पक्का मकान, दो बग़ीचे, कई हज़ार के गहने और २० हज़ार नक़द। विधवा फूलमती को शोक तो हुआ और कई दिन तक वह बेहाल रही, लेकिन जवान बेटों को सामने देख कर उसे ढाढ़स हुआ। चारों लड़के एक से एक सुशील, चारों बहुएँ एक से एक बढ़ कर आज्ञाकारिणी। जब वह रात को लेटती तो चारों बारी-बारी से उसके पाँव दबातीं, वह स्नान करके उठती, तो उसकी साड़ी छाँटतीं। सारा घर उसके इशारे पर चलता था। बड़ा लड़का कामता एक दफ़्तर में ५०) पर नौकर था, छोटा उमानाथ डॉक्टरी पास कर चुका था और कहीं औषधालय खोलने की फ़िक्र में था, तीसरा दयानाथ बी० ए० में फ़ेल हो गया था और पत्रिकाओं में लेख लिख कर कुछ न कुछ कमा लेता था। चौथा सीतानाथ चारों में सब से कुशाग्र और होनहार था और अब की साल बी० ए० प्रथम श्रेणी में पास करके एम० ए० की तैयारी में लगा हुआ था। किसी लड़के में वह दुर्व्यसन, वह छैलापन, वह लुटाऊपन न था, जो माता-पिता को जलाता और कुल-मर्यादा को डुबाता है। फूलमती घर की मालकिन थी। गोकि कुञ्जियाँ बड़ी बहू के पास रहती थीं—बुढ़िया में वह अधिकार-प्रेम न था, जो वृद्धजनों को कटु और कलहशील बना दिया करता है, किन्तु उसकी इच्छा के बिना कोई बालक मिठाई तक न मँगा सकता था!

सन्ध्या हो गई थी। पण्डित जी को मरे आज बारहवाँ दिन था। कल तेरही है। ब्राह्म-भोज होगा। बिरादरी के लोग निमन्त्रित होंगे। उसी की तैयारियाँ हो रही थीं। फूलमती अपनी कोठरी में बैठी देख रही थी कि पल्लेदार बोरों में आटा लाकर रख रहे हैं। घी के टिन आ रहे हैं। शाक-भाजी के टोकरे, शक्कर की बोरियाँ, दही के मटके चले आ रहे हैं। फिर महापात्र के लिए दान की चीज़ें लाई गईं—बर्तन, कपड़े, पलङ्ग, बिछावन, छाते, जूते, छड़ियाँ, लालटेनें आदि। किन्तु फूलमती को कोई चीज़ नहीं दिखाई गई। नियमानुसार ये सब सामान उसके पास आने चाहिए थे। वह प्रत्येक वस्तु को देखती, उसे पसन्द करती, उसकी मात्रा में कमी-बेशी का फ़ैसला करती। तब इन चीज़ों को भण्डारे में रक्खा जाता। क्यों उसे दिखाने और उसकी राय लेने की ज़रूरत नहीं समझी गई? अच्छा! यह आटा तीन ही बोरा क्यों आया? उसने तो पाँच बोरों के लिए कहा था। घी के भी पाँच ही कनस्तर हैं। उसने तो दस कनस्तर मँगवाए थे? इसी तरह शाक-भाजी, शक्कर, दही

आदि में भी कमी की गई होगी। किसने उसके हुक्म में हस्तक्षेप किया? जब उसने एक बात तय कर दी, तब किसे उसको घटाने-बढ़ाने का अधिकार है?

आज चालीस वर्षों से घर के प्रत्येक मामले में फूलमती की बात सर्वमान्य थी। उसने सौ कहा तो सौ ख़र्च किए गए, एक कहा तो एक। किसी ने मीन-मेख़ न की। यहाँ तक कि पं० अयोध्यानाथ भी उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ न करते थे। पर आज उसकी आँखों के सामने, प्रत्यक्ष रूप से उसके हुक्म की उपेक्षा की जा रही है! इसे वह क्योंकर स्वीकार कर सकती?

कुछ देर तक तो वह ज़ब्त किए बैठी रही, पर अन्त में न रहा गया। स्वायत्त शासन उसका स्वभाव हो गया था। वह क्रोध में भरी हुई आई और कामतानाथ से बोली—क्या आटा तीन ही बोरे लाए? मैंने तो पाँच बोरों के लिए कहा था। और घी भी पाँच ही टिन मँगवाया! तुम्हें याद है, मैंने दस कनस्तर कहा था? किफ़ायत को मैं बुरा नहीं समझती, लेकिन जिसने यह कुँआ खोदा उसी की आत्मा पानी को तरसे, यह कितनी लज्जा की बात है!

कामतानाथ ने क्षमा-याचना न की, अपनी भूल भी स्वीकार न की, लज्जित भी नहीं हुआ। एक मिनिट तो विद्रोही भाव से खड़ा रहा, फिर बोला—हम लोगों की सलाह तीन ही बोरों की हुई, और तीन बोरे के लिए पाँच टिन घी काफ़ी था। इसी हिसाब से और चीज़ें भी कम कर दी गईं।

फूलमती उग्र होकर बोली—किसकी राय से आटा कम किया गया?

"हम लोगों की राय से।"

"तो मेरी राय कोई चीज़ नहीं है?"

"है क्यों नहीं, लेकिन अपनी हानि-लाभ तो हम भी समझते हैं।"

फूलमती हक्का-बक्का होकर उसका मुँह ताकने लगी। इस वाक्य का आशय उसकी समझ में न आया। अपना हानि-लाभ! अपने घर में हानि-लाभ की ज़िम्मेदार वह आप है। दूसरों को, चाहे वे उसके पेट के जन्मे पुत्र ही क्यों न हों, उसके कामों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है? यह लौंडा तो इस तरह ढिठाई से जवाब दे रहा है, मानो घर उसी का है, उसी ने मर-मर कर गृहस्ती जोड़ी है, मैं तो ग़ैर हूँ! ज़रा इसकी हेकड़ी तो देखो।

उसने तमतमाए हुए मुख से कहा—मेरी हानि-लाभ के ज़िम्मेदार तुम नहीं हो। मुझे अख़्तियार है, जो उचित समझूँ वह करूँ। अभी जाकर दो बोरे आटा और पाँच टिन घी और लाओ और आगे के लिए ख़बरदार, जो किसी ने मेरी बात काटी।

अपने विचार में उसने काफ़ी तम्बीह कर दी थी। शायद इतनी कठोरता अनावश्यक थी। उसे अपनी उग्रता पर खेद हुआ। लड़के ही तो हैं, समझे होंगे कुछ किफ़ायत करनी चाहिए। मुझसे इसलिए न पूछा होगा कि अम्माँ तो ख़ुद हरेक काम में किफ़ायत किया करती हैं। अगर इन्हें मालूम होता कि इस काम में मैं किफ़ायत पसन्द न करूँगी, तो कभी इन्हें मेरी उपेक्षा करने का साहस न होता। यद्यपि कामतानाथ अब भी उसी जगह खड़ा था और उसकी भावभङ्गी से ऐसा ज्ञात होता था कि इस आज्ञा का पालन करने के लिए वह बहुत उत्सुक नहीं है, पर फूलमती निश्चिन्त होकर अपनी कोठरी में चली गई। इतनी तम्बीह पर भी किसी को उसकी अवज्ञा करने का सामर्थ्य हो सकता है, इसकी सम्भावना का ध्यान भी उसे न आया।

पर ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, उस पर यह हक़ीक़त खुलने लगी कि इस घर में अब उसकी वह हैसियत नहीं रही, जो दस-बारह दिन पहले थी। सम्बन्धियों के यहाँ से नेवते में शक्कर, मिठाई, दही, अचार आदि आ रहे थे। बड़ी बहू इन वस्तुओं को स्वामिनी-भाव से सँभाल-सँभाल कर रख रही थी। कोई भी उससे कुछ पूछने नहीं आता। बिरादरी के लोग भी जो कुछ पूछते हैं, कामतानाथ से, या बड़ी बहू से। कामतानाथ कहाँ का बड़ा इन्तज़ामकार है, रात-दिन भङ्ग पिए पड़ा रहता था। किसी तरह रो-धोकर दफ़्तर चला जाता है। उसमें भी महीने में १५ नाग़ों से कम नहीं होते। वह तो कहो साहब पण्डित जी का लिहाज़ करता है, नहीं अब तक कभी का निकाल देता। और बड़ी बहू जैसी फूहड़ औरत भला इन बातों को क्या समझेगी। अपने कपड़े-लत्ते तक तो जतन से रख नहीं सकती, चली है गृहस्थी चलाने। भद होगी और क्या। सब मिल कर कुल की नाक कटवाएँगे। वक़्त पर कोई न कोई चीज़ कम हो जायगी!

इन कामों के लिए बड़ा अनुभव चाहिए। कोई चीज तो इतनी बन जायगी कि मारी-मारी फिरेगी। कोई चीज इतनी कम बनेगी कि किसी पत्तल पर पहुँचेगी, किसी पर नहीं। आख़िर इन सबों को हो क्या गया है। अच्छा, बहू तिजोरी क्यों खोल रही है। वह मेरी आज्ञा के बिना तिजोरी खोलने वाली कौन होती है। कुञ्जी उसके पास है अवश्य, लेकिन जब तक मैं रुपए न निकलवाऊँ, तिजोरी नहीं खोलती। आज तो इस तरह खोल रही है, मानो मैं कुछ हूँ ही नहीं। यह मुझसे न बर्दाश्त होगा।

वह झमक कर उठी और बड़ी बहू के पास जाकर कठोर स्वर में बोली—तिजोरी क्यों खोलती हो बहू, मैंने तो खोलने को नहीं कहा?

बड़ी बहू ने निस्सङ्कोच भाव से उत्तर दिया—बजार से सामान आया है तो उसका दाम न दिया जायगा?

"कौन चीज किस भाव से आई है और कितनी आई है, यह मुझे कुछ नहीं मालूम। जब तक हिसाब-किताब न हो जाय, रुपए कैसे दिए जायँ?"

"हिसाब-किताब सब हो गया है।"

"किसने किया?"

"अब मैं क्या जानूँ किसने किया। जाकर मरदों से पूछो। मुझे हुकुम मिला, रुपए लाकर दे दो, रुपए लिए जाती हूँ।"

फूलमती ख़ून का घूँट पीकर रह गई। इस वक्त बिगड़ने का अवसर न था। घर में मेहमान स्त्री-पुरुष भरे हुए थे। अगर इस वक्त उसने लड़कों को डाँटा तो लोग यही कहेंगे कि इनके घर में पण्डित जी के मरते ही फूट पड़ गई। दिल पर पत्थर रख कर फिर अपनी कोठरी में चली आई। जब मेहमान बिदा हो जायँगे, तब वह एक-एक की ख़बर लेगी। तब देखेगी कौन उसके सामने आता है और क्या कहता है। इनकी सारी चौकड़ी भुला देगी।

किन्तु कोठरी के एकान्त में भी वह निश्चिन्त न बैठी थी। सारी परिस्थिति को गिद्ध-दृष्टि से देख रही थी। कहाँ सत्कार का कौन सा नियम भङ्ग होता है, कहाँ मर्यादाओं की उपेक्षा की जाती है। भोज आरम्भ हो गया। सारी बिरादरी एक साथ पङ्गत में बिठा दी गई। आँगन में मुश्किल से दो सौ आदमी बैठ सकते हैं। ये पाँच सौ आदमी इतनी सी जगह में कैसे बैठ जायँगे? क्या आदमी के ऊपर आदमी बिठाए जायँगे? दो पङ्गतों में लोग बिठाए जाते तो क्या बुराई हो जाती? यही तो होता कि बारह बजे की जगह भोज दो बजे समाप्त होता, मगर यहाँ तो सबको सोने की जल्दी पड़ी हुई है। किसी तरह यह बला सिर से टले और चैन से सोएँ। लोग कितने सट कर बैठे हुए हैं कि किसी को हिलने की भी जगह नहीं। पत्तल एक पर एक रक्खे हुए हैं। पूरियाँ ठण्डी हो गईं, लोग गरम-गरम माँग रहे हैं। मैदे की पूरियाँ ठण्डी होकर चिमड़ी हो जाती हैं। इन्हें कौन खाएगा। रसोइए को कड़ाव पर से न जाने क्यों उठा दिया गया। यही सब बातें नाक कटाने की हैं।

सहसा शोर मचा, तरकारियों में नमक नहीं। बड़ी बहू जल्दी-जल्दी नमक पीसने लगी। फूलमती क्रोध के मारे ओंठ चबा रही थी, पर इस अवसर पर मुँह न खोल सकती थी। बारे नमक पिसा और पत्तलों पर डाला गया। इतने में फिर शोर मचा—पानी गरम है, ठण्डा पानी लाओ। ठण्डे पानी का कोई प्रबन्ध न था। बर्फ़ भी न मँगाई गई थी। आदमी बाज़ार दौड़ाया गया, मगर बाज़ार में इतनी रात गए बर्फ़ कहाँ। आदमी ख़ाली हाथ लौट आया। मेहमानों को वही नल का गरम पानी पीना पड़ा। फूलमती का बस चलता तो लड़कों का मुँह नोच लेती। ऐसी छीछालेदर उसके घर में कभी न हुई थी। उस पर सब मालिक बनने के लिए मरते हैं! बर्फ़ जैसी ज़रूरी चीज़ मँगवाने की भी किसी को सुधि न थी। सुधि कहाँ से रहे। जब किसी को गप लड़ाने से फ़ुर्सत मिले। मेहमान अपने दिल में क्या कहेंगे कि चले हैं बिरादरी को भोज देने और घर में बर्फ़ तक नहीं!

अच्छा, फिर यह हलचल क्यों मच गई! अरे, लोग पङ्गत से उठे जा रहे हैं। क्या मामला है।

फूलमती उदासीन न रह सकी। कोठरी से निकल कर बरामदे में आई और कामतानाथ से पूछा—क्या बात हो गई लल्ला? लोग उठे क्यों जा रहे हैं?

कामता ने कोई जवाब न दिया। वहाँ से खिसक गया। फूलमती झुँझला कर रह गई। सहसा घर की कहारी मिल गई। फूलमती ने उससे भी वही प्रश्न किया। मालूम हुआ किसी के शोरबे में मरी हुई चुहिया निकल आई। फूलमती चित्र-लिखित सी वहीं खड़ी रह गई। भीतर ऐसा उबाल उठा कि दीवार से सिर टकरा ले।

अभागी भोज का प्रबन्ध करने चले थे। इस फूहड़पन की कोई हद है, कितने आदमियों का धर्म सत्यानास हो गया! फिर पङ्गत क्यों न उठ जाय। आँखों से देख कर अपना धर्म कौन गँवाएगा। हा! सारा किया-धरा मिट्टी में मिल गया! सैकड़ों रुपए पर पानी फिर गया! बदनामी हुई वह अलग।

मेहमान उठ चुके थे। पत्तलों पर खाना ज्यों का त्यों पड़ा हुआ था। चारों लड़के आँगन में लज्जित खड़े थे। एक दूसरे को इलज़ाम दे रहा था। बड़ी बहू अपनी देवरानियों पर बिगड़ रही थीं। देवरानियाँ सारा दोष कुमुद के सिर डालती थीं। कुमुद खड़ी रो रही थी। उसी वक्त फूलमती झल्लाई हुई आकर बोली—मुँह में कालिख लगी कि नहीं? या अभी कुछ कसर बाकी है? डूब मरो सब के सब जाकर चिल्लू भर पानी में। शहर में कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहे।

किसी लड़के ने जवाब न दिया।

फूलमती और भी प्रचण्ड होकर बोली—तुम लोगों को क्या। किसी को शर्म-हया तो है नहीं। आत्मा तो उसकी रो रही है, जिसने अपनी जिन्दगी घर का मरजाद बनाने में खराब कर दी। उसकी पवित्र आत्मा को तुमने यों कलङ्कित किया। सारे शहर में थुड़ी-थुड़ी हो रही है। अब कोई तुम्हारे द्वार पर पेशाब करने तो आएगा नहीं!

कामतानाथ कुछ देर तक तो चुपचाप खड़ा सुनता रहा। आख़िर झुँझला कर बोला—अच्छा, अब चुप रहो अम्माँ। भूल हुई, हम सब मानते हैं, बड़ी भयङ्कर भूल हुई। लेकिन अब क्या उसके लिए घर के प्राणियों को हलाल कर डालोगी? सभी से भूलें होती हैं। आदमी पछता कर रह जाता है। किसी की जान तो नहीं मारी जाती।

बड़ी बहू ने अपनी सफ़ाई दी—हम क्या जानते थे कि बीबी (कुमुद) से इतना सा काम भी न होगा। इन्हें चाहिए था कि देख कर तरकारी कढ़ाव में डालतीं। टोकरी उठा कर कढ़ाव में डाल दी। इसमें हमारा क्या दोष!

कामतानाथ ने पत्नी को डाँटा—इसमें न कुमुद का क़सूर है, न तुम्हारा, न मेरा। संयोग की बात है। बदनामी भाग में लिखी थी वह हुई, इतने बड़े भोज में एक-एक मुट्ठी तरकारी कढ़ाव में नहीं डाली जाती। टोकरे के टोकरे उँडेल दिए जाते हैं। कभी-कभी ऐसी दुर्घटना हो ही जाती है। पर इसमें कैसी जगहँसाई और कैसी नककटाई। तुम ख़ामख़ाह जले पर नमक छिड़कती हो।

फूलमती ने दाँत पीस कर कहा—शरमाते तो नहीं, उलटे और बेहयाई की बातें करते हो।

कामतानाथ ने निस्सङ्कोच होकर कहा—शरमाऊँ क्यों, किसी की चोरी की है। चीनी में चींटे और आटे में घुन, यह नहीं देखे जाते। पहले हमारी निगाह न पड़ी, बस यही बात बिगड़ गई। नहीं चुपके से चुहिया निकाल कर फेंक देते। किसी को ख़बर भी न होती।

फूलमती ने चकित होकर कहा—क्या कहता है, मरी चुहिया खिला कर सबका धर्म बिगाड़ देता?

कामता हँस कर बोला—क्या पुराने ज़माने की बातें करती हो अम्माँ। इन बातों से धर्म नहीं जाता। यह धर्मात्मा लोग जो पत्तल पर से उठ गए हैं, इनमें ऐसा कौन है जो भेड़-बकरी का मांस न खाता हो। तालाब के कछुए और घोंघे तक तो किसी से बचते नहीं। ज़रा सी चूहिया में क्या रक्खा था।

फूलमती को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब प्रलय आने में बहुत देर नहीं है। जब पढ़े-लिखे आदमियों के मन में ऐसे अधार्मिक भाव आने लगे तो फिर धर्म की भगवान ही रक्षा करें। अपना सा मुँह लेकर चली गई।

२

दो महीने गुज़र गए हैं। रात का समय है। चारों भाई दिन के काम से छुट्टी पाकर कमरे में बैठे गपशप कर रहे हैं। बड़ी बहू भी षड्यन्त्र में शरीक हैं। कुमुद के विवाह का प्रश्न छिड़ा हुआ है।

कामतानाथ ने मसनद पर टेक लगाते हुए कहा—दादा की बात दादा के साथ गई। मुरारी पण्डित विद्वान भी हैं और कुलीन भी होंगे, लेकिन जो आदमी अपनी विद्या और कुलीनता को रुपयों पर बेचे वह नीच है। ऐसे नीच आदमी के लड़के से हम कुमुद का विवाह सेंत में भी न करेंगे, पाँच हज़ार दहेज़ तो दूर की बात है। उसे बताओ धता और किसी दूसरे वर की तलाश करो। हमारे पास कुल २० हज़ार ही तो हैं। एक-एक हिस्से में पाँच हज़ार आते हैं। पाँच हज़ार दहेज़ में दे दें, और पाँच हज़ार नेग-न्योछावर, बाजे-गाजे में उड़ा दें, तो फिर हमारी बधिया ही बैठ जायगी।

उमानाथ बोले—मुझे अपना औषधालय खोलने के लिए कम से कम पाँच हज़ार की ज़रूरत है। मैं अपने हिस्से में से एक पाई भी नहीं दे सकता। फिर दूकान खुलते ही आमदनी तो होगी नहीं। कम से कम साल भर घर से खाना पड़ेगा।

दयानाथ एक समाचार-पत्र देख रहे थे। आँखों से ऐनक उतारते हुए बोले—मेरा विचार भी एक पत्र निकालने का है। प्रेस और पत्र में कम से कम दस हज़ार का कैपिटल चाहिए। पाँच हज़ार मेरे रहेंगे तो कोई न कोई साझेदार पाँच हज़ार का मिल जायगा। पत्रों में लेख लिख कर मेरा निर्वाह नहीं हो सकता।

कामतानाथ ने सिर हिलाते हुए कहा—अजी राम भजो, सेंत में कोई लेख छापता नहीं, रुपए कौन दिए देता है।

दयानाथ ने प्रतिवाद किया—नहीं, यह बात तो नहीं है। मैं तो कहीं भी बिना पेशगी पुरस्कार लिए नहीं लिखता।

कामता ने जैसे अपने शब्द वापस लिए—तुम्हारी बात मैं नहीं कहता भाई। तुम तो थोड़ा-बहुत मार लेते हो, लेकिन सबको तो नहीं मिलता।

बड़ी बहू ने श्रद्धा-भाव से कहा—कन्या भाग्यवान हो तो दरिद्र घर में भी सुखी रह सकती है। अभागी हो तो राजा के घर में भी रोएगी। यह सब नसीबों का खेल है।

कामतानाथ ने स्त्री की ओर प्रशंसा-भाव से देखा—फिर इसी साल हमें सीता का विवाह भी तो करना है।

सीतानाथ सब से छोटा था। सिर झुकाए भाइयों की स्वार्थ-भरी बातें सुन-सुन कर कुछ कहने के लिए उतावला हो रहा था। अपना नाम सुनते ही बोला—मेरे विवाह की आप लोग चिन्ता न करें। मैं जब तक किसी धन्धे से न लग जाऊँगा, विवाह का नाम भी न लूँगा। और सच पूछिए तो मैं विवाह करना ही नहीं चाहता। देश को इस समय बालकों की ज़रूरत नहीं, काम करने वालों की ज़रूरत है। मेरे हिस्से के रुपए आप कुमुद के विवाह में ख़र्च कर दें। सारी बातें तय हो जाने के बाद यह उचित नहीं है कि पण्डित मुरारीलाल से सम्बन्ध तोड़ लिया जाय।

उमा ने तीव्र स्वर में कहा—दस हज़ार कहाँ से आएँगे।

सीता ने डरते हुए कहा—मैं तो अपने हिस्से के रुपए देने कहता हूँ।

"और शेष ?"

"मुरारीलाल से कहा जाय कि दहेज में कुछ कमी कर दें। वह इतने स्वार्थान्ध नहीं हैं कि इस अवसर पर कुछ बल खाने को तैयार न हो जायँ। अगर वह तीन हज़ार में सन्तुष्ट हो जायँ, तो पाँच हज़ार में विवाह हो सकता है।"

उमा ने कामतानाथ से कहा—सुनते हैं भाई साहब, इसकी बातें ?

दयानाथ बोल उठे—तो इसमें आप लोगों का क्या नुक़सान है। यह अपने रुपए दे रहे हैं, ख़र्च कीजिए। मुरारी पण्डित से हमारा कोई बैर नहीं है। मुझे तो इस बात से ख़ुशी हो रही है कि भला हममें कोई तो त्याग करने योग्य है। इन्हें तत्काल रुपए की ज़रूरत नहीं है। सरकार से वज़ीफ़ा पाते ही हैं। पास होने पर कहीं न कहीं जगह मिल ही जायगी। हम लोगों की हालत तो ऐसी नहीं है।

कामतानाथ ने दूरदर्शिता का परिचय दिया—नुक़सान की एक ही कही। हममें से एक को कष्ट हो तो क्या और लोग बैठे देखेंगे? यह अभी लड़के हैं, इन्हें क्या मालूम कि समय पर एक रुपया एक लाख का काम करता है। कौन जानता है, कल इन्हें विलायत जाकर पढ़ने के लिए सरकारी वज़ीफ़ा मिल जाय, या सिविल सर्विस में आ जाएँ। उस वक्त सफ़र की तैयारियों में चार-पाँच हज़ार लग जाएँगे। तब किसके सामने हाथ फैलाते फिरेंगे। मैं यह नहीं चाहता कि दहेज़ के पीछे इनकी ज़िन्दगी नष्ट हो जाय।

इस तर्क ने सीतानाथ को भी तोड़ लिया। सकुचाता हुआ बोला—हाँ, यदि ऐसा हुआ तो बेशक मुझे रुपए की ज़रूरत होगी।

"क्या ऐसा होना असम्भव है ?"

"असम्भव तो मैं नहीं समझता, लेकिन कठिन अवश्य है। वज़ीफ़े उन्हें मिलते हैं, जिनके पास सिफ़ारिशें होती हैं, मुझे कौन पूछता है।"

"कभी-कभी सिफ़ारिशें धरी रह जाती हैं और बिना सिफ़ारिश वाले बाज़ी मार ले जाते हैं।"

"तो आप जैसा उचित समझें। मुझे तो यहाँ तक मञ्ज़ूर है कि चाहे मैं विलायत न जाऊँ, पर कुमुद अच्छे घर जाय।"

कामतानाथ ने निष्ठा-भाव से कहा—अच्छा घर दहेज़ देने ही से नहीं मिलता भैया। जैसा तुम्हारी भाभी ने कहा, यह नसीबों का खेल है। मैं तो चाहता हूँ कि मुरारीलाल को जवाब दे दिया जाय और कोई ऐसा वर खोजा जाय, जो थोड़े में राज़ी हो जाय। इस विवाह में मैं एक हज़ार से ज़्यादा नहीं ख़र्च कर सकता। पण्डित दीनदयाल कैसे हैं?

उमा ने प्रसन्न होकर कहा—बहुत अच्छे। एम० ए०, बी० ए० न सही। जजमानी से अच्छी आमदनी है।

दयानाथ ने आपत्ति की—अम्माँ से भी तो पूछ लेना चाहिए।

कामतानाथ को इसकी कोई ज़रूरत न मालूम हुई। बोले—उनकी तो जैसे बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई है। वही पुराने युग की बातें! मुरारीलाल के नाम पर उधार खाए बैठी हैं। यह नहीं समझतीं कि वह ज़माना नहीं रहा। उनको तो बस कुमुद मुरारी पण्डित के घर जाय, चाहे हम लोग तबाह हो जायँ।

उमा ने एक शङ्का उपस्थित की—अम्माँ अपने सब गहने कुमुद को दे देंगी, देख लीजिएगा।

कामतानाथ का स्वार्थ नीति से विद्रोह न कर सका। बोले—गहनों पर उनका पूरा अधिकार है। यह उनका स्त्री-धन है। जिसे चाहें दे सकती हैं।

उमा ने कहा—स्त्री-धन है तो क्या वह उसे लुटा देंगी? आख़िर वह भी तो दादा ही की कमाई है।

"किसी की कमाई हो। स्त्री-धन पर उनका पूरा अधिकार है।"

"यह क़ानूनी गोरखधन्धे हैं। बीस हज़ार में तो चार हिस्सेदार हों और दस हज़ार के गहने अम्माँ के पास रह जायँ। देख लेना, इन्हीं के बल पर वह कुमुद का विवाह मुरारी पण्डित के घर करेंगी।"

उमानाथ इतनी बड़ी रक़म को इतनी आसानी से नहीं छोड़ सकता। वह कपट-नीति में कुशल है। कोई कौशल रच कर माता से सारे गहने ले लेगा। उस वक़्त तक कुमुद के विवाह की चरचा करके फूलमती को भड़काना उचित नहीं।

कामतानाथ ने सिर हिला कर कहा—भई, मैं इन चालों को पसन्द नहीं करता।

उमानाथ ने खिसिया कर कहा—गहने दस हज़ार से कम के न होंगे।

कामता अविचलित स्वर में बोले—कितने ही के हों, मैं अनीति में हाथ नहीं डालना चाहता।

"तो आप अलग बैठिए। हाँ, बीच में भाँजी न मारिएगा।"

"मैं अलग रहूँगा।"

"और तुम सीता?"

"मैं भी अलग रहूँगा।"

लेकिन जब दयानाथ से यही प्रश्न किया गया, तो वह उमानाथ से सहयोग करने को तैयार हो गया। दस हज़ार में ढाई हज़ार तो उसके होंगे ही। इतनी बड़ी रक़म के लिए यदि कुछ कौशल भी करना पड़े तो क्षम्य है।

३

फूलमती रात का भोजन करके लेटी थी कि उमा और दया उसके पास जाकर बैठ गए। दोनों ऐसा मुँह बनाए हुए थे, मानो कोई भारी विपत्ति आ पड़ी है। फूलमती ने सशङ्क होकर पूछा—तुम दोनों घबड़ाए हुए मालूम होते हो?

उमा ने सिर खुजलाते हुए कहा—समाचार-पत्रों में लेख लिखना बड़े जोखिम का काम है अम्माँ। कितना ही बच कर लिखो, लेकिन कहीं न कहीं पकड़ हो ही जाती है। दयानाथ ने एक लेख लिखा था। उस पर पाँच हज़ार की ज़मानत माँगी गई है। अगर कल तक ज़मानत न जमा कर दी गई तो गिरफ़्तार हो जायँगे और दस साल की सज़ा ठुक जायगी।

फूलमती ने सिर पीट कर कहा—तो ऐसी बातें क्यों लिखते हो बेटा, जानते नहीं हो आजकल हमारे अदिन आए हुए हैं। जमानत किसी तरह टल नहीं सकती?

दयानाथ ने अपराधी भाव से उत्तर दिया—मैंने तो अम्माँ ऐसी कोई बात नहीं लिखी थी, लेकिन क़िस्मत को क्या करूँ। हाकिम ज़िला इतना कड़ा है कि ज़रा भी रियायत नहीं करता। मैंने जितनी दौड़-धूप हो सकती थी वह सब कर ली।

"तो तुमने कामता से रुपए का प्रबन्ध करने को नहीं कहा ?"

उमा ने मुँह बनाया—उनका स्वभाव तो तुम जानती हो अम्माँ। उन्हें रुपए प्राणों से प्यारे हैं। इन्हें चाहे कालापानी ही हो जाय, वह एक पाई न देंगे।

दया ने समर्थन किया—मैंने तो उनसे इसका ज़िक्र ही नहीं किया।

फूलमती ने चारपाई से उठते हुए कहा—चलो मैं कहती हूँ, देगा कैसे नहीं। रुपए इसी दिन के लिए होते हैं कि गाड़ कर रखने के लिए।

उमानाथ ने माता को रोक कर कहा—नहीं अम्माँ, उनसे कुछ न कहो। रुपए तो न देंगे, उलटे और हाय-हाय मचाएँगे। उनको अपनी नौकरी की ख़ैरियत मनानी है, इन्हें घर में रहने भी न देंगे। अफ़सरों से जाकर ख़बर दे दें तो आश्चर्य नहीं।

फूलमती ने लाचार होकर कहा—तो फिर जमानत का और क्या प्रबन्ध करोगे। मेरे पास तो कुछ नहीं है। हाँ मेरे गहने हैं, इन्हें ले जाव, कहीं गिरो रख कर जमानत दे दो। और आज से कान पकड़ो कि किसी पत्र में एक शब्द भी न लिखोगे।

दयानाथ कानों पर हाथ रख कर बोला—यह तो नहीं हो सकता अम्माँ कि तुम्हारे ज़ेवर लेकर मैं अपनी जान बचाऊँ। दस-पाँच साल की क़ैद ही तो होगी, झेल लूँगा। यहीं बैठा-बैठा क्या कर रहा हूँ।

फूलमती छाती पीटते हुए बोली—कैसी बातें मुँह से निकालते हो बेटा, मेरे जीते जी तुम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है। उसका मुँह झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के लिए हैं या और किसी दिन के लिए। जब तुम्हीं न रहोगे तो गहने लेकर क्या आग में झोकूँगी।

उसने पेटारी लाकर उसके सामने रख दी।

दया ने उमा की ओर जैसे फ़रियाद की आँखों से देखा, और बोला—आपकी क्या राय है भाई साहब ? इसी मारे मैं कहता था अम्माँ को जताने की ज़रूरत नहीं। जेल ही तो हो जाती, या और कुछ।

उमा ने जैसे सिफ़ारिश करते हुए कहा—यह कैसे हो सकता था कि इतनी बड़ी वारदात हो जाती और अम्माँ को ख़बर न होती। मुझसे यह नहीं हो सकता था कि सुन कर पेट में डाल लेता। मगर अब करना क्या चाहिए, यह मैं ख़ुद निर्णय नहीं कर सकता। न तो यही अच्छा लगता है कि तुम जेल जाओ और न यही अच्छा लगता है कि अम्माँ के गहने गिरो रक्खे जायँ।

फूलमती ने व्यथित कण्ठ से पूछा—क्या तुम समझते हो मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे हैं ? मैं तो अपने प्राण तक तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर दूँ, गहनों की बिसात ही क्या है।

दया ने दृढ़ता से कहा—अम्माँ, तुम्हारे गहने तो न लूँगा, चाहे मुझ पर कुछ ही क्यों न आ पड़े। जब आज तक तुम्हारी कुछ सेवा न कर सका, तो किस मुँह से तुम्हारे गहने उठा ले जाऊँ। मुझ जैसे कपूत को तो तुम्हारी कोख से जन्म ही न लेना चाहिए था। सदा तुम्हें कष्ट ही देता रहा।

फूलमती ने भी उतनी ही दृढ़ता से कहा—तुम अगर यों न लोगे तो मैं ख़ुद जाकर इन्हें गिरो रख दूँगी और ख़ुद हाकिम जिला के पास जाकर जमानत जमा कर आऊँगी। अगर इच्छा हो तो यह परीक्षा भी ले लो। आँखें बन्द हो जाने के बाद क्या होगा भगवान जाने, लेकिन जब तक जीती हूँ, तुम्हारी ओर कोई तिरछी आँखों से देख नहीं सकता।

उमानाथ ने मानो माता पर एहसान रख कर कहा—अब तो हमारे लिए कोई रास्ता नहीं रहा दयानाथ। क्या हरज है, ले लो। मगर याद रक्खो, ज्योंही हाथ में रुपए आ जायँ गहने छुड़ाने पड़ेंगे। सच कहते हैं, मातृत्व दीर्घ तपस्या है। माता के सिवाय इतना स्नेह और कौन कर सकता है। हम बड़े अभागे हैं कि माता के प्रति जितनी श्रद्धा रखनी चाहिए उसका शतांश भी नहीं रखते।

दोनों ने जैसे बड़े धर्म-सङ्कट में पड़ कर गहनों की पेटारी सँभाली और चलते बने। माता वात्सल्य भरी आँखों से उनकी ओर देख रही थी, और उसकी सम्पूर्ण आत्मा का आशीर्वाद जैसे उन्हें अपनी गोद में समेट लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। आज कई महीनों के बाद उसके भग्न मातृहृदय को अपना सर्वस्व अर्पण करके जैसे आनन्द की विभूति मिली। उसकी स्वामिनी कल्पना इसी त्याग के लिए, इसी आत्म-समर्पण के लिए जैसे कोई मार्ग ढूँढ़ती रहती थी। अधिकार या लोभ या ममता की वहाँ गन्ध तक न थी। त्याग ही उसका आनन्द

और त्याग ही उसका अधिकार है। आज अपना खोया हुआ अधिकार पाकर, अपनी सिरजी हुई प्रतिमा पर अपने प्राणों की भेंट करके वह निहाल हो गई।

४

तीन महीने और गुज़र गए। माँ के गहनों पर हाथ साफ़ करके चारों भाई उसकी दिलजोई करने लगे थे। अपनी स्त्रियों को भी समझाते रहते थे कि उसका दिल न दुखाएँ। अगर थोड़े से शिष्टाचार से उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है तो इसमें क्या हानि है। चारों करते अपने मन की, पर माता से सलाह ले लेते। या ऐसा जाल फैलाते कि वह सरला उनकी बातों में आ जाती और हरेक काम में सहमत हो जाती। बाग़ को बेचना उसे बहुत बुरा लगता था, लेकिन चारों ने ऐसी माया रची कि वह उसे बेचने पर राज़ी हो गई। किन्तु कुमुद के विवाह के विषय में मतैक्य न हो सका। माँ पं० मुरारीलाल पर जमी हुई थी, लड़के दीनदयाल पर अड़े हुए थे। एक दिन आपस में कलह हो गया।

फूलमती ने कहा—माँ-बाप की कमाई में बेटी का हिस्सा भी है। तुम्हें १६ हजार का एक बाग मिला, २५ हजार का एक मकान। बीस हजार नक्द में क्या पाँच हजार भी कुमुद का हिस्सा नहीं है?

कामतानाथ ने नम्रता से कहा—अम्माँ, कुमुद आपकी लड़की है तो हमारी बहिन है। आप दो-चार साल में परस्थान कर जायँगी, कर हमारा और उसका बहुत दिनों तक सम्बन्ध रहेगा। हम यथाशक्ति कोई ऐसी बात न करेंगे, जिससे उसका अमङ्गल हो। लेकिन हिस्से की जो बात कहती हो तो कुमुद का हिस्सा कुछ नहीं। दादा जीवित थे तब और बात थी। वह उसके विवाह में जितना चाहते ख़र्च करते। कोई उनका हाथ न पकड़ सकता था। लेकिन अब तो हमें एक-एक पैसे की किफ़ायत करनी पड़ेगी। जो काम एक हज़ार में हो जाय उसके लिए पाँच हज़ार ख़र्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है।

उमानाथ ने सुधारा—पाँच हज़ार क्यों, दस हज़ार कहिए।

कामता ने भवें सिकोड़ कर कहा—नहीं, मैं पाँच हज़ार ही कहूँगा। एक विवाह में पाँच हज़ार ख़र्च करने की हमारी हैसियत नहीं है।

फूलमती ने ज़िद पकड़ कर कहा—विवाह तो मुरारीलाल के पुत्र से ही होगा, चाहे पाँच हजार खर्च हों, चाहे दस हजार। मेरे पति की कमाई है। मैंने मर-मर कर जोड़ा है। अपनी इच्छा से खर्च करूँगी। तुम्हीं ने मेरे कोख से नहीं जन्म लिया है। कुमुद भी उसी कोख से आई है। मेरी आँखों में तुम सब बराबर हो। मैं किसी से कुछ माँगती नहीं। तुम बैठे तमाशा देखो, मैं सब कुछ कर लूँगी। २० हजार में पाँच हजार कुमुद का है।

कामतानाथ को अब कड़वे सत्य की शरण लेने के सिवा और कोई मार्ग न रहा। बोला—अम्माँ, तुम बरबस बात बढ़ाती हो। जिस रुपए को तुम अपना समझती हो वह तुम्हारे नहीं हैं, हमारे हैं। तुम हमारी अनुमति के बिना उसमें से कुछ नहीं ख़र्च कर सकतीं।

फूलमती को जैसे सर्प ने डस लिया—क्या कहा! फिर तो कहना। मैं अपने ही सञ्चे रुपए अपनी इच्छा से नहीं खर्च कर सकती!!

"वह रुपए तुम्हारे नहीं रहे, हमारे हो गए।"

"तुम्हारे होंगे, लेकिन मेरे मरने के पीछे।"

"नहीं, दादा के मरते ही हमारे हो गए।"

उमानाथ ने बेहयाई से कहा—अम्माँ क़ानून-क़ायदा तो जानतीं नहीं, नाहक़ उलझती हैं।

फूलमती क्रोध-विह्वल होकर बोली—भाड़ में जाय तुम्हारा कानून। मैं ऐसे कानून को नहीं मानती। तुम्हारे दादा ऐसे कोई बड़े धन्नासेठ न थे। मैंने ही पेट और तन काट कर यह गृहस्ती जोड़ी है, नहीं आज बैठने को छाँह न मिलती। मेरे जीते जी तुम मेरे रुपए नहीं छू सकते। मैंने तुम तीन भाइयों के विवाह में दस-दस हजार खर्च किए हैं। वही मैं कुमुद के विवाह में भी खर्च करूँगी।

कामतानाथ भी गर्म पड़ा—आपको कुछ भी ख़र्च करने का अधिकार नहीं है। उमानाथ ने बड़े भाई को डाँटा, आप ख़ामख़ाह अम्माँ के मुँह लगते हैं भाई साहब। मुरारीलाल को पत्र लिख दीजिए कि तुम्हारे यहाँ कुमुद का विवाह न होगा। बस छुट्टी हुई। यह क़ायदा-क़ानून तो जानतीं नहीं, व्यर्थ की बहस करती हैं।

फूलमती ने संयमित स्वर में कहा—अच्छा, क्या कानून है, जरा मैं भी सुनूँ?

उमा ने निरीह भाव से कहा—क़ानून यही है कि बाप के मरने के बाद जायदाद बेटों की हो जाती है। माँ का हक़ केवल रोटी-कपड़े का है।

फूलमती ने तड़प कर पूछा—किसने यह कानून बनाया है ?

उमा शान्त-स्थिर स्वर में बोला—हमारे ऋषियों, महाराज मनु ने, और किसने ?

फूलमती एक क्षण अवा् रह कर आहत कण्ठ से बोली—तो इस घर में मैं तुम्हारे टुकड़ों पर पड़ी हुई हूँ ?

उमानाथ ने न्यायाधीश की निर्ममता से कहा—तुम जैसा समझो।

फूलमती की सम्पूर्ण आत्मा मानो इस वज्राघात से चीत्कार करने लगी। उसके मुख से जलती हुई चिङ्गारियों की भाँति यह शब्द निकल पड़े—मैंने घर बनवाया, मैंने सम्पत्ति जोड़ी, मैंने तुम्हें जन्म दिया, पाला और आज मैं इस घर में ग़ैर हूँ। मनु का यही कानून है और तुम उसी कानून पर चलना चाहते हो। अच्छी बात है। अपना घर-द्वार लो। मुझे तुम्हारी आश्रिता बन कर रहना स्वीकार नहीं। इससे कहीं अच्छा है कि मर जाऊँ। वाह रे अन्धेर! मैंने पेड़ लगाया और मैं ही उसकी छाँह में खड़ी नहीं हो सकती। अगर यही कानून है तो इसमें आग लग जाय।

चारों युवकों पर माता के इस क्रोध और आतङ्क का कोई असर न हुआ। क़ानून का फ़ौलादी कवच उनकी रक्षा कर रहा था। इन काँटों का उन पर क्या असर हो सकता था।

ज़रा देर में फूलमती उठ कर चली गई। आज जीवन में पहली बार उसका वात्सल्य-मग्न मातृत्व अभिशाप बन कर उसे धिक्कारने लगा। जिस मातृत्व को उसने जीवन की विभूति समझा था, जिसके चरणों पर वह सदैव अपनी समस्त अभिलाषाओं और कामनाओं को अर्पित करके अपने को धन्य मानती थी, वही मातृत्व आज उसे उस अग्निकुण्ड सा जान पड़ा, जिसमें उसका जीवन जल कर भस्म हो रहा था।

सन्ध्या हो गई थी। द्वार पर नीम का वृक्ष सिर झुकाए निस्तब्ध खड़ा था, मानो संसार की गति पर क्षुब्ध हो रहा हो। अस्ताचल की ओर प्रकाश और जीवन का देवता फूलमती के मातृत्व ही की भाँति अपनी चिता में जल रहा था।

५

फूलमती अपने कमरे में जाकर लेटी तो उसे मालूम हुआ, उसकी कमर टूट गई है। पति के मरते ही अपने पेट के लड़के उसके शत्रु हो जायँगे, उसको स्वप्न में भी गुमान न था। जिन लड़कों को उसने अपना हृदय-रक्त पिला-पिला कर पाला, वही आज उसके हृदय पर यों आघात कर रहे हैं! अब यह घर उसे काँटों की सेज हो रहा था। जहाँ उसकी कुछ क़द्र नहीं, कुछ गिन्ती नहीं, वहाँ अनाथों की भाँति पड़ी रोटियाँ खाए, यह उसकी अभिमानी प्रकृति के लिए असह्य था।

पर उपाय ही क्या था। वह लड़कों से अलग होकर रहे भी तो नाक किसकी कटेगी! संसार उसे थूके तो क्या, और लड़कों को थूके तो क्या। बदनामी तो उसी की है। दुनिया यही तो कहेगी कि चार जवान बेटों के होते बुढ़िया अलग पड़ी हुई मजूरी करके पेट पाल रही है। जिन्हें उसने हमेशा नीच समझा वही उस पर हँसेंगे। नहीं, यह अपमान इस अनादर से कहीं ज़्यादा हृदय-विदारक था। अब अपना और घर का परदा ढका रखने में ही कुशल है। हाँ, अब उसे अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ेगा। समय बदल गया है। अब तक स्वामिनी बन कर रही, अब लौंडी बन कर रहना पड़ेगा। ईश्वर की यही इच्छा है। अपने बेटों की बातें और लातें ग़ैरों की बातों और लातों की अपेक्षा फिर भी ग़नीमत हैं।

वह बड़ी देर तक मुँह ढाँपे अपनी दशा पर रोती रही। सारी रात इसी आत्म-वेदना में कट गई। शरद का प्रभात डरता-डरता ऊषा की गोद से निकला, जैसे कोई क़ैदी छिप कर जेल से भाग आया हो। फूलमती अपने नियम के विरुद्ध आज तड़के ही उठी। रात भर में उसका मानसिक परिवर्तन हो चुका था। सारा घर सो रहा था और वह आँगन में झाड़ू लगा रही थी। रात भर ओस में भीगी हुई पक्की ज़मीन उसके नङ्गे पैरों में काँटों की तरह चुभ रही थी। पण्डित जी उसे कभी इतने सबेरे उठने न देते थे। शीत उसके लिए बहुत हानिकर थी। पर अब वह दिन नहीं रहे। प्रकृति को भी समय के साथ बदल देने का प्रयत्न कर रही थी। झाड़ू से फ़ुर्सत

पाकर उसने आग जलाई और चावल-दाल की कङ्करियाँ चुनने लगी। कुछ देर में लड़के जागे। बहुएँ उठीं। सभों ने बुढ़िया को सर्दी से सिकुड़े हुए काम करते देखा, पर किसी ने यह न कहा कि अम्माँ क्यों हलकान होती हो। शायद सब के सब बुढ़िया के इस मान-मर्दन पर प्रसन्न थे।

आज से फूलमती का यही नियम हो गया कि जी तोड़ कर घर का काम करना, और अन्तरङ्ग नीति से अलग रहना। उसके मुख पर जो एक आत्मगौरव झलकता रहता था, उसकी जगह अब गहरी वेदना छाई हुई नज़र आती थी। जहाँ बिजली जलती थी, वहाँ अब तेल का दिया टिमटिमा रहा था; जिसे बुझा देने के लिए हवा का एक हलका सा झोंका काफ़ी है।

मुरारीलाल को इन्कारी पत्र लिखने की बात पक्की हो ही चुकी थी। दूसरे दिन पत्र लिख दिया गया। दीनदयाल से कुमुद का विवाह निश्चित हो गया। दीनदयाल की उम्र ४० से कुछ अधिक थी, मर्याद में भी कुछ हेठे थे, पर रोटी-दाल से ख़ुश थे। बिना किसी ठहराव के विवाह करने पर राज़ी हो गए। तिथि नियत हुई, बारात आई, विवाह हुआ और कुमुद बिदा कर दी गई। फूलमती के दिल पर क्या गुज़र रही थी, उसे कौन जान सकता है। कुमुद के दिल पर क्या गुज़र रही थी, इसे भी कौन जान सकता है। पर चारों भाई बहुत प्रसन्न थे, मानो उनके हृदय का काँटा निकल गया हो। ऊँचे कुल की कन्या, मुँह कैसे खोलती। भाग्य में सुख भोगना लिखा होगा सुख भोगेगी, दुख भोगना लिखा होगा दुख झेलेगी। हरिइच्छा बेकसों का अन्तिम अवलम्ब है। घर वालों ने जिससे विवाह कर दिया, उसमें हज़ार ऐब हों तो भी वह उसका उपास्य, उसका स्वामी है। प्रतिरोध उसकी कल्पना से परे था।

फूलमती ने किसी काम में दख़ल न दिया। कुमुद को क्या दिया गया, मेहमानों का कैसा सत्कार किया गया, किसके यहाँ से नेवते में क्या आया, किसी बात से भी उसे सरोकार न था। उससे कोई सलाह भी ली गई तो यही कहा—बेटा, तुम लोग जो करते हो अच्छा ही करते हो, मुझसे क्या पूछते हो।

जब कुमुद के लिए द्वार पर डोली आ गई और कुमुद माँ के गले लिपट कर रोने लगी, तो वह बेटी को अपनी कोठरी में ले गई और जो कुछ सौ-पचास रुपए और दो-चार मामूली गहने उसके पास बच रहे थे, बेटी के अञ्चल में डाल कर बोली—बेटी, मेरी तो मन की मन में ही रह गई, नहीं क्या आज तुम्हारा विवाह इस तरह होता और तुम इस तरह बिदा की जातीं।

आज तक फूलमती ने अपने गहनों की बात किसी से न कही थी। लड़कों ने उसके साथ जो कपट-व्यवहार किया था, इसे चाहे वह अब तक न समझी हो, लेकिन इतना जानती थी कि गहने फिर न मिलेंगे और मनोमालिन्य बढ़ने के सिवा कुछ हाथ न लगेगा। लेकिन इस अवसर पर उसे अपनी सफ़ाई देने की ज़रूरत मालूम हुई। कुमुद यह भाव मन में लेकर जाए कि अम्माँ ने अपने गहने बहुओं के लिए रख छोड़े, इसे वह किसी तरह न सह सकती थी। इसीलिए वह उसे अपनी कोठरी में ले गई थी। लेकिन कुमुद को पहले ही इस कौशल की टोह मिल चुकी थी। उसने गहने और रुपए अञ्चल से निकाल कर माता के चरणों पर रख दिए और बोली—अम्माँ, मेरे लिए तुम्हारा आशीर्वाद लाख रुपयों के बराबर है। तुम इन चीज़ों को अपने पास रक्खो। न जाने अभी तुम्हें किन विपत्तियों का सामना करना पड़े।

फूलमती कुछ कहना ही चाहती थी कि उमानाथ ने आकर कहा—क्या कर रही है कुमुद? चल जल्दी कर। साइत टली जाती है। वह लोग हाय-हाय कर रहे हैं। फिर तो दो-चार महीने में आएगी ही। जो कुछ लेना-देना हो ले लेना।

फूलमती के घाव पर जैसे मनों निमक पड़ गया। बोली—मेरे पास अब क्या है भैया, जो मैं इसे दूँगी। जाव बेटी, भगवान तुम्हारा सोहाग अमर करें।

कुमुद बिदा हो गई। फूलमती पछाड़ खाकर गिर पड़ी। जीवन की अन्तिम लालसा नष्ट हो गई।

६

एक साल बीत गया।

फूलमती का कमरा घर में सब कमरों से बड़ा और हवादार था। कई महीनों से उसने उसे बड़ी बहू के लिए ख़ाली कर दिया था। और ख़ुद एक छोटी सी कोठरी में रहने लगी थी, जैसे कोई भिखारिन हो। बेटों

और बहुओं से अब उसे ज़रा भी स्नेह न था। वह अब घर की लौंडी थी। घर के किसी प्राणी, किसी वस्तु, किसी प्रसङ्ग से उसे प्रयोजन न था। वह केवल इसलिए जीती थी कि मौत न आती थी। सुख या दुख का अब उसे लेश मात्र भी ज्ञान न था। उमानाथ का औषधालय खुला, मित्रों की दावत हुई, नाच-तमाशा हुआ। दयानाथ का प्रेस खुला, फिर जलसा हुआ। सीतानाथ को वज़ीफ़ा मिला और वह विलायत गया। फिर उत्सव हुआ। कामतानाथ के बड़े लड़के का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ, फिर धूमधाम हुई। लेकिन फूलमती के मुख पर आनन्द की छाया तक न आई। कामतानाथ टाइफ़ाइड में महीने भर बीमार रहा और मर कर उठा। दयानाथ ने अब की अपने पत्र का प्रचार बढ़ाने के लिए वास्तव में एक आपत्तिजनक लेख लिखा और छः महीने की सज़ा पाई। उमानाथ ने एक फ़ौजदारी के मामले में रिशवत लेकर ग़लत रिपोर्ट लिखी और उनकी सनद छीन ली गई। पर फूलमती के चेहरे पर रञ्ज की परछाईं तक न पड़ी। उसके जीवन में अब कोई आशा, कोई दिलचस्पी, कोई चिन्ता न थी। बस पशुओं की तरह काम करना और खाना, यही उसकी ज़िन्दगी के दो काम थे। जानवर मारने से काम करता है, पर खाता है मन से। फूलमती बेकहे काम करती थी, पर खाती थी विष के कौर की तरह। महीनों सिर में तेल न पड़ता, महीनों कपड़े न धुलते, कुछ परवाह नहीं। वह चेतनाशून्य हो गई थी।

सावन की झड़ी लगी हुई थी। मलेरिया फैल रहा था। आकाश में मटियाले बादल थे। ज़मीन पर मटियाला पानी। आर्द्र वायु शीतज्वर और स्वाँस का वितरण करती फिरती थी। घर की महरी बीमार पड़ गई। फूलमती ने घर के सारे बर्तन माँजे, पानी में भीग-भीग कर सारा काम किया। फिर आग जलाई, और चूल्हे पर पतीलियाँ चढ़ा दीं। लड़कों को समय पर भोजन तो मिलना ही चाहिए।

सहसा उसे याद आया, कामतानाथ नल का पानी नहीं पीते। उसी वर्षा में गङ्गाजल लाने चली।

कामतानाथ ने पलङ्ग पर लेटे-लेटे कहा—रहने दो अम्माँ, मैं पानी भर लाऊँगा, आज महरी ख़ूब बैठ रही।

फूलमती ने मटियाले आकाश की ओर देख कर कहा—तुम भीग जावगे बेटा, सर्दी हो जायगी।

कामतानाथ बोले—तुम भी तो भीग रही हो। कहीं बीमार न पड़ जाव।

फूलमती निर्मम भाव से बोली—मैं बीमार न पड़ूँगी। मुझे भगवान ने अमर कर दिया है।

उमानाथ भी वहीं बैठा हुआ था। उसके औषधालय में कुछ आमदनी न होती थी, इसलिए बहुत चिन्तित रहता था। भाई-भावज की मुँहदेखी करता रहता था। बोला—जाने भी दो भैया। बहुत दिनों बहुओं पर राज कर चुकी हैं। उसका प्रायश्चित्त तो करने दो।

गङ्गा बढ़ी हुई थी, जैसे समुद्र हो। क्षितिज सामने के कूल से मिला हुआ था। किनारे के वृक्षों की केवल फुनगियाँ पानी के ऊपर रह गई थीं। घाट ऊपर तक पानी में डूब गए थे। फूलमती कलसा लिए नीचे उतरी। पानी भरा और ऊपर जा रही थी कि पाँव फिसला। सँभल न सकी। पानी में गिर पड़ी। पल भर हाथ-पाँव चलाए, फिर लहरें उसे नीचे खींच ले गईं। किनारे पर दो-चार पण्डे चिल्लाए—"अरे दौड़ो, बुढ़िया डूबी जाती है।" दो-चार आदमी दौड़े भी। लेकिन फूलमती लहरों में समा गई थी, उन बलखाती हुई लहरों में, जिन्हें देख कर ही हृदय काँप उठता था।

एक ने पूछा—यह कौन बुढ़िया थी?

"अरे वही पण्डित अयोध्यानाथ की विधवा है।"

"अयोध्यानाथ तो बड़े आदमी थे?"

"हाँ थे तो, पर इसके भाग्य में ठोकरें खाना लिखा था।"

"उनके तो कई लड़के बड़े-बड़े हैं और सब कमाते हैं!"

"हाँ, सब हैं भाई, मगर भाग्य भी तो कोई वस्तु है।"

पारिजात

[महाकवि पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध']

बड़े मनोहर हरे-हरे दल किसले तुमने पाए हैं ?
तुम्हें देख करके मेरे दृग क्यों इतने ललचाए हैं ?
कहाँ मिल गए तुमको इतने क्यों ये इतने प्यारे हैं ?
किसके सुन्दर हाथों के ये सुन्दर फूल सँवारे हैं ?

❀

जब सित-पीत रङ्ग के खिलते फूल तुम्हें मिल जाते हैं।
जब निखरी हरियाली में ये अपनी छटा दिखाते हैं।
तब किसको हैं नहीं मोहते, किसको नहीं लुभाते हैं ?
प्याला किसी निराले रस का किसको नहीं पिलाते हैं ?

❀

मन्द पवन को सुरभि दान कर क्यों सुगन्ध फैलाते हो ?
किसके स्वागत के निमित्त तुम भू पर फूल बिछाते हो ?
किन कमनीय कामनाओं से सुमनों से भर जाते हो ?
क्या शरदागम अवलोकन कर फूले नहीं समाते हो ?

❀

किन रीझों से रीझ रहे हो क्यों उमङ्ग में आते हो ?
अपने अन्तर भावों को क्यों कुसुमित कर दिखलाते हो ?
क्या प्रिय पावस की सुधि करके परम सरस बन जाते हो ?
मञ्जु वारि वे बरसाते तो तुम प्रसून बरसाते हो ?

देख चमकते तारकचय को निर्मल नील गगन-तल में।
उनको प्रतिबिम्बित अवलोके विमल सरोवर के जल में।
धारण की है क्या वैसी ही छबि तुमने वसुधा-तल में।
श्वेत सुमन-कुल को सञ्चय कर निज कोमल श्यामल दल में।

❀

छिटका कर चाँदनी सुधा रस जब भू पर बरसावेगी।
लोक-रञ्जनी रजनी जब अनुरञ्जन करती आवेगी।
मन्द-मन्द हँस रसमय बनता जब मयङ्क को पाओगे।
क्या तब उन्हें सुमनता दिखला सुमन-साज पहनाओगे ?

❀

जब अनुराग-राग से रञ्जित होकर ऊषा आती है।
जब विहङ्ग गाने लगते हैं नभ में लाली छाती है।
तब क्यों सुमन-समूह गिरा कर भूतल को भर देते हो ?
क्या रवि का अभिनन्दन करके कीर्ति लोक में लेते हो ?

❀

जिस धरती माता ने तुमको जन्म दिया पोसा पाला।
पिला-पिला कर जीवन जिसने जड़तन में जीवन डाला।
क्या उसके आराधन ही को है यह सारा आयोजन ?
क्या ले कुसुम-समूह उसी के पग का करते हो अर्चन ?

❀

फूल तुम्हारे किसलय के से कर से सदा चुने जावें।
बसन किसी के रँगें कम्बु से कण्ठों में शोभा पावें।
पारिजात ! प्रतिदिन बिखेरती रहे ओस तुम पर मोती।
पाकर शरद सब दिनों फूलो दिशा रहे सुरभित होती।

महात्मा बुद्ध और उनकी शिक्षा

[श्री० अन्तर्वेदी]

हिन्दू शास्त्रानुसार महात्मा गौतम-बुद्ध श्रीरामचन्द्र और भगवान कृष्णचन्द्र की तरह ईश्वर के अवतार माने जाते हैं। विष्णु-पुराण और वेदान्त-सूत्र आदि ग्रन्थों में बुद्ध की कथाएँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी जहाँ ईश्वर के अवतारों का वर्णन किया गया है, वहाँ ये दस अवतारों में नवें और चौबीस अवतारों में तेईसवें अवतार कहे गए हैं।

आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व समस्त भारत में बौद्ध-धर्म की दुन्दुभी बज रही थी और प्रत्येक भारतवासी बौद्ध-धर्म का अनुयायी था। परन्तु कालचक्र के आवर्त्त में पड़ कर बौद्ध-धर्म इस देश से विताड़ित हो गया। यद्यपि आज भी संसार के अधिकांश जन-समूह को बौद्ध होने का गर्व है, परन्तु भारत में तो आजकल बौद्धों की संख्या नहीं के बराबर है। वास्तव में यह भारतवासियों का दुर्भाग्य है कि ऐसा पवित्र, उदार और सार्वभौम धर्म भारत से विलुप्त हो गया।

आज से ढाई हज़ार वर्ष पूर्व, भीषण महाभारत युद्ध में अगणित नररत्नों के नाश हो जाने तथा आसपास की अनार्य जातियों के आक्रमण के कारण आर्यों की प्राचीन सभ्यता अधोगति की सीमा पर पहुँच चुकी थी। चारों ओर अविद्या का अन्धकार फैल चुका था। धर्म के नाम पर नाना प्रकार के अन्धविश्वासों की भरमार सी हो रही थी। विशुद्ध अध्यात्मवाद अर्थहीन कर्म-काण्ड के जञ्जाल में पड़ कर विलुप्तप्राय हो रहा था। ब्राह्मणों ने वेदादि सद्ग्रन्थों को अपनी बपौती मान लिया था और उन्हें तोते की तरह रट कर उसका मनमाना अर्थ करने लग गए थे। यज्ञ के नाम पर पशुबलि का घोर प्रचार हो रहा था। जीवहिंसा ही महान् धर्म-कर्म समझा जाता था। पितरों तक को मांस के पिण्ड प्रदान किए जाते थे। ऐसा कोई कर्म-काण्ड न था, जिसमें मांस और मदिरा का विधान न हो। देवी और देवता का प्रसाद समझ कर आपामर आर्य-सन्तान इन दोनों वस्तुओं का सेवन करती थी। तीर्थस्थान दुराचार और पाप के अड्डे बने हुए थे। वेदविहित कर्म-काण्ड के प्रतिकूल तान्त्रिक मत का प्रचार बढ़ गया था। मद्य, मांस और व्यभिचार को धर्म का अङ्ग बना लिया गया था। इस अभिनव धर्म के अनुयायी मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन को स्वर्ग का सोपान समझते थे। इन्हीं कुकर्मों द्वारा अपने इष्टदेव की आराधना किया करते थे। जहाँ धर्म की यह दुर्गति थी, वहाँ समाज की कितनी अधोगति होगई होगी, यह कहना ही वृथा है।

ऐसे विकट समय में, जब कि धर्म की ग्लानि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो जाती है, समाज में विशृङ्खलता फैल जाती है और पृथिवी पर पापाचार फैल जाता है तो, गीता के अनुसार भगवान का आसन डोल जाता है, वे धर्म के अभ्युत्थान के लिए स्वयं मानव-रूप में इस धराधाम पर अवतीर्ण होते हैं। धर्म के पुनः संस्थापनार्थ वे प्रत्येक युग में अवतार धारण करते हैं।

हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार महात्मा बुद्ध के आविर्भाव का भी यही रहस्य है। क्योंकि, जैसा कि हम ऊपर निवेदन कर चुके हैं, आर्य-धर्म और आर्य-सभ्यता को अधोगति की पराकाष्ठा से बचाने के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। वे राजकुमार थे। उनके पिता राजा शुद्धोदन ने उन्हें राजकुमारोचित शिक्षा प्रदान की थी। बड़े नाज़ोनेमत के साथ उनका पालन-पोषण हुआ था। एक सुरूपवती कुमारी के साथ उनका विवाह हुआ। वे राजोचित ठाट-बाट के साथ सुसज्जित राजप्रासाद में निवास करते थे। परन्तु उनमें राजैश्वर्य भोग की लिप्सा न थी। राजकाज में भी उनका मन नहीं लगता था। वे इन तमाम सांसारिक बातों से उदासीन रहते थे। राजा को यह बात मालूम थी। उन्होंने राजकुमार के आनन्द-विलास की प्रचुर सामग्री एकत्र कर दी। कोई

घृणास्पद, कुरूप और दूषित वस्तु उनके सामने न जाने पाती थी ! उनके महल के पास एक सुन्दर प्रमोद-उद्यान था, उसमें सूखे फूल और पीली पत्तियाँ तक नहीं रहने दी जाती थीं। संसार का रोग-शोक-मय दृश्य कुमार की नज़रों के सामने न पड़ जाए, इसलिए उन्हें बहुधा बाहर भी निकलने नहीं दिया जाता था।

इस प्रकार कुमार सिद्धार्थ की आयु के उन्तीस वर्ष बीत गए। उनकी परम रूपवती धर्मपत्नी युवराज्ञी यशोधरा ने, जिसे उन्होंने स्वयम्बर-सभा में अपना हस्तलाघव दिखा कर प्राप्त किया था, एक पुत्ररत्न प्रसव किया। नावजात शिशु का नाम राहुल था। इसके जन्म के कुछ पूर्व कुमार को राजधानी की सैर करने की आज्ञा मिली। राजा शुद्धोदन ने नगर में घोषणा करवा दी थी कि समस्त रास्ते, गली-कूचे, मकान, दूकान .खूब सजाई जाएँ, ताकि राजकुमार की दृष्टि किसी खिन्नता उत्पन्न करने वाली कुत्सित वस्तु पर न पड़े। प्रजा ने भी राजाज्ञा का अक्षरशः पालन किया। छन्न नाम के सारथी के साथ चार श्वेत घोड़ों के रथ पर राजकुमार सिद्धार्थ राजधानी की सैर को निकले। कुछ आगे बढ़ने पर एक दुर्बल वृद्ध लाठी टेकता, मानो जीवन से युद्ध करता हुआ, सामने आ निकला।

राजकुमार ने सारथी से पूछा—यह कौन है? इसकी दशा ऐसी क्यों है?

सारथी ने उत्तर दिया—यह वृद्ध हो गया है। जीवन के सन्ध्याकाल में उपस्थित है। पहले यह बालक था, फिर जवान हुआ। भोग-विलास में लिप्त रहा, अब जीवन की अन्तिम सीमा पर पहुँचा है, इसीसे इसकी यह दशा है।

कुमार ने उद्विग्न होकर पूछा—क्या मैं भी ऐसा ही हो जाऊँगा?

सारथी बोला—अवश्य। यह तो प्राणि-मात्र के लिए प्रकृति का साधारण नियम है। 'फरा सो झरा वो बरा सो बुताना!'

कुमार ने खेद के साथ कहा—उस सुख से मनुष्य के चित्त को क्या सन्तोष होगा, जो इतना जल्द विलीन हो जाता है।

इसके बाद उन्होंने रथ को लौटा लेने की आज्ञा दी। परन्तु रास्ते में उन्हें तीन और वैसे ही दुखद दृश्य दिखलाई दिए। एक कोढ़ी चला जा रहा था। उसके बाद एक मुर्दे को उसके आत्मीय श्मशान की ओर ले जा रहे थे। । अन्त में एक कषाय वस्त्रधारी प्रसन्न वदन संन्यासी दीख पड़ा।

कुमार के प्रश्न करने पर सारथी ने बताया—जो संसार में जन्म लेता है, उसके लिए रोग, जरा और मृत्यु अनिवार्य है। इससे छूटने के लिए ही इस संन्यासी ने संन्यास ग्रहण किया है। वह त्यागी है। इसीसे उसके मुख पर प्रसन्नता दिखाई पड़ रही है।

कुमार ने रथ को राजमहल की ओर लौटा ले चलने की आज्ञा दी। उन्होंने आज ही रात को संसार छोड़ देने का निश्चय कर लिया। रास्ते में एक ऊँची अट्टालिका की खिड़की पर गौतमी नाम की एक शाक्य-कुमारी बैठी थी। उसने राजकुमार को लक्ष्य करके एक 'गाथा' कही—

अति निवृत माता सोई, अति निवृत पितु सोइ॥
अति निवृति नारी सोई, जासु पती अस होइ॥

कुमार ने गौतमी को अपना गुरु माना, गुरु-दक्षिणा-स्वरूप अपना मूल्यवान हार उसके पास भेजवा दिया। और उसी रात को अपनी प्यारी पत्नी और सद्यजात शिशु राहुल को छोड़ कर निवृत्त-प्राप्ति के लिए घर से निकल पड़े। सारथी छन्न उनके साथ था। वे एक द्रुतगामी अश्व पर आरूढ़ थे।

राजधानी से दूर निकल जाने पर कुमार घोड़े से उतर पड़े और अपने राजसी आभूषण आदि उतार कर छन्न से बोले—"तुम घोड़े के साथ इन्हें लेकर वापस लौट जाओ। मैं जहाँ जाता हूँ, वहाँ इन चीज़ों की कोई आवश्यकता नहीं है।" छन्न ने राजकुमार को समझाने-बुझाने की कोशिश की, परन्तु राजकुमार के मन पर उसके अनुनय-विनय का कुछ प्रभाव न पड़ा। छन्न वाध्य होकर वापस लौट पड़ा और कुमार सिद्धार्थ आगे बढ़े।

कुमार ने राजोचित आभूषण तो उतार ही दिए थे, परन्तु वस्त्र वही थे। कुछ आगे जाकर उन्होंने अपने वस्त्र भी उतार कर एक भिखारी को अर्पण कर दिए और उसके फटे-पुराने वस्त्र लेकर स्वयं धारण किया। कुमार तेज़ी से आगे बढ़े और कुछ दिनों में वैशाली पहुँचे। वहाँ कुछ दिन ठहर कर उन्होंने एक विद्वान से 'अकिञ्चनायत' (अर्थात्, कुछ भी नहीं है) की शिक्षा ग्रहण की। वहाँ से राजगृह आए। वहाँ रामपुत्र रु क नाम का एक दार्शनिक विद्वान रहता था। कुमार ने कुछ दिन उसके

[महात्मा बुद्ध की धर्मपत्नी यशोधरा द्वारा]

अर्चना

[महात्मा बुद्ध की धर्मपत्नी यशोधरा द्वारा]

पास रह कर दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया, फिर वहाँ से गयशीर्ष (गया) पर्वत पर चले आए और निरञ्जना नदी के किनारे तपश्चर्या में लगे।

आषाढ़ की पूर्णिमा थी। आकाश साफ़ था। शुभ्र चाँदनी चारों ओर छिटकी हुई थी। कुमार सिद्धार्थ एक पीपल (बोधि) के वृक्ष के नीचे ध्यान-मग्न बैठे हुए थे। उसी समय उन्हें एकाएक दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया। जीवन का वास्तविक रहस्य उनकी समझ में आ गया। जिसे प्राप्त करने के लिए वे व्यस्त और चिन्तित थे, वह वस्तु उन्हें प्राप्त हो गई। वे बुद्ध हो गए। उन्होंने अलौकिक सिद्धि प्राप्त कर ली। उन्होंने कहा :—

अनेक जाति संसारं सन्धाविसम निब्बसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुःख जाति पुनः पुनः॥
गहकारक दिट्ठोसि पुन गेहं न काहसि।
सब्बते फासका भग्गा गहकूटं विसंकितं॥
विसंखारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा।

अर्थात्—"मैं इस संसार में अनेक जन्मों से जन्म-मरण के कष्टों को सहता हुआ, इस गृह के निर्माणकर्ता को ढूँढ़ता रहा, परन्तु वह मुझे न मिला। हे भवन-निर्माता, आज मैंने तुझे देख लिया। अब तू फिर इसका दूसरा घर न बना सकेगा। मैंने तेरे सारे सामान तोड़-फोड़ डाले हैं। मेरा चित्त अब संस्कारहीन हो गया है। ईर्षा और तृष्णा का भी मैंने समूल नाश कर दिया है।"

इस दिव्य ज्ञानालोक की प्राप्ति के बाद भगवान तथागत उस बोधि-द्रुम के नीचे से उठ पड़े और जिस महान् उद्देश्य को लेकर संसार में उनका आविर्भाव हुआ था, उसकी पूर्ति का कार्य उन्होंने आरम्भ कर दिया। वे आर्यावर्त के नाना स्थानों में भ्रमण कर अपनी अलौकिक शिक्षा का प्रचार करने लगे।

अहिंसा उनकी सर्वोपरि और सर्व-प्रधान शिक्षा थी। धर्म के नाम पर पशुवध देख कर उनका कोमल हृदय काँप उठा था। उन्होंने सर्व-प्रथम अपने शिष्यों को 'अहिंसा परमोधर्मः' की शिक्षा प्रदान की। किसी का गला काट कर उसे मार डालने को ही बौद्ध मतानुसार अहिंसा नहीं कहते। अपितु हर प्रकार की शारीरिक और मानसिक यन्त्रणा का अर्थ हिंसा है। वरन् शारीरिक हिंसा की अपेक्षा मानसिक हिंसा कहीं अधिक बुरी है। यहाँ तक कि किसी को क वचन कहना भी घोर हिंसा है।

राजा बिम्बसार महात्मा बुद्ध के अन्यतम शिष्य और सहचर थे। उन्हें उपदेश प्रदान करते हुए महात्मा ने कहा है—जब हम किसी को प्राणदान करने में असमर्थ हैं, तो हमें किसी का प्राण-हरण करने का भी कोई अधिकार नहीं है। अपने प्राण सबको प्यारे हैं। कोई प्राणी मरना नहीं चाहता। मरने के समय, प्राण निकलने के समय बड़ी यन्त्रणा होती है। अपने स्वार्थ के लिए अथवा अपने विश्वासानुसार अपने इष्ट-देवता को सन्तुष्ट करने के लिए किसी का प्राण लेना महा निकृष्ट कार्य है—घोर पाप है।

इस उपदेश का भगवान बुद्ध के जीवन-चरित्र से बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। एक बार महाराज बिम्बसार के यहाँ एक बृहत् यज्ञानुष्ठान होने वाला था। महाराज के आज्ञानुसार चरवाहे बहुत से पशुओं को हाँक कर राजधानी की ओर ले जा रहे थे। जल्दी-जल्दी चलने के लिए चरवाहे उन पशुओं को अपने मज़बूत डण्डों से पीटते भी जाते थे। उनमें एक पशु बचा था। उसके पैर में घाव हो गया था। वह लँगड़ाता चलता था। उसके घाव से रक्त बह रहा था। यह दृश्य देख कर बुद्धदेव का सहज करुण हृदय उमड़ आया। उन्होंने चरवाहों से पूछा—"इस कड़ी धूप में इन निरीह पशुओं को कहाँ लिए जा रहे हो?" चरवाहों ने उत्तर में महाराज बिम्बसार के यज्ञ की बात कही। महात्मा ने लँगड़े पशु-शावक को उठा कर अपने कन्धे पर रख लिया और चरवाहों के साथ-साथ चले।

यज्ञशाला में ऋत्विज एक पशु को अपने तीक्ष्ण धार खाँड़े से मारना ही चाहता था कि महात्मा ने उसे रोका और राजा से बोले—देवता के लिए प्राणि-मात्र समान हैं। एक जीव की हत्या के बदले देवता से दया की अभिलाषा करना मूर्खता है। ऐसे पापपूर्ण कर्म से देवता कदापि प्रसन्न नहीं हो सकते।

महाराज बिम्बसार पर महात्मा के उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने अपने राज्य में सदा के लिए पशु-वध बन्द करा दिया और स्वयं सपरिवार महात्मा बुद्ध का शिष्य बन गया।

महात्मा बुद्ध के मतानुसार यह विराट विश्व कार्य-कारण के अविच्छिन्न नियमों में बद्ध और अनादि है। मनुष्य को वे पाँच स्कन्धों का बना हुआ एक सङ्घ मानते हैं। 'विज्ञान' इसका प्रधान और अन्यतम स्कन्ध है। इसे हम आत्मा मान सकते हैं। परन्तु बौद्ध-मतानुसार वह कोई स्वतन्त्र और नश्वर पदार्थ नहीं है। प्राणी की मृत्यु हो जाने पर जिस तरह उसके उपर्युक्त चार स्कन्ध नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह पाँचवें 'विज्ञान' नामक स्कन्ध का भी कोई अस्तित्व अवशिष्ट नहीं रह जाता। परन्तु जीव के शुभाशुभ कर्म नष्ट नहीं होते। उनसे फिर नए खण्डों की योजना होती है और एक नया प्राणी बन जाता है। इस नए प्राणी के साथ पिछले प्राणी का कर्म-सूत्र का सम्बन्ध रहता है और इस प्रकार दोनों एक ही प्राणी कहे जाते हैं।

महात्मा बुद्ध ने जीवन को दुःखमूलक माना है और दुख का कारण अविद्या बताया है। अविद्या का आविर्भाव चार 'आर्य-सत्यों' के अभाव के कारण होता है। वे चार आर्य-सत्य ये हैं :—

(१) संसार में जो कुछ है, सब दुख ही दुख है, (२) दुख की उत्पत्ति का कारण, (३) दुख के निरोध की चिन्ता और (४) दुख को रोकने का उपाय।

जब इन चार आर्य-सत्यों का अभाव जाता रहता है, तब अविद्या का नाश हो जाता है और अविद्या का नाश हो जाने पर मनुष्य जिस अवस्था को प्राप्त होता है, उसका नाम है, निर्वाणपद। सांसारिक वासनाओं को मिटा लेने पर प्रत्येक प्राणी निर्वाणपद का अधिकारी हो सकता है।

बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों को 'मध्य मार्ग' के नाम से अभिहित किया है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को न तो भोग-विलास में ही आसक्त रहना चाहिए और न अनिद्रा, उपवास और घोर तप द्वारा शरीर को क्लेश ही देना चाहिए। बल्कि इन दोनों के मध्य के मार्ग से चलना चाहिए। इसी सिद्धान्त के अनुसार बौद्ध सङ्घ की स्थापना हुई थी। इस सङ्घ में सम्मिलित होने वाले 'भिक्षु' कहलाते थे। उन्हें अपने साधन-जीवन के आरम्भ में ही प्राणी-हत्या, चोरी, व्यभिचार, मिथ्या भाषण, मद्य-पान, रात का खाना, नृत्य-गीत, माल्यधारण, सुगन्धित वस्तुओं का व्यवहार, कोमल शय्या पर सोना, चाँदी-सोना लेना या रखना—इन दस बातों से बचना पड़ता था।

रियासत (उर्दू)

देहली, २६ सितम्बर, १९३२

'चाँद' का नवयुग

हमें यह जान कर आन्तरिक प्रसन्नता हुई कि हिन्दी के विख्यात मासिक पत्र 'चाँद' इलाहाबाद का कारोबार लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तित हो गया है। जहाँ तक हम विचार कर सके हैं, हमें भारतीय समाचार-पत्रों और मासिक पत्रों के सफल जीवन का रहस्य इसी में छिपा दिखाई देता है कि वे लिमिटेड कम्पनियों के रूप में, सम्मिलित पूँजी से जारी हों। इस प्रकार भारतीय पत्रों के उन्नति-पथ से आर्थिक कठिनता का भारी पत्थर हट जायगा और वे अधिक स्वच्छन्दता से अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकेंगे।

'चाँद' हिन्दी भाषा का एक सफल और विख्यात मासिक पत्र है। इसने बहुत थोड़े समय में जो शानदार उन्नति की है, वह सब प्रकार से प्रशंसनीय है। हमें विश्वास है कि वर्तमान रूप में इसे अपनी उन्नति के लिए अधिक विस्तृत क्षेत्र प्राप्त होगा। और उसकी कम्पनी के हिस्से ख़रीदारों के लिए लाभजनक प्रमाणित होंगे। सर्व-साधारण को इस नई कम्पनी की उत्साह-वृद्धि करनी चाहिए। हम अपने सहयोगी की सेवा में विपुल बधाई अर्पण करते हुए यह मङ्गलकामना करते हैं कि यह नवीन युग उसके लिए शुभ हो।

(उर्दू से अनुवादित)

बौद्धमत में वर्णाश्रम-धर्म को कोई स्थान नहीं है। केवल ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होकर ही कोई उच्च नहीं हो सकता और न क्षत्रिय-कुलोत्पन्न शूरवीर ही होता है। मनुष्य-मात्र समानता का अधिकारी है। न कोई हेय है और न कोई नीच है। कर्म अवश्य ही प्रधान वस्तु है। मनुष्य अपने अच्छे और बुरे कर्मों द्वारा ही उच्चता और नीचता प्राप्त करता है। परन्तु कर्म की अच्छाई और बुराई के अर्थ मानव-जीवन से सम्बन्ध रखने वाले अनिवार्य कर्मों की अच्छाई-बुराई नहीं है। अर्थात् न तो लिखने-पढ़ने का काम करने से कोई उच्च जाति वाला बन जाता है और न जूता सीने से कोई नीच हो जाता है। परन्तु चोरी, मिथ्या भाषण, छल-कपट, स्वार्थपरता और पर-धन अपहरण आदि नीच कर्म हैं। ऐसे कर्म ही मनुष्य को हेय, नीच और घृणित बना देते हैं।

सुत्त-पिटक और दीघ-निकाय आदि कई बौद्ध-ग्रन्थों में जाति-भेद और ऊँच-नीच के भावों का खण्डन है। महात्मा बुद्ध ने इस सम्बन्ध में उपदेश ही नहीं दिया, वरन् चाण्डाल तक को भिक्षु बनने का अधिकार प्रदान कर दिया। एक समय महात्मा बुद्ध श्रावस्ती नगर के जेतवन में विराजमान थे। उसी समय आश्वलायन नाम का एक ब्राह्मण उनके पास आया और कहने लगा कि हमें पाँच सौ ब्राह्मणों ने आपके पास भेजा है। वे कहते हैं कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं और दूसरे छोटे हैं। ब्राह्मण पवित्र हैं, और दूसरे अपवित्र। ब्राह्मण ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं और उनके मुख से उत्पन्न हैं। इस सम्बन्ध में आपकी क्या सम्मति है?

बुद्ध ने कहा—परन्तु ब्राह्मणियाँ भी तो अन्य जाति की स्त्रियों की तरह ही ऋतुमती, गर्भिणी और प्रसूती होती हैं। उसी प्रकार अपने बच्चों को स्तन भी पिलाती हैं। इस प्रकार योनि से उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण अपने को ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न कैसे बताते हैं? क्या तुमने सुना नहीं है कि सीमान्त देशों में आर्य (स्वतन्त्र) और दास (परतन्त्र ग़ुलाम) दो ही वर्ण हैं?

आश्वलायन ने कहा—हाँ, सुना है।

बुद्ध बोले—तो ब्राह्मणों को यह कहने का क्या अधिकार है कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण है? यदि कोई ब्राह्मण और क्षत्रिय दुराचारी और पापी होगा तो क्या उसे मरने पर दुर्गति नहीं प्राप्त होगी?

आश्वलायन—अवश्य होगी।

बुद्ध—क्या ब्राह्मण ही सदाचारी, अलोभी और अद्वेषी होकर मरने पर स्वर्ग का भागी होगा? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं?

आश्वलायन—नहीं, सभी सदाचारी और पवित्र जीवन वाले मरने पर स्वर्ग और सुगति के अधिकारी हैं।

बुद्ध—यदि कोई विविध वर्णों के सौ मनुष्यों को एकत्र करके कहे कि तुममें से जो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि हैं, वे शाल, चन्दन और पद्म आदि की लकड़ी लेकर आग बनाएँ और जो चाण्डाल और निषाद आदि हैं वे धोबी के पाठ और रेंड़ आदि की लकड़ी की आग बनावें, तो क्या दोनों प्रकार की आगों में कुछ अन्तर होगा? क्या ब्राह्मणेतरों की जलाई हुई आग में आग के गुण न होंगे?

आश्वलायन—होंगे क्यों नहीं।

बुद्ध—यदि दो यमज ब्राह्मणों में एक सदाचारी और दूसरा दुराचारी हो तो लोग किसकी पूजा करेंगे?

आश्वलायन—सदाचारी की।

इसी प्रकार के बहुत से प्रश्नोत्तरों के बाद विद्वान आश्वलायन को स्वीकार कर लेना पड़ा कि वास्तव में जाति-भेद के मूल में कोई तत्व नहीं है। स्वार्थियों ने अपना उल्लू सीधा करने के लिए इसे जिला रक्खा है।

बौद्ध-धर्म में ईश्वर का भी कोई ख़ास स्थान नहीं है। यद्यपि महात्मा बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में कहीं ईश्वर और उसकी उपासना का विरोध नहीं किया है। परन्तु उनके उपदेशों से यह बात स्पष्टतया प्रमाणित होती है कि मानव-जीवन का ध्येय है निर्वाण-प्राप्ति, और यह बिना ईश्वर की उपासना किए भी प्राप्त हो सकती है। निर्वाण-पद की प्राप्ति शील, समाधि और प्रज्ञायज्ञ आदि कर्मों से होती है, न कि ईश्वर नाम की वस्तु-विशेष की ख़ुशामद करने से। महाकवि सेनापति के कथनानुसार—'अपने ही कर्म करि उतरोंगो पार तो पै हम ही करतार करतार तुम काहे के?' वास्तव में आजन्म दुनिया भर के ख़ुराफ़ातों में लिप्त रहना और अन्त में आँख मूँद कर ईश्वर से प्रार्थना करना कि आप तो बड़े दयालु, कृपानिधान और करुणासिन्धु आदि हैं, दया कीजिए। हमारे अपराधों को क्षमा करके हमें स्वर्ग में पहुँचा दीजिए या हमने

बरसों तक अमुक पहाड़ की कन्दरा में बैठ कर आपका चिन्तन किया है, लेहाज़ा हमें मुक्त कर दीजिए, यह सरासर मूर्खता ही नहीं है, वरन् बेचारे ईश्वर को भी बेवक़ूफ़ बनाना है। अस्तु—

महात्मा बुद्ध वाह्याडम्बर के प्रबल विरोधी थे। सचाई, सदाचार और सादगी उनकी प्रधान शिक्षाएँ थीं। जीवमात्र के साथ दया का व्यवहार, दुखियों की यथाशक्ति सेवा, और अपने जीवन को नियमित बनाना मनुष्य का परम कर्तव्य है। प्रत्येक स्त्री-पुरुष ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी निर्वाण-पद के अधिकारी हैं। इसके लिए उन्होंने 'अष्टाङ्ग मार्ग' का निर्देश किया है। वे इस प्रकार हैं:—

(१) सम्यक् दृष्टि। अर्थात् हृदय में धर्म का भय रखते हुए पाप से बचना, कर्मों को ही भाग्य का निर्माता समझना और इन्द्रियों को वश में रख कर विषय-वासना से विरत रहना।

(२) सम्यक् सङ्कल्प। अर्थात् सदैव जीवमात्र के हित में निरत रहना। क्रोध और लोभ का दमन करके अपनी सारी क्रूरताओं को निर्मूल कर डालना। अपने जीवन को शीतल मन्द सुगन्ध पवन की तरह प्राणिमात्र के लिए सुखकर बना लेना।

(३) सम्यक् वाचा। अर्थात् वाणी को अपने क़ाबू में रखना। अपने स्वभाव को शान्त, मधुर और प्रिय बना लेना। मुँह से कोई ऐसा शब्द न निकालना जिससे किसी का जी दुखे, किसी का अहित हो।

(४) सम्यक् कर्म। अर्थात् ऐसे कर्म करना, जो शुभ को बढ़ाने वाले और अशुभ को नाश करने वाले हों। सब प्रकार के बुरे कर्मों से बचना।

(५) सम्यक् जीवन। अर्थात् जीविका निर्वाहार्थ ऐसे कर्म का अवलम्बन करना, जो किसी के लिए क्लेश-दायक न हो।

(६) सम्यक् व्यायाम। नियमित रूप से व्यायाम करते रहना, जिससे शरीर में शिथिलता और आलस्य आदि न आने पावें।

(७) सम्यक् स्मृति। अर्थात् अपनी स्मरण-शक्ति को ठीक रखना। जो कुछ सुनना, पढ़ना और सीखना उसे अच्छी तरह स्मरण रखना।

(८) सम्यक् समाधि। दुख और सुख के प्रभाव से प्रभावित न होकर सदैव समवृत में स्थिर रहते हुए एकाग्र-चित्त रहना।

महात्मा बुद्ध के उपदेशों और उनकी प्रदान की हुई अमूल्य शिक्षाओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए बौद्ध जातकों का अध्ययन करना चाहिए। इन जातकों में महात्मा बुद्ध के कई पूर्व जन्मों की कथाएँ लिखी हैं। बौद्ध धर्म की महानता और उदारता का पता इन जातक ग्रन्थों से लग सकता है। इसके सिवा 'त्रिपिटक' नाम के बौद्धशास्त्र का भी अध्ययन करना चाहिए। बौद्ध धर्माध्यक्षों ने महात्मा बुद्ध के उपदेशों को—विनय, सूत्र और अभिधर्म—इन तीन भागों में विभक्त किया है। इसलिए उसे त्रिपिटक कहते हैं। इन पिटकों के भी कई भाग हैं।

वास्तव में बौद्ध-धर्म आर्य-धर्म का ही एक अङ्ग है। महात्मा बुद्ध ने स्वयं कहा है कि मैं किसी नवीन धर्म का प्रचार नहीं कर रहा हूँ। 'एष धम्मो सनत्तनो'—अर्थात् यह सनातन धर्म है, परम परम्परा से चला आया है।

आशा है, भारतवासी अपने प्राचीन 'एष धम्मो सनत्तनो' से कुछ सीखने की चेष्टा करेंगे।

बूढ़े बाबा—(पोते से) बेटा, ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए।

बालक—क्यों?

बूढ़े बाबा—ब्रह्मचर्य से सब रोग दूर हो जाते हैं।

बालक—तब तो आप भी ब्रह्मचर्य से रहें, जिससे आपकी खाँसी मिट जाय।

डॉक्टर—(घड़ीसाज़ से) कृपा कर इस घड़ी का लीवर बदल दीजिए और बताइए कि क्या लीजिएगा।

घड़ीसाज़—(डॉक्टर से) आपने मेरी बीमार लड़की का लीवर ख़राब बताया है। उसके बदलने में आप जो लेंगे, मैं भी वही ले लूँगा।

बम्बई के दामोदर ठाकरसी हॉल में होने वाले स्वदेशी मेला को सफल बनाने वाले कुछ स्त्री-पुरुषों का एक ग्रुप।
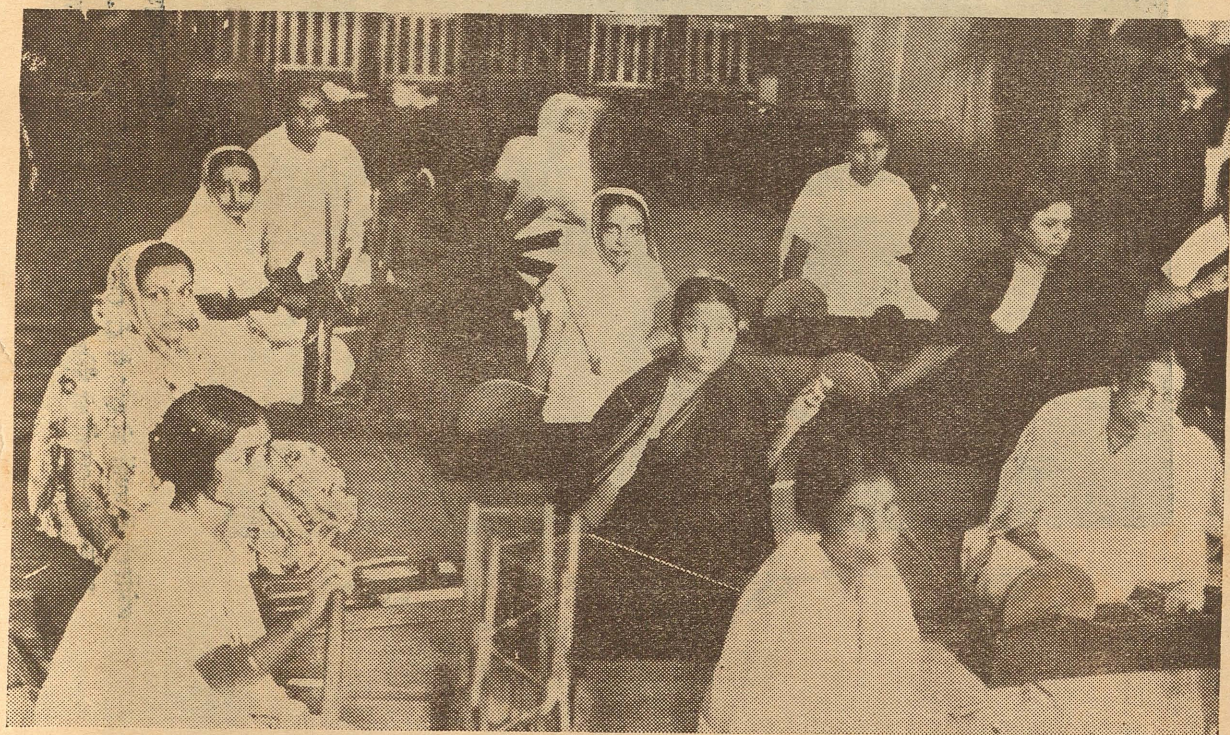
बम्बई के ब्लेवेस्की लॉज में होने वाले 'स्वदेशी सप्ताह' की वे भाग्यशालिनी महिलाएँ, जिन्होंने कताई-प्रतियोगिता में भाग लिया था।
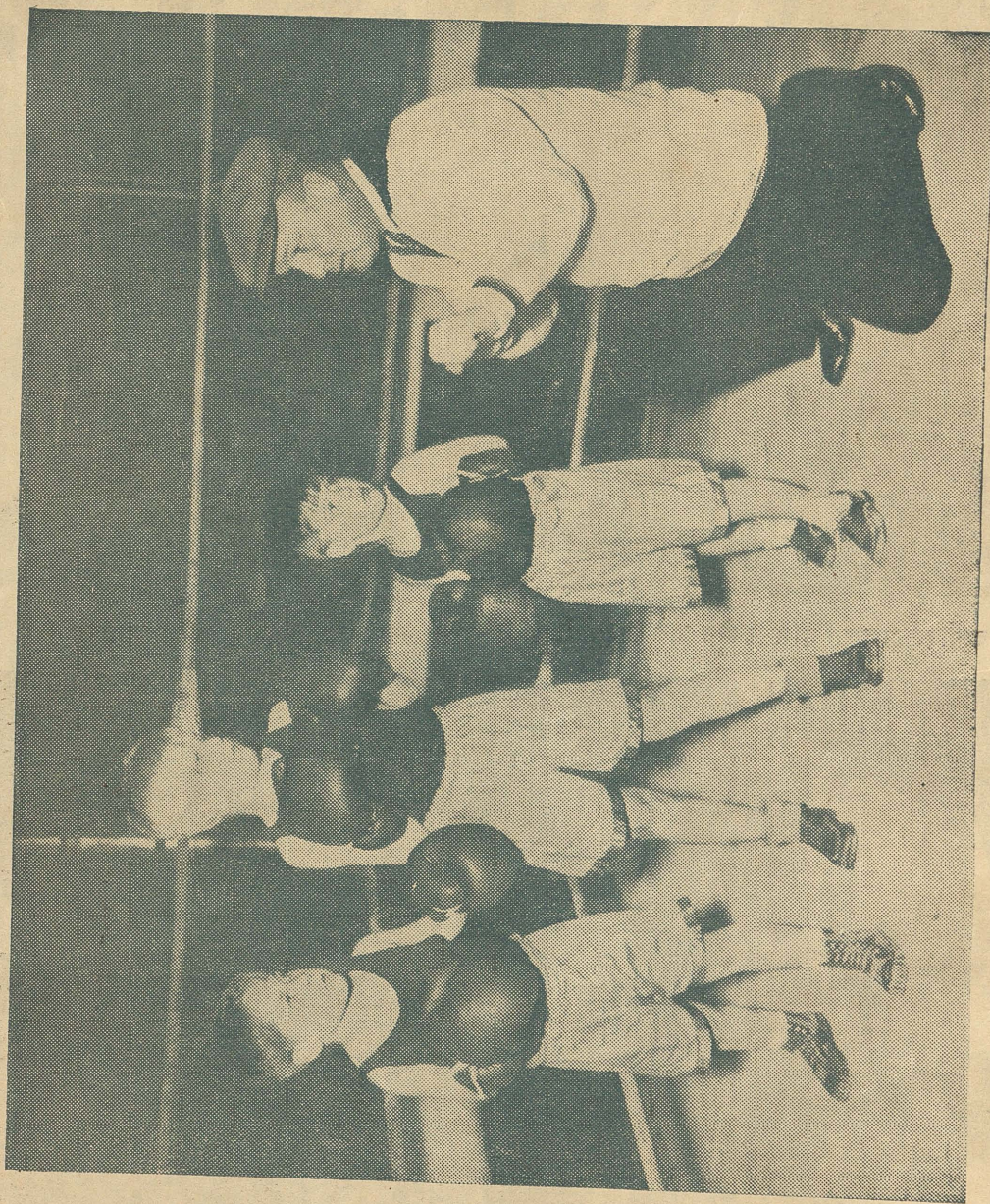
जीवन-संग्राम की तैयारी में संलग्न

अमेरिका में बच्चों को शुरू से ही शारीरिक शक्ति बढ़ाने और आत्म-रक्षा का अभ्यास कराया जाता है। 'चाँद' के इस चित्र में पाठक देखेंगे, जहाज़ी अफ़सरों के बालकों को घूँसेबाज़ी (Boxing) की तालीम दी जा रही है ; नहीं तो भविष्य में निर्बलों का दुनिया में कहीं ठिकाना न रहेगा।
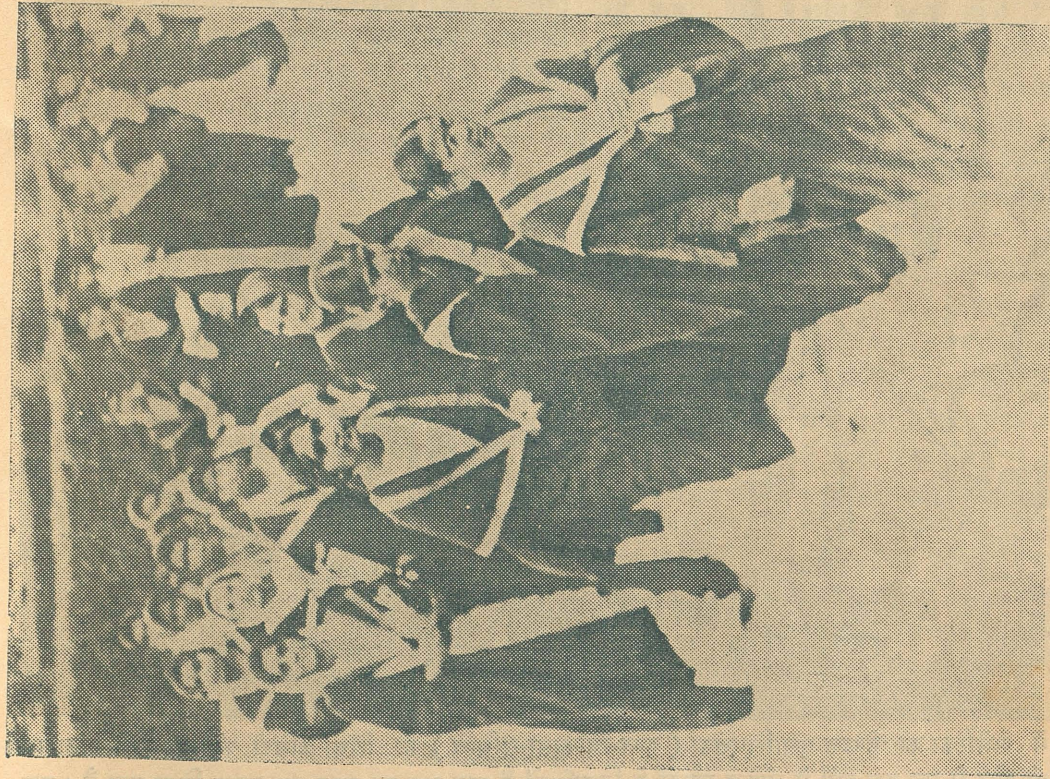
प्रगति के मार्ग में

भारतीय महिलाएँ भी हज़ारों विघ्न-बाधाओं को लाँघ कर ज्ञान के राज्य में प्रवेश कर रही हैं। 'चाँद' के इस चित्र में पाठक बम्बई-यूनीवर्सिटी से उच्च उपाधियाँ प्राप्त करके निकली हुई बालिकाओं के एक झुण्ड को देखेंगे।
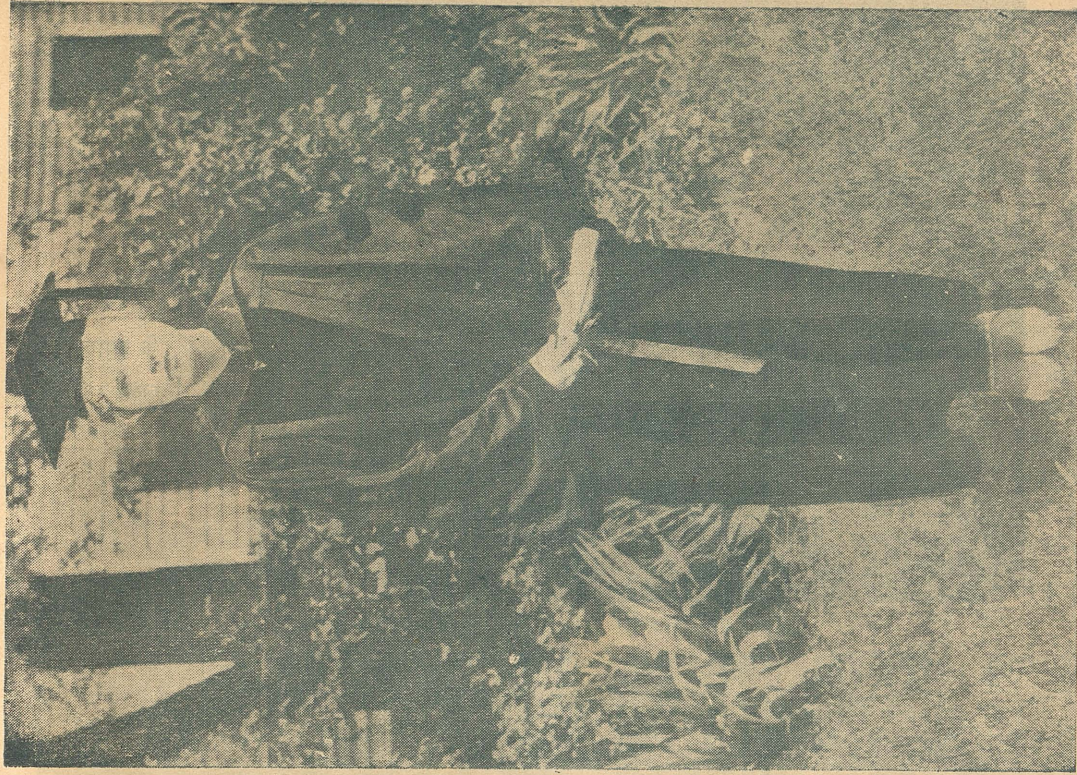
आधुनिक वाग्देवी

इस अमेरिकन लड़की ने १९ साल की उम्र में यूनीवर्सिटी की सर्वोच्च उपाधि (पी-एच० डी०) प्राप्त की है। तेरह वर्ष की आयु में इस बालिका ने 'सङ्गीत-विशारदा' की उपाधि पाई थी। यह दो वर्ष की आयु में अच्छी तरह पढ़-लिख सकती थी !

बम्बई के सुप्रसिद्ध
व्यायाम-शिक्षक
प्रोफ़ेसर के० जी०
की शिष्या
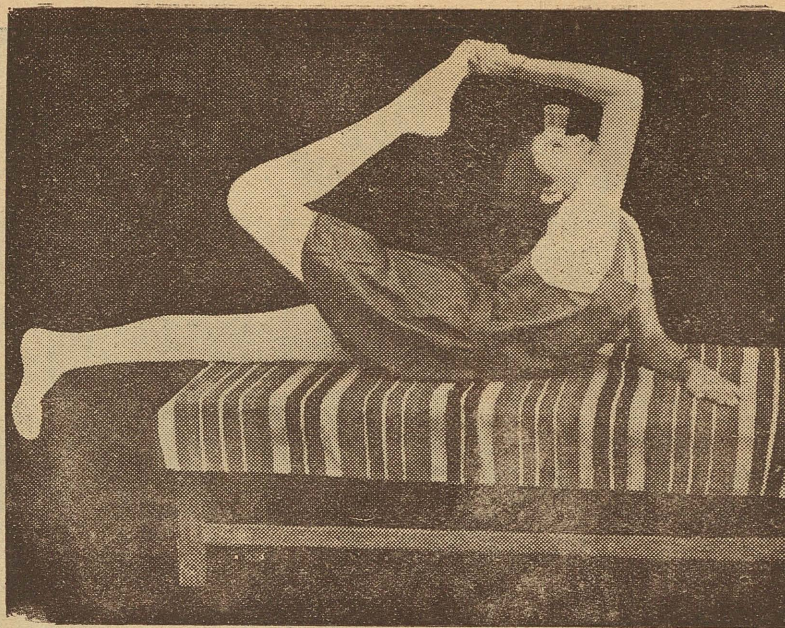
श्रीमती लीलावती
शारीरिक शक्ति
के चमत्कार
दिखला रही हैं।

यह जुलूस हाल ही में अमेरिका की 'डेण्टल एसोसिएशन' (दन्त-चिकित्सा-समिति) की शिक्षा-कमिटी की ओर से निकाला गया था। इस समिति की ओर से गत दस वर्षों में लोकल स्कूलों के विद्यार्थियों में दन्त-रक्षा का बहुत-कुछ प्रचार किया गया है। इस जुलूस में दो हज़ार से अधिक बालक-बालिकाओं ने भाग लिया था। इनके हाथ में पाठक दाँत साफ़ करने का ब्रश देखेंगे।

शायद ही कोई ऐसा हिन्दू होगा जिसने अठारह पुराणों का नाम न सुना हो। इन अठारह में से कितने ही पुराण तो सर्वसाधारण में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और स्थान-स्थान पर उनकी कथा होती है। उदाहरण के लिए भागवत पुराण का समस्त भारत में बहुत अधिक प्रचार है और प्रायः सम्पन्न अवस्था के हिन्दू उसका 'सप्ताह' कराते हैं। गरुड़ पुराण का भी बड़ा मान है और किसी व्यक्ति का देहान्त होने पर 'धार्मिक' हिन्दू उसकी कथा कहलाते हैं। जिस गोस्वामी तुलसीदास की रामायण का आज घर-घर प्रचार है, वह प्रायः पुराणों से ही संग्रह की गई है। इसके अतिरिक्त ध्रुव, प्रह्लाद, मोरध्वज, दधीचि, हरिश्चन्द्र और नल आदि के जो उपाख्यान सर्वत्र पढ़े जाते हैं और जो आजकल थियेटरों और सिनेमाओं में भी दिखलाए जाते हैं, वे सब पुराणों की ही सम्पत्ति हैं।

इन पुराणों के सम्बन्ध में पढ़े-लिखे लोगों में बड़ा मतभेद देखने में आता है। अधिकांश आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोग उन्हें कपोल-कल्पना और गपोड़ेबाज़ी के नाम से पुकारते हैं। आर्य-समाजी विचारों के लोग प्रायः उनकी बड़ी निन्दा किया करते हैं और उनको पाखण्ड तथा गुरुडम का मूल कारण मानते हैं। इस प्रकार की सम्मतियों का कारण स्पष्ट है। अधिकांश पुराण असम्भव और कहीं-कहीं अश्लील क़िस्सों से भरे पड़े हैं। उनमें कहीं हज़ारों योजन लम्बे-चौड़े पशु-पक्षियों का वर्णन है तो कहीं कोसों ऊँचे मनुष्य पाए जाते हैं। कहीं तीन ही चुल्लू में समुद्र सोखने की कथा है तो कहीं किसी प्राणी द्वारा सूर्य को निगल जाने का वर्णन है। इस प्रकार की बातों का इस वैज्ञानिक युग में, जबकि प्रत्येक चीज़ की नाप-तोल की जाती है और दूरबीन तथा ख़ुर्दबीन द्वारा जाँच की जाती है, माना जा सकना सम्भव नहीं है।

पर वास्तव में पुराण ऐसे निस्सार तथा निन्दनीय ग्रन्थ नहीं हैं, जैसा कि लोगों ने उनको समझ रक्खा है। उनमें जो असंख्यों कल्पनाएँ और गप्पें भरी हैं, उनमें से कितनी ही वास्तविकता के आधार पर हैं। पुराणों में ऐसी कितनी ही ऐतिहासिक सामग्री है, जो कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो सकती। उनमें सृष्टि की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में बहुत-कुछ मसाला पाया जाता है। पर ये सब बातें लम्बे-चौड़े और असम्भव क़िस्सों के रूप में बदल दी गई हैं।

पुराणकारों ने ऐसा क्यों किया, इसका भी कारण है। वर्तमान समय में छोटे बच्चे जब स्कूल में दाख़िल होते हैं, तो उनको आरम्भ में कहानियों और मनोरञ्जक लेखों की रीडरें पढ़ाई जाती हैं। छोटे बच्चों के लिए तो प्रायः ऐसी कहानियाँ पढ़ाई जाती हैं, जिनमें परियों और जादूगरों के असम्भव कृत्य भरे रहते हैं। संस्कृत की 'हितोपदेश' नामक पुस्तक में, जो ख़ास तौर पर बच्चों के लिए लिखी गई थी और अब तक इस विषय की बड़ी उत्तम कृति मानी जाती है, विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों के परस्पर बातें करने और निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार काम करने का वर्णन है। अङ्गरेज़ी में 'एण्डरसन्स फ़ेयरी टेल्स' में इसी प्रकार की असम्भव कहानियाँ भरी हुई हैं, पर वह बच्चों के लिए बड़ी बढ़िया किताब मानी जाती है और विद्वान लोग भी उसका आदर करते हैं। पर जब इन पुस्तकों को पढ़ने वाले बच्चे कुछ बड़े हो जाते हैं और स्कूल तथा कॉलेज की ऊँची श्रेणियों में पढ़ने लगते हैं, तो उनको दर्शनशास्त्र, अर्थ-शास्त्र आदि की गहन पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं।

यही उद्देश्य पुराणों की रचना का है। सब लोग वेद, उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों को पढ़ और समझ नहीं सकते। यदि उनको ये पुस्तकें दी जायँ तो वे शीघ्र ही उनसे ऊब उठेंगे और मनमाने अथवा चाहे जिस किसी के बतलाए सिद्धान्तों को सच मानने लगेंगे। इस त्रुटि की पूर्ति के लिए पुराणों की रचना की गई और धर्म, नीति,

तथा इतिहास के सूक्ष्म सिद्धान्तों का मनोरञ्जक क़िस्सों के रूप में वर्णन किया गया। यद्यपि बहुत से लोग पुराणों की मनोरञ्जकता के सम्बन्ध में भी शङ्का करेंगे, पर उनको समझ लेना चाहिए कि मनोरञ्जकता का स्वरूप प्रत्येक ज़माने में बदलता रहता है। जिस समय पुराणों की रचना की गई थी, उस समय सम्भवतः लोग अतिशयोक्ति से अधिक प्रसन्न होते थे और इसलिए पुराणों में जो कुछ भी लिखा गया है, उसमें अतिशयोक्ति का पुट अवश्य है। अब भी यदि हम गाँवों के अशिक्षित लोगों अथवा अपढ़ स्त्रियों के मुख से किसी बड़े मेले या जलसे का वर्णन सुनें, तो साफ़ मालूम हो जायगा कि वे उसका ज्यों का त्यों वर्णन नहीं कर सकते। जो बातें उनको पसन्द हैं, उनको वे दस-बीस गुना बढ़ा देंगे और जो पसन्द नहीं हैं उनको घटा देंगे।

ऐसी दशा में पुराणों को केवल कपोल-कल्पना अथवा गपोड़ेबाज़ी समझ लेना ठीक नहीं है। यह सच है कि कुछ पुराण नीची श्रेणी के लेखकों द्वारा लिखे गए हैं और उनमें अधिकांश ऊटपटाङ्ग बातें भरी हैं, तो भी कितने ही पुराण ऐसे हैं, जिनको यदि ध्यानपूर्वक मनन किया जाय तो उनसे कितने ही महत्वपूर्ण सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी तथा ऐतिहासिक तथ्यों का पता लगता है। पर ऐसे मनन के लिए आवश्यकता इस बात की है कि पाठक उनमें व्यवहार किए गए रूपकों तथा अतिशयोक्तियों का रहस्य समझ सकते हों। खेद है, हमारे देश के पढ़े-लिखे लोगों में इस प्रकार के मननशील व्यक्ति बहुत कम हैं, और इसीलिए शिक्षित-वर्ग सदा पुराणों की उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा है। पर थियोसोफ़िकल समाज की संस्थापिका मैडम ब्लैवस्की, श्रीमती ऐनी बेसेण्ट तथा उसके अन्य विद्वान सदस्यों ने इस तरफ़ विशेष रूप से ध्यान दिया है और इसके द्वारा उन्होंने कितनी ही ऐसी बातों का पता लगाया है, जिनसे प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं के समझने में बहुत-कुछ सहायता मिलती है।

पुराणों में स्थान-स्थान पर सप्त-द्वीपों का वर्णन किया गया है। इन सातों के नाम क्रमशः ये हैं :— क्रौञ्च, कुश, शाल्मली, पलाक्ष, जम्बू, शक और पुष्कर। इन द्वीपों का आकार बड़ा विस्तृत बतलाया गया है और इनके चारों तरफ़ दूध, ईख का रस, मदिरा आदि के समुद्र बतलाए गए हैं। इन द्वीपों में रहने वालों की ऊँचाई भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न मानी गई है। किसी में पचास गज़ ऊँचे मनुष्य रहते हैं, किसी में तीस गज़ और किसी में बीस गज़। इसी तरह किसी में मनुष्यों की उत्पत्ति वृक्षों की तरह होती है, किसी में पसीने से प्राणी जन्म लेते हैं, किसी में स्त्री-पुरुषों का भेद ही नदारद है। ये सब बातें अभी तक एकदम गपोड़ेबाज़ी समझी जाती थीं। क्योंकि उक्त सात द्वीपों में सब से छोटा द्वीप जम्बू द्वीप है और उसका विस्तार एक लाख योजन बतलाया गया है। शेष तमाम द्वीप इससे कहीं अधिक बड़े हैं। पर इस समय जितनी पृथ्वी देखने में आ रही है, उसका परिमाण हद से हद जम्बू द्वीप के बराबर होगा। ऐसी दशा में स्वभावतः प्रश्न होता है कि अन्य द्वीप कहाँ हैं? आजकल रेल, जहाज़ और हवाई जहाज़ों ने इस भूमण्डल के अगम्य से अगम्य स्थानों को गम्य बना दिया है और भूगोल शास्त्रवेत्ताओं ने बित्ता-बित्ता भर ज़मीन का पता लगा लिया है। ऐसी दशा में यह कल्पना करना कि समुद्र के पार कोई दूसरी ज़मीन ऐसी मौजूद है, जिसका अभी तक हमको पता नहीं, अज्ञानता का सूचक है। इन बातों को देखते हुए लोग यदि सप्त-द्वीप की बात को कोरी कल्पना समझ लें, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। पर उपर्युक्त थियोसोफ़िस्ट विद्वानों ने बहुत-कुछ खोज करके वैज्ञानिक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है कि सप्त-द्वीप की बात सच है। इसमें रहस्य केवल इतना है कि ये सातों द्वीप एक समय के नहीं हैं। वरन् एक द्वीप का नाश होने पर दूसरा द्वीप उत्पन्न होता गया है। इस प्रकार अब तक पाँच द्वीपों का आविर्भाव हो चुका है, जिनमें से हम लोग जम्बू द्वीप को आँखों से देख रहे हैं। शेष दो द्वीप भविष्य में उत्पन्न होंगे। इस विषय का विवरण अत्यन्त रोचक और रहस्यपूर्ण है। हम उसका सारांश यहाँ देते हैं, जिससे पाठकों को सृष्टि के विकास का बहुत-कुछ नवीन ज्ञान प्राप्त होगा।

पुराणों के मतानुसार इस पृथ्वी को उत्पन्न हुए एक अर्ब वर्ष से अधिक समय व्यतीत हुआ है। आरम्भ में यह वायु-रूप, उसके पश्चात् अग्नि-रूप और तत्पश्चात् जल-रूप में थी। जल में से धीरे-धीरे स्थल का आविर्भाव होने लगा। सबसे पहले जो स्थल-भाग उत्पन्न हुआ

वह क्रौञ्च द्वीप था। जिस जगह आजकल उत्तरी ध्रुव-प्रदेश अवस्थित है, वही इस द्वीप का केन्द्र था। इस द्वीप में जो प्राणी रहते थे, उन्हें मनुष्य के नाम से पुकारा जा सकता है या नहीं, यह सन्देहपूर्ण है। उन लोगों की देह ठोस होने के बजाय अधिकांश में हवा की तरह होती थी। मनुष्यों की साधारण लम्बाई १७५ फ़ीट थी। उनमें स्त्री-पुरुषों का भेद न था, वरन् वे एक-दूसरे से पेड़ की कलियों या शाखाओं की तरह उत्पन्न होते थे। दूसरे द्वीप का नाम, जोकि यूरोप के उत्तर में अवस्थित था, कुश बतलाया गया है। इसके प्राणी भी वायु-शरीरधारी थे और उनकी ऊँचाई १२० फ़ीट थी। ये लोग पसीने से उत्पन्न होते थे। इन दो द्वीपों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का ऐतिहासिक या वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। क्योंकि जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, उन प्राणियों में मनुष्यों के वर्तमान लक्षण बहुत कम पाए जाते थे, और वायु-शरीरधारी होने से उनका कोई चिन्ह भी शेष रहना सम्भव न था। पर चूँकि पुराणों में वर्णित अन्य द्वीपों का विवरण प्रमाणों द्वारा ठीक सिद्ध हो रहा है, इसी कारण इन दो द्वीपों का अस्तित्व भी, जो शायद करोड़ों वर्ष पहले नष्ट हो चुके हैं, सच माना जा सकता है।

तीसरे द्वीप का नाम शाल्मली था, जिसे वर्तमान यूरोपियन विद्वान लमूरिया के नाम से पुकारते हैं। यह उस स्थान पर अवस्थित था, जहाँ आजकल पैसफ़िक महासागर हिलोरें मारता है। अब उस महाद्वीप का अधिकांश भाग जल के भीतर छुपा है, केवल ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड आदि, जो उसके दक्षिणी भाग थे, शेष बचे हैं। इसी द्वीप में सबसे पहले ऐसे प्राणियों की उत्पत्ति हुई थी, जिन्हें मनुष्य कहा जा सकता है। पुराणों के मतानुसार उनकी ऊँचाई ६० फ़ीट थी और आदि-काल में वे अण्डे द्वारा और अन्तिम समय में स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न होते थे।

जब ज्वालामुखी पहाड़ों के भड़कने और भयङ्कर भूचालों के आने से लमूरिया नष्ट होने लगा, तो मनुष्य-जाति के निवास के लिए एक नई ज़मीन समुद्र-तल से ऊपर आने लगी। इस चौथे द्वीप का नाम पलाक्ष था, जिसे आजकल 'एटलाण्टिस' कहा जाता है। यूरोप और अमेरिका के बीच में जो एटलाण्टिक महासागर है, ठीक उसी स्थान पर यह द्वीप उत्पन्न हुआ था। एटलाण्टिस द्वीप के अस्तित्व को अब प्रायः सभी इतिहासज्ञ स्वीकार करने लगे हैं। अफ़्रीका के पश्चिमी किनारे पर उस काल के कितने ही शहर ज़मीन खोदने से निकले हैं और समुद्र के तल में भी कहीं-कहीं विशाल नगरों के खण्डहर पाए जाते हैं। इन तथा अन्य प्रमाणों से विदित होता है कि एटलाण्टिस के निवासियों ने सब प्रकार के ज्ञान और कलाओं की आश्चर्यजनक उन्नति की थी और उनकी सभ्यता बड़े ऊँचे दर्जे की थी। जब उसके नाश का समय समीप आया तो कितने ही लोग अपने नेता मनु की अध्यक्षता में उत्तरी अमेरिका, मिश्र, मध्य एशिया की तरफ़ चले गए और उन्होंने वहाँ महान साम्राज्यों की स्थापना की। ये प्रदेश उसी समय पानी के नीचे से ऊपर आए थे और इनके स्थान में जो पानी भरा था, वह नीचे स्थानों की तरफ़ बह गया। उसके कारण जो विशाल लहरें तथा बाढ़ें आने लगीं, उन्होंने धीरे-धीरे एटलाण्टिस को छिन्न-भिन्न करके अन्त में उसे जल-समाधि दे दी। इसी घटना को हिन्दुओं, ईसाइयों और मुसलमानों के धार्मिक ग्रन्थों में जल-प्रलय अथवा नूह की बाढ़ के नाम से याद किया गया है।

पाँचवाँ द्वीप, जिसका नाम पुराणों में जम्बू द्वीप है, हमारी वर्तमान दुनिया है। जब एटलाण्टिस का नाश हो गया, तो धीरे-धीरे इसकी जन-संख्या बढ़ने लगी और यहाँ पर नई-नई जातियों का आविर्भाव हुआ। यह घटना अब से कम से कम अस्सी हज़ार वर्ष पहले हुई थी। इस विषय में यह समझ लेना आवश्यक है कि द्वीपों का बनना और बिगड़ना तथा नवीन जातियों की उत्पत्ति सौ-दो सौ अथवा हज़ार-दो हज़ार वर्षों में नहीं होती। इस क्रिया में लाखों वर्षों का समय लगता है और यह ऐसे धीरे-धीरे होती है कि मनुष्य को अपने जीवन-काल में उसका कुछ भी आभास नहीं मिल सकता।

अब हमारा जम्बू द्वीप भी बहुत पुराना हो चुका है और प्रकृति नवीन द्वीप के निर्माण की तैयारी कर रही है। इसका नाम पुराणों में शक द्वीप बतलाया गया है और यह ठीक उसी स्थान पर उत्पन्न होगा, जहाँ किसी समय लमूरिया अवस्थित था। वैज्ञानिकों की जाँच से यह स्पष्ट मालूम होता है कि कितने ही वर्षों से पैसफ़िक महासागर की गहराई कम होती जाती है और उसका तल ऊपर की तरफ़ उठता जाता है। कुछ

वर्ष पहले अलास्का (अमेरिका) के पास अचानक एक टापू उत्पन्न हो गया था, जिसका नाम बोगोस्लोफ है। इसी प्रकार अमेरिका के 'ऐलबेट्रॉस' नामक जहाज़ ने कुछ वर्ष पहले समुद्र में यात्रा करते समय देखा कि अचानक पानी के भीतर बड़ी हलचल होने लगी और ज्वालामुखी पहाड़ की एक चोटी पानी से बाहर निकल आई। वह चोटी बड़ी तेज़ी से बढ़ने लगी और कुछ ही देर में समुद्र की सतह से एक हज़ार फ़ीट की ऊँचाई तक जा पहुँची। इन तमाम घटनाओं का कारण समुद्र के भीतर के ज्वालामुखी पहाड़ हैं, जिनमें से प्रायः लावा निकलता रहता है और जो प्रतिदिन भूकम्प उत्पन्न किया करते हैं। विभिन्न देशों में भूकम्प जानने के लिए जो यन्त्र रक्खे गए हैं, उनसे प्रतिवर्ष हज़ारों भूकम्पों के होने का पता चलता है। पर पृथ्वी-तल पर इस संख्या के दशमांश के बराबर भी भूकम्प देखने या सुनने में नहीं आते। ये समस्त भूकम्प समुद्र के भीतर आया करते हैं और उनसे समुद्र-तल की स्थिति में बहुत-कुछ अन्तर पड़ा करता है। जब इन भूकम्पों का ज़ोर बहुत बढ़ जाता है और उनके फल से समुद्र-तल का कोई भाग पानी की सतह से बाहर आ जाता है तो वही एक छोटा सा द्वीप बन जाता है और उस स्थान का पानी वर्तमान स्थल के किसी भाग में भर कर उसे डुबा देता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे सैकड़ों द्वीप मिल कर अन्त में एक बड़ा महाद्वीप बन जाता है और उसके बजाय दूसरा महाद्वीप डूब जाता है।

यद्यपि अधिकांश लोग, जिन्होंने प्रकृति की लीला को नहीं समझा है, इस प्रकार की घटनाओं को अत्यन्त दुखदायी समझेंगे। उनके मतानुसार जिस सभ्यता का निर्माण हज़ारों वर्षों तक अनेक विद्वानों, कलाविदों और दार्शनिकों ने किया है, उसका इस प्रकार कुछ ही समय में नष्ट हो जाना मनुष्य-जाति के लिए घोर दुर्भाग्य का सूचक है। लण्डन, पेरिस, न्यूयार्क आदि जैसे शहरों का—जहाँ सत्तर-सत्तर लाख मनुष्य रहते हैं और जिनमें अतुल सम्पत्ति तथा वैभव की सामग्री भरी पड़ी है—पानी के भीतर डूब जाना उनके लिए ऐसी बात है, जिसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते। वे सोचते होंगे कि जो जाति हवा में उड़ सकती है, हज़ारों कोस की बात को घर बैठे सुन सकती है, दूर देशों की घटनाओं को आँखों से प्रत्यक्ष देख सकती है, और जो चन्द्रमा तथा मङ्गल-ग्रह तक पहुँचने का उद्योग कर रही है, वह क्या समुद्र के पानी से अपनी रक्षा नहीं कर सकती? ऐसे लोगों से हम कहेंगे कि अभी तक उनको प्रकृति की शक्ति का ज्ञान नहीं है। यद्यपि मनुष्य ने अनेक प्राकृतिक शक्तियों पर विजय पाई है और वह उनके द्वारा अपने लाभ और सुख के कार्य करा रहा है, पर जब प्रकृति रौद्र रूप धारण करती है, तो मनुष्य की शक्ति नहीं कि उसे सँभाल ले। सन् १९२३ में जापान में जो भूकम्प आया था, उसकी याद किसे न होगी। पलक मारते-मारते टोकियो जैसा विशाल और समृद्धिशाली नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया और दो लाख व्यक्ति बरसाती भुनगों की तरह मर गए। प्रकृति इससे भी भयङ्कर रूप धारण कर सकती है और उस अवस्था में हमारे समस्त वैज्ञानिक साधन व्यर्थ हो जाते हैं।

पर इस प्रकार की घटनाओं पर शोक प्रकट करना अथवा उनके लिए दुखी होना भूल है। प्रकृति का कार्य ऊपर से यद्यपि क्रूरतापूर्ण जान पड़ता है, पर वास्तव में वह मनुष्य-जाति के लिए परम कल्याणजनक है और उसी से यह सृष्टि क़ायम है। जब पृथ्वी का भार बहुत अधिक बढ़ जाता है और मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों का भरण-पोषण करते-करते उसकी उर्वरा-शक्ति हद दर्जे तक घट जाती है, तो प्रकृति दया करके मनुष्य-जाति के निवास के लिए नवीन उपजाऊ पृथ्वी उत्पन्न कर देती है और वर्तमान स्थल को जल के भीतर डुबा देती है, जिससे वह लाख-दो लाख वर्षों में फिर अपनी उर्वरा-शक्ति को प्राप्त करके मनुष्यों के निवास योग्य बन सके। यदि इस दृष्टि से विचार करें तो हमको पुराणों का वह रूपक सर्वथा सत्य प्रतीत होता है, जिसमें पृथ्वी का भार अत्यधिक बढ़ जाने से वह गाय का रूप धारण करके ब्रह्मा के पास उद्धार के हेतु जाती है। यही पुराणों में वर्णित खण्ड-प्रलय है।

लाहौर के सुप्रसिद्ध विप्लवकारी स्वर्गीय श्री० भगवतीचरण जी की धर्मपत्नी—
श्रीमती दुर्गादेवी जी, जो कहा जाता है, दो वर्षों तक 'फ़रार' रहीं।
आपने हाल ही में पुलिस को चैलेञ्ज दिया था।
आपका विस्तृत परिचय अन्यत्र देखिए।

हॉलीवुड (अमेरिका) की विख्यात नर्तकी कुमारी आयशा और
लखनऊ-निवासी श्री० सतीशचन्द्र सिंह ।

विस्तृत परिचय अन्यत्र देखिए]

['चाँद' के अमेरिकन प्रतिनिधि द्वारा

फ़िल्मों की कहानियाँ

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

जासूस

[अमेरिका तथा यूरोप के फ़िल्मों में कभी-कभी बड़ी मनोरञ्जक तथा हृदयग्राही घटनाओं का दिग्दर्शन कराया जाता है। वे फ़िल्म अङ्गरेज़ी में होने के कारण हिन्दी-भाषी सर्वसाधारण उनसे लाभ नहीं उठा सकते। इसीलिए हमने उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत सर्वोत्तम अङ्गरेज़ी फ़िल्मों की कहानियाँ देने का प्रबन्ध किया है।

—सम्पादक 'चाँद']

'क्या बहुत थके हुए हो ?' शूबेन ने रोज़ानो से पूछा। यूरोपीय महायुद्ध चल रहा था। रोज़ानो कुछ देर पहले ही रूस से हवाई जहाज़ द्वारा कुछ आवश्यक काग़ज़ पैरिस-स्थित रूसी राजदूत के पास लाया था। शूबेन के सिर ही रोज़ानो के ठहरने का प्रबन्ध सौंपा गया था।

"बहुत! क्यों, यह प्रश्न क्यों पूछ रहे हो ?"—रोज़ानो ने पूछा।

"मैं एक पार्टी में जा रहा हूँ। तुम सोओ।"

"आवश्यक पार्टी है ?"

"हाँ!"

"दो-एक व्यक्ति ही होंगे या कई ?"—रोज़ानो ने हँस कर प्रश्न किया।

"सहस्रों! भला माताहारी का नाच देखने के लिए केवल दो-एक व्यक्ति ही आएँगे।"

"माताहारी? यह कौन है ?"

"यह एक महिला है, जिसकी पहुँच सर्वत्र है और जिसकी सुन्दरता के मद के सामने बहुत कम व्यक्ति स्थिर रह सकते हैं।" रोज़ानो कुछ देर तक विचार करता रहा। फिर वह बोला—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। ले जा सकोगे ?"

"नींद और थकावट कहाँ गई ?"

"माताहारी की भेंट।"—रोज़ानो ने हँस कर कहा। कुछ देर बाद वह शूबेन के साथ तैयार होकर पार्टी को चल दिया!

२

नाचती हुई माताहारी को देख कर रोज़ानो आपे में न रहा। उसके सौन्दर्य में वास्तव में, एक अपूर्व आकर्षण था। उसके नेत्रों में मादकता थी। उसके हाव-भाव में जादू भरा था।

उस दिन वह अतृप्त नेत्रों को लेकर चला आया। दूसरे दिन उसने फिर माताहारी को देखा, इस बार एक जुआघर में। किसी ने एक अँगूठी माताहारी को दिखाई। उसने उसकी प्रशंसा कर दी। रोज़ानो के लिए यह एक अपूर्व अवसर था। उसने अँगूठी ख़रीद ली। जब माताहारी नीचे की ओर जा रही थी, रोज़ानो उसके सामने आ खड़ा हुआ। दोनों की दृष्टि मिली। माताहारी ने एक तीव्र दृष्टि रोज़ानो पर डाली।

"क्या है ?"—उसने पूछा।

"यह!"—रोज़ानो ने अँगूठी आगे करके कहा।

"इसे क्या करूँ ?"

"तुम्हारे लिए मैंने ख़रीदी थी। तुम्हारी भेंट है!"

"क्यों ?"

"तुम्हें यह पसन्द थी। इसे मेरी भक्ति का उपहार समझ कर रक्खो।"

दोनों मुस्कुराए।

३

माताहारी का कमरा सजा हुआ था। बिजली का प्रकाश हुआ। आगे-आगे माता आई और पीछे-पीछे रोज़ानो।

"जाओ, अब !"—माता बोली।

"अभी से ?"—रोज़ानो ने शरारत से पूछा।

"यदि ठहरना ही चाहते हो, तो वर्दी उतार दो।"

रोज़ानो ने वर्दी उतार दी। वे दोनों पास-पास बैठ गए।

"तुम अपूर्व सुन्दरी हो !"—रोज़ानो बोला।

"सच ?"

"इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। पहले-पहल मैंने जब तुम्हें पार्टी में देखा था, तभी मैंने अपना हृदय तुम्हें समर्पित कर दिया था।"

"पैरिस में बहुत दिनों से हो ?"

"नहीं; यहाँ बहुत थोड़ा समय हुआ।"

"क्या रूस से कोई आवश्यक पत्र लेकर आए हो ?"

"हाँ !"

"पैरिस में जी लग जाता है ?"

"पहले नहीं लगता था, परन्तु अब × × ×।"

"अब ?"

"अब कुछ और बात है।"

"मैं ?"

"हाँ !"

माता ने धीरे-धीरे अपना सर रोज़ानो के वक्षस्थल पर रख दिया !

"क्या मेरा प्रेम स्वीकार होगा ?"—रोज़ानो ने पूछा।

"होगा, रोज़ानो, मैं भी तुम्हें × × ×।"

"प्यार करने लगी हो ?"

"हाँ।"

४

प्रातःकाल हो गया था। माताहारी उसी समय निद्रा से जगी थी। रोज़ानो ने अपना कार्ड भेजा। नौकरानी ने कार्ड माताहारी को दिखाया।

"कह दे, मैं नहीं मिल सकती।"—माताहारी नौकरानी से बोली। उसी समय द्वार की ओर से शब्द आया, परन्तु अब तो मिलना ही पड़ेगा। माता ने घूम कर देखा, रोज़ानो फूलों का सुन्दर गुच्छा लिए वहाँ खड़ा था। वह कुछ कह भी न पाई थी कि रोज़ानो उसके निकट आ गया।

"ये फूल !"—कह कर उसने गुच्छा उसकी ओर बढ़ाया।

"मेरे लिए ?"

"हाँ।"

"लेकिन मैं नहीं चाहती।"

"मैं जानता हूँ, तुम चाहती हो या नहीं।"—कह कर उसने गुच्छा माताहारी के हाथों में दे दिया। उसी समय माताहारी ने वह गुच्छा पृथ्वी पर फेंक दिया।

रोज़ानो चुपचाप कुछ देर उस गुच्छे की ओर देखता रहा।

"तुम यहाँ से जाओ !"—माताहारी बोली।

"जाऊँ ?"

"हाँ !"

"परन्तु कल तुमने कहा था कि तुम मुझसे प्रेम करती हो।"

"कल कहा था न ? हाँ, कल करती थी, परन्तु आज नहीं।"

"अच्छा, मैं जाता हूँ। मुझे यह पता न था कि तुम इतनी गिरी हुई हो ?"—कह कर रोज़ानो वहाँ से चला गया।

५

शूबेन अपने कमरे में बैठा हुआ माताहारी की प्रतीक्षा कर रहा था। घण्टी बजी। उसका ध्यान द्वार की ओर लग गया। परन्तु उसे आश्चर्य हुआ, जब दरबान ने आकर कहा कि दूबॉय उससे मिलने आए हैं। मुसिओ दूबॉय पैरिस के जासूसी विभाग के अध्यक्ष थे। उनके वहाँ आने का अवश्य ही कोई गहरा अर्थ होगा। शूबेन ने उन्हें बुलाया।

"आज कैसे कष्ट किया ?"—उसने पूछा।

"आपके यहाँ एक स्त्री आती है ?"—मुसिओ बोले।

"हाँ।"

"और आपसे उसकी बहुत घनिष्ठता है ?"

"हाँ, कुछ-कुछ !"

"मैं उसीके सम्बन्ध में आया हूँ !"

"उसके सम्बन्ध में, क्यों ?"

"वह जर्मन-जासूस है !"

"जासूस ?"

"हाँ।"

"मगर मुसिओ, आपको भूल हुई है! मेरे पास आने वाली स्त्री प्रसिद्ध 'मैडम माताहारी' है।"

"मैं उसी के विषय में कह रहा हूँ।"

"क्या? माताहारी जासूस? असम्भव है, मुसिओ! यह आपने दूर की सोची है, मगर है ग़लत बात!"

इतना कह कर शूबेन हँसने लगा। इतने ही में माताहारी भीतर आई।

"इतना हँसाने वाली कौन सी बात है?"—उसने भीतर आते ही पूछा।

"मुसिओ दूबॉय ने एक बड़ी मज़ेदार खोज की है?"

"हाँ?"

"हाँ! वह कहते हैं कि तुम एक जासूस हो।"

"मुसिओ दूबॉय के पास शायद ऐसा कहने का प्रमाण होगा।"—माताहारी ने शान्तिपूर्वक कहा।

"प्रमाण ही तो नहीं है मैडम, नहीं तो अभी तक तुम मेरे क़ब्ज़े में होतीं।"—मुसिओ दूबॉय ने दाँत पीस कर कहा और वहाँ से चले गए।

६

"तुम दूबॉय की बातों पर विश्वास करते हो?"—शूबेन से माताहारी ने पूछा।

"विश्वास तो नहीं करता, परन्तु × × ×।"

"परन्तु?"

"दूबॉय के यहाँ आने का क्या कारण हो सकता है? उसे अवश्य किसी बात का सन्देह हुआ होगा। शायद वह यह बात राजदूत के कानों तक ले जावे। फिर मेरा क्या होगा?"

"डरते हो?"

"डरता हूँ? सारा जीवन जिस बात से सङ्कट में हो जाय, उससे न डरूँ? ओह, मैं कितना मूर्ख हूँ, तुम्हारे पीछे सब कुछ नष्ट किए दे रहा हूँ।"

"तो मुझे छोड़ दो!"

"यही तो कठिनता है, तुमको यदि छोड़ सकता।"

"असम्भव है?"

"बिल्कुल! न जाने तुमने क्या जादू डाला है!"

"तो फिर भूल जाओ दूबॉय को।"

"रह-रह कर उसी का ध्यान आ जाता है। मानो वह स्वयं मेरे मस्तिष्क में जा बैठा है।"

"तुम्हारा क्या करेगा? पहले तो मुझे पकड़ेगा! जाओ शराब! साथ-साथ हम दोनों ही दूबॉय को भूल जायँ।"

शूबेन शराब ले आया। दोनों ने गहरी पी। जब शूबेन झूमने लगा, तो माताहारी उससे बोली—क्या रूस को कोई सम्बाद भेजा जा रहा है?

"तुम क्या करोगी?"

"योंही पूछ रही थी। युद्ध की बातों में दिलचस्पी आती है।"

"रहने दो! मैं राजनीति से कोई सरोकार नहीं रखना चाहता!"

"अच्छा, न बताओ! मुझे मालूम तो हो ही जायगा!" इतने ही में द्वार खुला। रोज़ानो ने प्रवेश किया!

"रोज़ानो, इस समय!"—शूबेन बोला।

"मुझे हुक्म मिला है कि इस पत्र को लेकर मैं हवाई जहाज़ द्वारा शीघ्र ही रूस को जाऊँ!"

"लेकिन ऐसी बरसात में?"—माताहारी बोली। रोज़ानो ने उधर ध्यान न दिया।

"रोज़ानो!"—शूबेन ने चिल्ला कर कहा।

"जी!"

"मैडम माताहारी तुमसे कुछ कह रही हैं, सुना नहीं?"

"सुन लिया है!"

"फिर उत्तर क्यों नहीं दिया?"

"उत्तर के योग्य बात थी ही नहीं!"

"अच्छा, तुम आज रात को अपने कमरे में आराम करो। कल प्रातःकाल रवाना होना।"

"परन्तु यह आवश्यक है!"

"जाओ, यह मेरी आज्ञा है!"

रोज़ानो चला गया! उसी समय माताहारी उठी।

"क्यों?"

"मुझे एक बात याद आ गई।"

"क्या?"

"शायद दूबॉय मेरे पीछे मेरे घर की तलाशी न ले रहा हो!"

"लेकिन तुम्हारे यहाँ क्या मिलेगा? तुम क्यों डरती हो?"

"मैं तो नहीं डरती। परन्तु कुछ काग़ज़ वहाँ तुम्हारे सम्बन्ध के हैं।"

"मेरे सम्बन्ध के? तुमने उन्हें नष्ट नहीं किया?"

"नहीं।"

"तो तुम शीघ्र जाओ और उन्हें उसके हाथों में न पड़ने दो, नहीं तो मेरे जीवन का अन्त हो जायगा!"

माताहारी ने अपना कोट उठाया और मोटर में बैठ कर शीघ्र ही वहाँ से चल दी।

७

शूबेन को छोड़ कर वह कुछ दूर कार में चली। फिर कार खड़ी करके वह एक छोटे से घर में घुसी और फ़ोन पर बोलने लगी—रोज़ानो रूस को एक आवश्यक पत्र ले जा रहा है। मैं उसके पास जाती हूँ और उसे वश में करके रात भर एक ओर रक्खूँगी। तुम एक आदमी को भेज दो, जो उस पत्र को ले जाकर यन्त्र द्वारा उसका चित्र खींच ले और फिर उसे वहीं रख जाय।

वहाँ से चल कर वह रोज़ानो के कमरे की ओर चली। रोज़ानो उस समय ध्यानावस्थित था। दरवाज़े पर शब्द सुन कर वह द्वार खोलने चला। द्वार खोल कर सामने माताहारी को खड़ा देख कर वह स्तम्भित हो गया!

"क्या मुझे भीतर न आने दोगे?"—वह हँस कर बोली।

"तुम यहाँ क्या करने आई हो?"

"तुमसे मिलने!"

"परन्तु मैं नहीं मिलना चाहता।"

"तो मुझे निकाल दो!"

रोज़ानो चुप हो गया। माताहारी भीतर चली गई।

"तुम शायद शूबेन के विषय में सोच रहे हो। परन्तु मैं अपने वहाँ होने का कारण बता सकती हूँ।"

"मैं नहीं पूछना चाहता!"

"फिर उस दिन के व्यवहार के लिए मुझे क्षमा प्रदान कर दो!"

"मैं तुम्हें समझ नहीं सकता, माताहारी!"

"मैं स्वयं अपने को नहीं समझ सकती, रोज़ानो।"—यह कह कर उसने रोज़ानो के गले में बाँहें डाल दीं।

"मुझे फिर पाकर प्रसन्न नहीं हो?"—वह बोली।

रोज़ानो ने कुछ कहा नहीं, कस कर माताहारी को अपने हृदय से लगा लिया।

"मैं तुम्हें संसार में सब से अधिक प्यार करता हूँ।"—रोज़ानो बोला।

"सबसे अधिक?"

"सबसे अधिक।"

"तुम्हें इस बात का विश्वास है?"

"पूर्ण।"

"सारी बत्तियाँ बुझा दो!"

रोज़ानो ने सभी बत्तियाँ बुझा दीं। केवल एक मोमबत्ती टिमटिमाती रही।

"उसे क्यों छोड़ दी?"

"मैं उसे नहीं बुझा सकता।"

"क्यों?"

"वह चित्र मेरी माता ने मुझे दिया था और उसके सामने सदा मोमबत्ती जलाने की आज्ञा दी थी।"

"क्या मेरे लिए भी उसे न बुझाओगे?"

"यह आवश्यक है?"

"मेरे लिए!"

"अच्छा, तुम्हारे लिए!"—धीरे से रोज़ानो ने कहा और कुछ देर उस चित्र की ओर देख कर उस मोमबत्ती को बुझा दिया।

८

प्रातःकाल होने से पूर्व ही माताहारी उठी। उसने आकर देखा कि पत्र उसी प्रकार मेज़ पर रक्खा था। उसने एक काग़ज़ पर लिखा:—

"किसी दिन तुम्हें पता लगेगा कि मैं वास्तव में वह नहीं हूँ, जिसे तुम प्यार करते हो।"

उस काग़ज़ को मेज़ पर रख कर कुछ देर तक उसने उसकी ओर, फिर रोज़ानो के शयनगृह की ओर देखा और एक निःश्वास लेकर नीचे उत्तर आई।

नीचे आकर उसने देखा कि एक व्यक्ति उस पत्र का फ़ोटो लिए हुए खड़ा था। उसने उस फ़ोटो को जेब में डाला और शूबेन की ओर चल दी।

जिस समय वह शूबेन के कमरे में पहुँची, उस समय शूबेन क्रोध में भरा हुआ था।

"क्यों?"—माताहारी ने उसकी ओर देख कर हँसते हुए पूछा।

"मुझे अब मालूम हो गया है कि मैं कितना मूर्ख हूँ।"

"क्या हुआ ?"

"तुमने पिछली रात रोज़ानो के कमरे में व्यतीत की थी ?"

"हाँ !"

"और फिर मुझसे तुम कहती हो कि तुम मुझे चाहती हो !"

"परन्तु तुम इसका अर्थ नहीं समझते ।"

"मैं सब समझता हूँ । दूबॉय मुझे सब कुछ समझा गया है ।"

"दूबॉय ?"

"हाँ ।"

"तो मालूम होता है, वह इस प्रकार एक ही निशाने से दो शिकार मारना चाहता है । क्या तुम नहीं समझ सकते कि दूबॉय तुम्हारा हृदय मेरी ओर से फिराना चाहता है ?"

"तो फिर तुम रोज़ानो के यहाँ क्या करने गई थीं ?"

"उसे और तुम्हें बचाने !"

"बचाने किस प्रकार ?"

"इस प्रकार !"—कह कर माताहारी ने शूबेन के हाथ में उस गुप्त पत्र की प्रतिलिपि दे दी । शूबेन उसे ध्यान से पढ़ने लगा । फिर वह चिल्ला कर बोला—"यह तो हमारा गुप्त पत्र है, जो रूस को रोज़ानो द्वारा भेजा गया था !"

"हाँ ! और शत्रुओं ने जो इसका फ़ोटो लिया था, वह मैं छीन कर लाई हूँ ।"—माताहारी ने कहा ।

शूबेन कुछ देर तक माताहारी की ओर देखता रहा, फिर बोला—अब मैं समझ गया कि दूबॉय का कहना ठीक था । तुम वास्तव में जासूस हो । अब तक दूबॉय को कोई प्रमाण न मिला था, अब मुझे वह मिल गया है । मैं अभी दूबॉय को बुलाता हूँ ।

उसने यह कह कर फ़ोन उठाया । माताहारी उसके पास आ गई ।

"क्या मुझे दूबॉय को सौंप दोगे ? फिर अपने लिए होशियार रहना ।"—उसने कहा ।

परन्तु शूबेन ने कुछ न सुना । उसने दूबॉय को सूचना देकर फ़ोन छोड़ दिया और फिर कहने लगा—रोज़ानो भी विश्वासघाती निकला !

कुछ देर बाद उसने फिर फ़ोन उठाया ।

६

"अब क्या कर रहे हो ?"—माताहारी ने पूछा ।

"राजदूत को फ़ोन करके उसे कोर्ट-मार्शल कराऊँगा !"

"नहीं, शूबेन, ऐसा न करो ! इसमें सारा दोष मेरा ही है, मुझे चाहे जिसको सुपुर्द कर दो । परन्तु रोज़ानो को इसमें न फँसाओ । वह निर्दोष है ।"

परन्तु शूबेन ने न सुना । उसने फ़ोन का कनेक्शन मिला लिया । माताहारी चिल्ला कर बोली—शूबेन !

शूबेन ने फ़ोन में कहा—हलो !

माताहारी फिर चिल्ला कर बोली—शूबेन, फ़ोन न करो ।

शूबेन ने उधर ध्यान न दिया और वह कुछ कहने को ही था कि माताहारी ने पिस्तौल दन से उसकी ओर फ़ायर कर दिया । फ़ोन को हाथ में लेकर शूबेन तुरन्त ही पृथ्वी पर गिर पड़ा । माताहारी ने पत्र का फ़ोटो उसके हाथ से छीन कर अग्नि में स्वाहा कर दिया । फिर खिड़की के बाहर झाँक कर उसने देखा कि रोज़ानो ऊपर आ रहा है । उसने बाहर से द्वार का ताला बन्द कर दिया और बीच ही में जाकर रोज़ानो से मिली ।

"तुम अभी तक रूस के लिए रवाना नहीं हुए ?"—उसने पूछा ।

"तुम्हें बिना देखे मैं नहीं जा सकता था !"

"परन्तु मुझे तो फिर भी देख लेते ।"

"मैं तुमसे इतना ही कहना चाहता था कि तुम जो कोई भी हो, कैसी भी हो, तुम अब मेरी हो । तुमको ईश्वर ने मेरे लिए बनाया है । मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहता हूँ ।"

"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, रोज़ानो ! परन्तु तुम इस समय जाओ । मैं तुम्हारे पास अवश्य आऊँगी, तुम चाहे कहीं भी हो । तुम मेरे हो, प्रियतम !"

९

दूसरे दिन माताहारी अपने अध्यक्ष से मिलने गई । वहाँ उसे पता लगा कि रोज़ानो का हवाई जहाज़ शत्रु द्वारा नष्ट कर दिया गया और वह आहत होकर एक अस्पताल में पड़ा है । उसकी आत्मा रोने लगी । अपने जीवन में पहली बार उसकी आत्मा वास्तव में रोई थी । उसे विचलित हुआ देख अध्यक्ष बोला—

"तुम उसे प्रेम करने लगी हो ?"

माताहारी चुप रही।

"तुम भूल गई हो कि तुम्हारे पेशे में व्यक्ति अपना व्यक्तित्व खो देता है !"

"मैं इसकी परवाह नहीं करती। मैंने सैकड़ों युवाओं के जीवन नष्ट कर दिए, उन्हें मृत्यु के घाट पहुँचाया। परन्तु मैं इस नवयुवक का जीवन नष्ट नहीं होने दूँगी ! मैं उसके पास जा रही हूँ।"

"परन्तु तुम उसके पास नहीं जा सकतीं।"

"क्यों ?"

"तुम्हें अभी पैरिस छोड़ कर बेलजियम जाना है !"

"यदि मैं न जाऊँ ?"

"यह मेरी आज्ञा है !"

"मैं इस आज्ञा को नहीं मानूँगी। यह मेरा त्यागपत्र है !"

"अच्छा, मैं इसे स्वीकार करता हूँ। परन्तु याद रक्खो, हमारे पेशे वाला जब त्यागपत्र देता है, तो उसका अर्थ होता है, मृत्यु !"

माताहारी ने यह नहीं सुना। वह धीरे से वहाँ से बाहर निकल गई।

१०

अस्पताल के एक कमरे में रोज़ानो आहत हुआ पड़ा था। माताहारी जाकर उससे लिपट गई।

"तुम आ गईं, माता ?"—रोज़ानो ने पूछा।

"न आती ? मैंने कहा था, मैं तुम्हारे लिए संसार के किसी भी कोने में जा पहुँचूँगी।"

"तुम्हें फिर पाकर, ओह माता !"

"अब मुझे तुम न खोओगे, रोज़ानो ! मैं सदा तुम्हारी रहूँगी। हम दोनों मिल कर, साथ-साथ, पैरिस का सुन्दर बसन्त देखेंगे !"

"परन्तु × × ×।"

"परन्तु ?"

"मैं तुम्हारे साथ न देख सकूँगा !"

माताहारी ने उसके मुख की ओर देखा। उसकी दृष्टि रोज़ानो की आँखों पर बँधी हुई पट्टी पर गई।

"क्या आँखें ?"—उसने पूछा।

"हाँ ! मैं अब अन्धा हूँ।"

माताहारी ने रोज़ानो का हाथ अपनी आँखों पर लगा कर कहा—दुःख मत करो रोज़ानो, ये आँखें तुम्हारी आँखें हैं। इनसे तुम सब कुछ देखोगे ?

रोज़ानो के मुख पर श्रद्धा और भक्ति के भाव प्रगट होने लगे। कुछ देर बाद उसने अपना सर माताहारी की गोद में रख दिया।

"मैं तुम्हें लेकर सर्वत्र फिरूँगी। अच्छे से अच्छे डॉक्टर से तुम्हारी चिकित्सा कराऊँगी। तुम्हारी दृष्टि फिर से तुम्हें दूँगी, रोज़ानो !"

यह कह कर वह नीचे आई। पास ही एक कार खड़ी थी। उसने उसका द्वार खोला और भीतर जाकर बैठी। परन्तु वह स्तम्भित रह गई, जब उसने दूबॉय को वहाँ बैठा देखा। वह नीचे उतरने के लिए उठी ही थी कि दूबॉय ने उसे रोक कर कहा—नीचे उतरने का कष्ट न करो, मैडम !

"क्यों ?"

"तुम गिरफ़्तार हो !"

"किसलिए ?"

"शूबेन के ख़ून के अपराध में।"

११

अदालत में माताहारी का अपराध प्रमाणित हो गया। उसे गोली द्वारा उड़ा दिए जाने का दण्ड मिला।

जिस दिन वह मृत्यु का आवाहन करने को थी, उसके एक दिन पूर्व उसने रोज़ानो के पास समाचार भेजा कि वह एकाएक रोग से पीड़ित हो गई थी और अस्पताल में चीर-फाड़ कराने के लिए चली गई थी। मृत्यु के कुछ घण्टे पूर्व उसने रोज़ानो को अन्तिम बार देखने के लिए बुलाया। रोज़ानो पर अभी यही प्रगट किया गया था कि वह जेल नहीं, बल्कि अस्पताल था।

"तुम अच्छी तरह हो, माता !"—रोज़ानो ने पूछा।

"मेरी चिन्ता न करो, रोज़ानो !"

"चीर-फाड़ में कुछ भय तो नहीं ?"

"भय ? कुछ भी नहीं। परन्तु मान लो कि मुझे कुछ हो जाय, तो प्रतिज्ञा करो कि तुम दुःख न करोगे।"

"परन्तु तुम्हें कुछ होगा नहीं, प्रिये ! मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा !"

(शेष मैटर ४८वें पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

साम्राज्यवाद तथा संसार की अशान्ति

[श्री० शङ्करदयालु जी श्रीवास्तव्य, विशारद, एम० ए०]
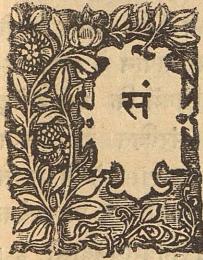
संसार के आधुनिक काल के इतिहास में साम्राज्यवाद एक अध्ययनीय तथा महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा है और यूरोप, अमेरिका, अफ्रीका तथा एशिया के राज्य-विस्तार तथा राज्य-पद्धति में इसने भारी उथल-पुथल मचाया है। यद्यपि प्राचीन काल में भी एलेक्ज़ेण्डर, सीराज़ तथा सीज़र प्रभृति अनेक सैनिक सम्राट हुए थे और उन्होंने अपने बाहुबल से आसपास के राज्यों को पराजित कर अपने साम्राज्य का पर्याप्त विस्तार कर लिया था, किन्तु वर्तमान काल के साम्राज्य-विस्तार को देख कर हम उनकी गिनती साम्राज्यों में नहीं कर सकते। अतीतकाल में अस्त्र-शस्त्र के द्वारा युद्ध करके ही साम्राज्य का विस्तार होता था, किन्तु वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राजनीतिज्ञों की लेखनियाँ भी कभी-कभी तलवारों का काम करती हैं। आज से लगभग २००० वर्ष पूर्व, पाश्चात्य जगत में मिश्र, असीरिया और ग्रीस की सभ्यता-संस्कृति भूमध्यसागर के किनारे आविर्भूत तथा विकसित हुई थी। उनमें भी परस्पर वैमनस्य हो जाता था—युद्ध होते थे, किन्तु १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध की भाँति संसार-व्यापी लड़ाई नहीं होती थी। यह सत्य है कि ईरान तथा ग्रीस एक दूसरे पर आक्रमण करते थे, रोम एवं कार्थेज में पारस्परिक वैमनस्य एवं प्रतिद्वन्दिता बनी रहती थी; फ़ोनीशिया तथा ग्रीक देशनिवासियों ने भूमध्यसागर में व्यापार किया और अपने-अपने उपनिवेश स्थापित किए—यह सब कुछ होता था। किन्तु विचार करने पर यह बात प्रत्यक्षतः स्पष्ट हो जाती है कि आधुनिक काल के युद्ध एवं प्रतिद्वन्दिता प्रकृत्या बढ़ी-चढ़ी है और अधिक भयानक सिद्ध हुई है। रोमन साम्राज्यवादियों ने उपनिवेश बसाए थे अवश्य, किन्तु यह प्रयत्न उन्होंने नहीं किया था कि रोम जाति के लोगों का ही उनमें प्राबल्य रहे। उस समय राष्ट्रीयता का विकास नहीं था और न यूरोप-अमेरिका इत्यादि आजकल की तरह भिन्न-भिन्न सीमा-निर्धारित राष्ट्रों में विभक्त थे।

हूण जाति वालों ने उत्तर से आक्रमण किया और रोमन साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। उत्तर मध्यकालीन युग में जब राष्ट्रीयता का विकास हुआ, तब यूरोप में सुदृढ़ केन्द्रीय शासन स्थापित हुए और बाहर के आक्रमण अधिकांश बन्द हो गए। यद्यपि बालकन, उत्तरी अफ्रीका तथा रूस के कुछ भाग में एशिया के तुर्कों ने अपना अधिकार जमा लिया। भाषा की एकता तथा आर्थिक एवं भौगोलिक साम्य के आधार पर इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स आदि भिन्न-भिन्न राष्ट्र सङ्गठित हो गए। किन्तु पश्चिमी यूरोप में ही सुदृढ़ तथा सुसङ्गठित राष्ट्रों का विकास हुआ। मध्य एवं पूर्वीय देशों में राष्ट्रीयता का पूर्ण विकास बहुत पीछे हुआ है।

यूरोप के आधुनिक इतिहास के प्रारम्भ में, जब कि वाष्प एवं विद्युत-शक्तियों का आविष्कार हुआ और विभिन्न प्रकार के यन्त्रों द्वारा दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की उत्पादन-गति अधिक बढ़ गई, तब व्यापार एवं राजनीति के दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का महत्व भी बढ़ गया। साथ-साथ राष्ट्रीयता का भाव भी विकसित एवं परिपक्व होता गया था। भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्पर्क-विपर्क को, उनके आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक सम्बन्ध-सूत्रों को समुचित रूप से सञ्चालित करने के लिए क़ानून की आवश्यकता प्रतीत हुई और उत्तरोत्तर यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीय विधान का विस्तार होता गया। किन्तु यूरोप की यह अवस्था यूरोप तक ही सीमित नहीं रही, वरन् बाहर के देशों में भी उसका विस्तार हुआ। जब यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों के व्यापारी लोग तथा व्यापारिक

कम्पनियाँ अफ्रीका तथा एशिया के देश-प्रदेशों में वाणिज्य-व्यवसाय के नाते पहुँचीं और उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किए, तो पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता के कारण वैमनस्य पैदा हुआ और कलह तथा युद्ध होने लगे। स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैण्ड, फ्रान्स तथा इङ्गलैण्ड वाले ही पहले-पहल इस प्रतिद्वन्दिता के क्षेत्र में अग्रसर थे।

यद्यपि अठारहवीं शताब्दि में ही यन्त्र-युग का प्रारम्भ हो गया था, किन्तु वास्तव में उपर्युक्त प्रतिद्वन्दिता ने १९वीं शताब्दि के प्रारम्भ तक अपना विकराल रूप नहीं धारण किया था। १९वीं शताब्दि के पहले अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर इस सङ्घर्षण का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा, परन्तु जब व्यावसायिक क्रान्ति (Industrial Civilization) ने कुछ काल के अनन्तर अधिक बल पकड़ा, तब अन्तर्राष्ट्रीय जगत पर पारस्परिक वैमनस्य का दुष्परिणाम अपना रङ्ग जमाता गया। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में जटिलता आती गई। अस्तु—

वर्तमान समय में कुल छोटे-बड़े मिला कर दस साम्राज्यवादी राष्ट्र हैं। क्षेत्रफल की बड़ाई के अनुसार उनके नाम क्रमशः ये हैं—(१) ब्रिटिश, (२) रूस, (३) फ्रान्स, (४) पुर्तगाल, (५) बेल्जियम, (६) संयुक्त-राज्य अमेरिका, (७) हॉलैण्ड, (८) इटली, (९) स्पेन तथा (१०) जापान। इन दस बलशाली शक्तियों के अधिकार में जितने उपनिवेश, संरक्षित देश अथवा अन्य प्रकार के अधिकृत प्रदेश हैं, उनका सामूहिक क्षेत्र-फल समस्त यूरोप महाद्वीप के विस्तार से सात गुना है।

(४६वें पृष्ठ का शेषांश)

"अच्छा, अब मैं जाती हूँ, डॉक्टर बुलाने आया है।"

"इतना शीघ्र ?"

"ये कार्य शीघ्र हों, यही अच्छा है ! अब विदा !"

"विदा ?"

"हाँ, जब तक कि हम फिर न मिलें।"

सिपाही तैयार खड़े थे। माता उनके साथ शान्तिपूर्वक चली गई। उसने फिर एक बार भी मुड़ कर पीछे न देखा। वहाँ पूर्ण शान्ति विराज रही थी। कुछ देर में माताहारी वहाँ से ओझल हो गई, परन्तु रोज़ानो के दृष्टिहीन नेत्र बहुत देर तक उधर लगे रहे।

❀ ❀ ❀

समस्त मनुष्य-जाति का एक तीसरा भाग अर्थात् लगभग ६ अरब मनुष्य इन साम्राज्यवादी शक्तियों के अपरोक्ष प्रभुत्व के अन्तर्गत हैं। चीन, ईरान, टर्की, अबीसीनिया, अफ़ग़ानिस्तान तथा दक्षिणी अमेरिका के कुछ राज्य, जिन्हें Latin American States कहते हैं, जिन पर साम्राज्यवाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका है, उक्त गणना के बाहर हैं और यदि हम उन्हें भी इस गणना में सम्मिलित कर लें, तो यह कह सकते हैं कि संसार के दो तिहाई मनुष्य यूरोप, अमेरिका तथा जापान के साम्राज्यवाद के अन्दर निवास करते हैं, जिनमें कि दस करोड़ से कुछ अधिक लोग उपनिवेशों, संरक्षित देशों तथा अनुन्नत देशों (Backward countries) में रहते हैं। हिसाब लगाने से यह मालूम होता है कि प्रत्येक अङ्गरेज़ के अधिकार में दस उपनिवेश-निवासी हैं। फ्रान्स के अधीन जितने उपनिवेश एवं संरक्षित देश हैं, वे सब मिला कर फ्रान्स देश से २० गुने बड़े हैं। इटली अपने अधिकृत प्रदेशों के छठवें भाग के बराबर है और उसी प्रकार पुर्तगाल तथा बेल्जियम, क्रमशः अपने अधीनस्थ उपनिवेशों के तेइसवें और अस्सीवें भाग के बराबर हैं। पश्चिमी यूरोप के राष्ट्र अपने औपनिवेशिक राज्यों के सम्मुख अत्यन्त छोटे हैं।

पुर्तगाल, हॉलैण्ड तथा बेल्जियम यद्यपि बहुत छोटे-छोटे देश हैं, किन्तु उनके अधीन काफ़ी उपनिवेश हैं। जर्मन और इटली इस दृष्टि से भूमि-सम्पन्न देश नहीं हैं। इङ्गलैण्ड का राजनीतिक प्रभुत्व प्रत्येक महाद्वीप में है और सैकड़ों उपनिवेश उसके अधीन हैं। जापान यद्यपि एक बलशाली राष्ट्र गिना जाता है, किन्तु उसके अधीन बहुत थोड़े उपनिवेश हैं। संयुक्त देश अमेरिका के अधीन भी बहुत अधिक उपनिवेश नहीं हैं। क्योंकि वह अपनी नीति-विशेष के कारण अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्दिता के क्षेत्र में शीघ्र अग्रसर नहीं हो सका।

फ्रान्स के राजनीतिज्ञों ने घोषित किया कि उपनिवेशों को पराजित कर उन्हें अपने राजनीतिक प्रभुत्व के अन्दर लाना उचित ही नहीं, वरन् देश-हित की दृष्टि से भी आवश्यक है। इटली के मन्त्रियों ने भी इस मत का प्रतिपादन किया कि अन्य प्रदेशों तथा उपनिवेशों को जीत कर अपने राज्य-विस्तार को बढ़ाना हमारा पवित्र कर्तव्य है। अङ्गरेज़ मन्त्रियों, राजनीति-विशारदों ने भी साम्राज्यवाद

के औचित्य को सिद्ध किया और मनुष्य-मात्र के लिए यह एक हितकारी कार्य समझा कि दूरस्थ देशों पर अपनी प्रभुता स्थापित कर हम वहाँ अपनी भाषा तथा सभ्यता-संस्कृति का विस्तार करें। किपलिङ्ग महाशय के शब्दों में असभ्य तथा पिछड़े हुए देशों को जीत कर उन्हें सभ्य बनाना गौराङ्ग पुरुष के लिए एक कर्तव्य-भार है (Whiteman's burden)। महामति बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी पहले साम्राज्यवाद की नीति का विरोध करता था, किन्तु कुछ काल के अनन्तर वह भी पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता में पड़ गया।

गत पचास-साठ वर्षों (१८७०-१९३०) में संसार के भिन्न-भिन्न साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने किस गति से अपने राज्य का विस्तार किया, उसका अनुमान पाठक इस बात से कर सकते हैं कि इस काल के अन्तर्गत फ़्रान्स ने ५० लाख वर्गमील भूमि जीता, इटली ने १० लाख वर्गमील, ब्रिटेन ने ४० लाख वर्गमील और जर्मनी ने १० लाख वर्गमील। ऑस्ट्रिया हङ्गरी ने बाल-कन पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया। रूस के ज़ार ने मध्य एशिया, ईरान, मञ्चूरिया आदि में अपनी साम्राज्यवादी नीति का विस्तार किया। टर्की, तिब्बत तथा अफ़ग़ानिस्तान की ओर भी उसकी दृष्टि पड़ी थी। जापान ने फ़ारमोसा, कोरिया, मञ्चूरिया का एक भाग, शाण्टङ्ग जीता। शान्ति-सागर-स्थित जर्मनी के द्वीपों को (महायुद्ध के पश्चात्) पाया और चीन को अपना संरक्षित राज्य बनाने का प्रयत्न किया। अमेरिका ने भी प्रशान्त महासागर तथा केरीबियन सागर में अपना विस्तार बढ़ाया। बेल्जियम ने मध्य अफ़्रीका में सुविस्तृत भूमि प्राप्त की। पुर्तगाल ने जर्मनी से भी अधिक उपनिवेश अधिकृत किए। स्पेन ने मोरक्को का थोड़ा सा भाग पाया। हॉलैण्ड ने ईस्टइण्डीज़ द्वीप-समूह पर अधिकार जमाया।

मध्यकालीन युग में इटली तथा जर्मनी के नगर यूरोप के लिए वाणिज्य-व्यवसाय के केन्द्र थे, वे सुदूर पूर्व देशों से व्यापार करते थे और पर्याप्त रूप से धन-सम्पन्न हो गए थे। पुर्तगाल, स्पेन, इङ्गलैण्ड तथा फ़्रान्स उस समय कृषि-प्रधान देश होने के कारण निर्धन थे। इटली तथा जर्मनी के व्यापारी उन्हें अपना माल अधिक दाम पर देते थे। बड़े-बड़े सरदारों तथा राजाओं को अपना दरबार सुसज्जित करने के लिए पूर्व देशों की बनी हुई अनेक सुन्दर अलंकृत वस्तुओं की आवश्यकता होती थी, जो वेनिस, जेनेवा आदि के व्यापारियों से उन्हें कई गुने दाम पर मिलती थीं। सोने-चाँदी की भी उन्हें आवश्यकता होती थी। फलतः उक्त निर्धन देशवालों ने पूर्व देशों से स्वतन्त्र व्यापार सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। पुर्तगाल, हॉलैण्ड, फ़्रान्स, इङ्गलैण्ड तथा स्पेन आदि देशों से कुछ लोग बाहर निकले। राजा तथा मन्त्रि-मण्डल ने अपने-अपने देश के इन पुरुषार्थियों को समुचित सहायता दी। फल यह हुआ कि दक्षिणी अमेरिका, उत्तरी अमेरिका, भारत तथा पूर्वी द्वीपसमूह आदि स्थानों में ये व्यापार करने लगे। इसके पश्चात् जब नए-नए यन्त्रों का आविष्कार हुआ, भाप और बिजली की शक्ति से यन्त्रों का सञ्चालन प्रारम्भ हुआ, तो यूरोप के देशों में इतनी प्रचुर संख्या में सैकड़ों पदार्थ उत्पन्न होने लगे, जितना कि वे स्वयं अपने प्रयोग में न ला सकते थे। फलतः आवश्यकता प्रतीत हुई कि दूर-दूर देशों में अपने माल बेचने के लिए मण्डियाँ स्थापित करें। इसके लिए सुदूर स्थानों में अपनी राजनीतिक प्रभुता भी स्थापित करनी पड़ी और इस प्रकार अफ़्रीका, एशिया के देश तथा सैकड़ों-हज़ारों द्वीप यूरोपीय राष्ट्रों के अधीन आ गए। ख़ूब वैमनस्य बढ़ा। प्रतिद्वन्दिता होने लगी। मार-काट तथा युद्ध भी होते थे। माल बेचने की मण्डियों की आवश्यकता के साथ-साथ यह भी अनिवार्य था कि मैशीनों का काम चालू रखने के लिए उन्हें प्रचुर मात्रा में कच्चा माल भी मिला करे। इसमें भी प्रतिद्वन्दिता थी। फलतः कच्चे माल को अपने लिए सुरक्षित रखने के लिए अपनी सेना एवं राजनीतिक आधिपत्य की आवश्यकता हुई। पूँजीवालों ने भी साम्राज्यवाद की सफलता में पर्याप्त योग दिया। सुदूर अधिकृत देश-प्रदेशों में अधिक रुपए लगा कर वहाँ अपनी फ़ैक्टरियाँ, बैङ्क इत्यादि खोले, जिसके संरक्षण के लिए सेना-शक्ति का सङ्गठन बढ़ता गया।

याद रहे कि ये सब बातें थोड़े ही काल में एक साथ ही नहीं हो गईं। साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए भी समय-समय पर आन्दोलन भी होता रहा। किन्तु फिर इन आन्दोलनों को दबा कर साम्राज्यवादी-सिद्धान्त ने अपना पूर्ण विकास दिखाया। पहले-पहल जब यूरोपीय व्यापारी अथवा व्यापारिक-मण्डल वाणिज्य-व्यापार के

लिए दूसरे देशों में गए, तो राज की शक्ति भी उनका साथ देती थी। गृह-देश की नीति भी व्यापारिक नीति थी। किन्तु फिर कुछ समय के पश्चात् व्यापार-स्वतन्त्रता का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसका आशय यह था कि न तो राज्य की ओर से ऐसे क़ानून पास किए जायँ, जिससे कि एक देश में दूसरे देश के व्यापार के प्रति कोई अवरोध उपस्थित हो (जैसे अपने देश के व्यवसाय के संरक्षण के लिए अन्य देशों से आई हुई वस्तुओं पर अत्यधिक कर लगाना) और न सुदूर देशों में अपने देश के व्यापारियों की सहायता के लिए अनुचित रूप से सेना-शक्ति का उपयोग किया जाय। अङ्गरेज़ी में राज्य की व्यापारिक नीति को State Mercantile Policy कहते हैं और व्यापार-स्वतन्त्रता को Freedom of Trade अथवा Laissez-faire.

तुरगो (Turgot) तथा फ्रान्स के अर्थ-शास्त्र-वेत्ताओं ने व्यापार-स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का प्रतिपादन और संरक्षण-नीति का विरोध किया। १७७६ ई० में आदम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nations' में बड़े ज़ोरदार शब्दों में इस बात का समर्थन किया कि व्यापार में स्वतन्त्रता दी जाय। कुछ काल के अनन्तर मालथूज़, रिकार्डो तथा जेम्स मिल आदि अङ्गरेज़ अर्थ-शास्त्रियों ने भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस आन्दोलन के साथ ही साथ व्यक्तिवाद, प्रजातन्त्र-वाद तथा अन्तर्राष्ट्रीयवाद के सिद्धान्त-प्रतिपादकों का सहयोग प्राप्त हुआ। ये सब सिद्धान्त संरक्षण-नीति तथा साम्राज्यवाद का घोर विरोध करते थे। जेरमी बेन्थम कहा करते थे कि उपनिवेशों से गृह-देश को कुछ अधिक लाभ नहीं हो सकता, वरन् उलटे स्थल एवं जल-सेना के अधिक उपयोग से व्यय के बढ़ जाने की आशङ्का रहेगी, दूसरे देशों के साथ इनके कारण युद्ध होगा और स्वदेश में राजनीतिक अनाचार बढ़ेगा।

सन् १८६०-१८७० के लगभग स्वतन्त्र-व्यापार का आन्दोलन चरम सीमा तक पहुँच गया था। इङ्गलैण्ड के प्रधान सचिव ग्लैडस्टन तथा जर्मनी के बिस्मार्क ने साम्राज्यवादियों का विरोध किया। किन्तु फिर १८७० के पश्चात् जब यूरोप के लगभग सभी राष्ट्रों में मैशीनें चलनें लगीं और तैयार माल की खपत एवं कच्चे माल की माँग के लिए पारस्परिक प्रतिद्वन्दिता बढ़ी, तो साम्राज्यवादियों का प्राबल्य बढ़ा और एक-एक करके सब साम्राज्य-विस्तार की नीति का अवलम्बन करने लगे। व्यापारिक स्वतन्त्रता के स्थान में आर्थिक राष्ट्रीयता के सिद्धान्त का प्रचार हुआ, जिसका आशय यह था कि किसी देश की सरकार वाणिज्य-व्यवसाय, उद्योग-धन्धे के मामलों को व्यक्तिगत उत्तरदायित्व पर न छोड़ कर स्वयं नियम बना कर उन विषयों का सञ्चालन करे। व्यक्तिगत स्वार्थ को राष्ट्रीय हित की वेदी पर बलिदान कर देना अच्छा है। इसका आशय यह भी था कि राष्ट्र उचित नीति से औपनिवेशिक साम्राज्य बढ़ावें, ताकि उन्हें कच्चा माल मिल सके, तैयार माल बेचने के लिए मण्डियाँ प्राप्त हों और पूँजीपतियों के हित का संरक्षण कर सकें। इसी व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता तथा आर्थिक राष्ट्रीयता की नीति के कारण इङ्गलैण्ड साम्राज्यवादी बना। डिज़रेली, सर चार्ल्स डिल्के तथा इतिहासवेत्ता बरी इत्यादि ने अपने देश के सम्मुख साम्राज्यवाद का आदर्श रक्खा। पार्लिया-मेण्ट के १८७४ ई० के चुनाव में ग्लैस्डेटन के स्थान पर डिज़रेली प्रधान सचिव बने। फिर क्या था, १८७४ में फ़िज़ी द्वीप ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया। १८७५ ई० में स्वेज़ नहर की आयोजना में कुछ भाग लिए गए। १८७६ ई० में विक्टोरिया भारत की सम्राज्ञी बनाई गई। बिलोचिस्तान एक ब्रिटिश संरक्षित राज्य घोषित किया और ट्रान्सवाल मिला लिया गया। १८७७ ई० में इङ्गलैण्ड तथा रूस के बीच टर्की के प्रश्न पर लड़ाई ही हो जाने को थी, किन्तु नहीं हुई। १८७८ ई० में साइप्रस मिला। अफ़ग़ानिस्तान में व्यवहृत नीति तथा अङ्गरेज़ों के हत्याकाण्ड से असन्तुष्ट हो डिज़रेली के स्थान पर फिर ग्लैडेस्टन को चुना, किन्तु साम्राज्यवाद की नीति वह भी त्याग नहीं सका, मिस्र देश पर सैनिक प्रभुत्व स्थापित किया गया। नील प्रदेश को पराजित किया। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में चार आदमियों ने अथक परिश्रम किया। सर हेनरी जॉन्स्टन, सिसिल रहोड्स, एडवर्ड ग्रे तथा जोज़फ़ चैम्बरलेन।

इसी प्रकार फ्रान्स तथा जर्मनी ने भी अपने-अपने साम्राज्य का विस्तार किया। जूल्स फेरी ने साम्राज्यवाद के सिद्धान्त का समर्थन तथा प्रतिपादन किया। ट्यूनिस एवं टान्किन क्रमशः १८८१ तथा १८८३ ई० में पराजित किए गए और अपने कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के

लिए जूल्स फेरी ने कई तर्क उपस्थित किए, जिसमें कि यह भी कहा गया कि बलशाली जातियों को लघु जातियों के प्रति एक अधिकार प्राप्त है और वह है उन्हें सभ्य बनाने का कार्य। जूल्स ने यह भी कहा कि सामुद्रिक शक्तियों के लिए उपनिवेशों में जहाज़ को विश्राम लेने और कोयला-पानी का प्रबन्ध करने को स्टेशन चाहिए और इस तरह उसने सिद्ध किया कि फ़्रान्स की सम्पन्नता के लिए अधिक से अधिक औपनिवेशों का होना अत्यावश्यक है। औपनिवेशिक नीति व्यावसायिक नीति की पुत्री है। जूल्स फेरी, गैब्रील हनाटाक्स, जूल्स बार्थोलेमी, डेलकैसे, प्वाइङ्करे तथा क्लेमेन्स ने फ़्रान्स साम्राज्य को ख़ूब बढ़ाया। जर्मनी में भी साम्राज्यवादियों का प्रभाव बढ़ने लगा और १८८४ के पश्चात् बिस्मार्क भी परिस्थितियों से विवश होकर उसके प्रभाव में पड़ गया, किन्तु तब भी कट्टर साम्राज्यवादी नहीं बन सका। उसका मत था कि राष्ट्रीय झण्डा व्यापार के पीछे-पीछे चल सकता है, किन्तु उसके आगे-आगे नहीं चल सकता। १८९० ई० में जब द्वितीय विलियम गद्दी पर बैठा और बिस्मार्क को उसके पद से हटाया गया, तो साम्राज्यवाद की बड़ी उन्नति हुई। सन् १८९० ई० से लेकर १९१४ ई० तक अफ़्रीका के कितने प्रदेश जर्मनी के संरक्षित राज्य बन गए। दक्षिणी सागर के सैकड़ों द्वीपों पर जर्मनी का राष्ट्रीय झण्डा फहराने लगा। चीन के तट पर एक सुन्दर बन्दरगाह प्राप्त हुआ। टर्की में बग़दाद तक रेलवे लाइन चली गई।

इङ्गलैण्ड, जर्मनी तथा फ़्रान्स के अतिरिक्त जापान, इटली, रूस, ऑस्ट्रिया हङ्गरी आदि ने भी यथाशक्ति साम्राज्य-विस्तार के लिए प्रयत्न किया। अमेरिका भी इस प्रतिद्वन्दिता के युद्ध-क्षेत्र से अलग नहीं रह सका। संयुक्त राष्ट्र की सरकार ने ही नहीं, वरन् और लोगों ने भी साम्राज्यवाद के कार्य में सहयोग दिया। ऊनी, सूती, कपड़ा तथा लोहे के सामान तैयार कराने वाले, माल को बाहर भेजने वाले व्यापारी, जहाज़ के स्वामी, पूँजीपति, बैङ्कों के मालिक, मिशनरी, राजनीतिज्ञ, मन्त्रीगण तथा पत्र-सञ्चालक इत्यादि सभी इस कार्य में पर्याप्त सहानुभूति रखते थे और आवश्यकतानुसार उन्होंने सहायता तथा सहयोग भी दिया। किन्तु बहुसंख्यक लोग इस कार्य से प्रत्यक्षतः कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे। प्रश्न किया जा सकता है कि यदि इन सबकी सहानुभूति नहीं थी तो उन देशों को सफलता कैसे प्राप्त हुई? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि बहुसंख्यक लोगों का साम्राज्य-विस्तार में कुछ हित वा स्वार्थ नहीं था, तथापि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार साधारण जनता पर विचारों व सिद्धान्तों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। आत्म-रक्षा का विचार, युद्ध के समय में कच्चे माल के आयात को सुरक्षित रखना तथा बढ़ी हुई जन-संख्या के लिए समुचित स्थान खोजना आदि ऐसी बातें थीं, जिनकी पूर्ति साम्राज्य-विस्तार से हो सकती थी और इसी कारण साम्राज्यवादियों को सब लोगों की सहानुभूति प्राप्त हो गई थी। इसके अतिरिक्त साधारण जनता में यह विचार भी फैलाया गया था कि राष्ट्रीय सम्पत्ति उस समय बढ़ती है, जब कि राष्ट्र के अधीन उपनिवेश हों और साम्राज्य-विस्तार से राष्ट्र का सम्मान तथा गौरव बढ़ता है। साम्राज्यवादियों का यह भी कहना था कि सभ्य, सुशिक्षित पाश्चात्य देशवालों का यह ईश्वर-प्रदत्त अधिकार तथा कर्त्तव्य है कि असभ्य, अशिक्षित, अनुन्नत देशों पर राज्य कर उन्हें उन्नतिशील बनाएँ, शिक्षा प्रदान कर सभ्य बनाएँ। इस कर्त्तव्य के पालन के लिए बाहुबल का प्रयोग करना भी उनके मतानुसार उचित है।

अब हम साम्राज्यवाद के औचित्य-अनौचित्य पर कुछ विचार करेंगे। सर्व-प्रथम हम उन तर्कों की विवेचना करेंगे, जो साम्राज्यवादियों द्वारा उपस्थित किए जाते हैं। पहला तर्क यह है कि हमारे मैशीनों तथा फ़ैक्टरियों को चालू रखने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने माल को बाहर बेचें और बाहर से कच्चा माल मँगावें। यद्यपि यह ठीक है कि साम्राज्य-विस्तार से और सैकड़ों देश-प्रदेशों एवं उपनिवेशों पर राजनीतिक आधिपत्य स्थापित कर लेने से वे अपने माल को अधिक से अधिक मूल्य पर बेचने में समर्थ हुए हैं और कम से कम दाम पर उन्हें कच्चे माल मिल गए हैं, किन्तु इससे काफ़ी हानि भी हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रों में मैत्री और प्रेम-भाव बना रहे। एक राष्ट्र अपने उपनिवेशों में दूसरे देश के व्यापारियों के हित के विरुद्ध कड़ा महसूल और भारी टैक्स लगा देते हैं और इसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि बलशाली राष्ट्रों में भी वैमनस्य और कलह उत्पन्न हो जाता है। इसी वैमनस्य के कारण कई बार युद्ध भी छिड़ गए हैं।

सब राष्ट्रों को सब जगह व्यापार के लिए समानाधिकार रहे, तभी संसार का कल्याण हो सकता है। इस नीति का, जिसे अङ्गरेज़ी में Open Door Policy कहते हैं, कभी-कभी और कहीं-कहीं अवलम्बन अवश्य किया गया है, किन्तु सर्वत्र समान भाव से प्रचारित न होने के कारण उसमें सफलता नहीं प्राप्त हो सकी है। इसके अतिरिक्त उपनिवेश-निवासी भी धीरे-धीरे जाग्रत हो रहे हैं और अपने-अपने अधिकारों को समझने लगे हैं। इस जाग्रतावस्था में वे इसे पसन्द नहीं करेंगे कि अपनी इच्छा के विरुद्ध और अपने देश की हानि-लाभ का विचार न करके अपने शासकों के घर से ही माल मँगाते रहें अथवा अपना कच्चा माल अनिवार्यतः उन्हीं के हाथ बेचें। इसी कारण भारत, चीन, कोरिया, फ़िलिपाइन्स आदि सैकड़ों अधिकृत देशों में बहिष्कार का आन्दोलन चला है। उचित तो यह है कि माल ख़रीदने वालों तथा बेचने वालों के ऊपर कोई अनुचित दबाव न डाला जाय। यदि एक उपनिवेश वा अधीन देश के रहने वालों को जापान वा अमेरिका का माल अच्छा और सस्ता मालूम होता हो, तो उनके ऊपर अनुचित बल-प्रयोग करके उन्हें इङ्गलैण्ड के मँहगे माल को ख़रीदने पर क्यों विवश किया जाय? यदि इङ्गलैण्ड के प्रति उपनिवेश वालों में कोई ईर्ष्या-द्वेष वा वैमनस्य न होगा तो वे यदि सस्ता और अच्छा देखेंगे तो इङ्गलैण्ड का ही माल लेंगे, अमेरिका और जापान के माल नहीं ख़रीदेंगे। इसलिए अच्छे माल को सस्ते दाम पर बेचने का प्रबन्ध होने पर ही संसार में उसकी खपत हो सकेगी। इसके लिए राजनीतिक प्रभुता की आवश्यकता नहीं, इससे अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य बढ़ता है, शासक को शासितों के प्रति दुर्व्यवहार वा अत्याचार का प्रयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उपनिवेश को समुचित उत्साह नहीं दिया जाता कि वे स्वदेश में ही अच्छी-अच्छी वस्तुएँ उत्पन्न करना और तैयार करना प्रारम्भ करें; क्योंकि विदेशी सरकार को तो अपने गृह-सरकार के हित में सब कुछ करना रहता है, औपनिवेशिक जनता के हित की अपेक्षा उन्हें अपने देश-निवासियों के हित की ओर अधिक सहानुभूति रहती है। यदि कोई देश अपने कल-कारख़ानों द्वारा बनाए हुए माल को बिना अनुचित प्रकार से सैनिक शक्ति की सहायता लिए हुए केवल माल की अच्छाई एवं सस्तेपन के आधार पर नहीं बेच सकता तो अर्थशास्त्र के श्रम-विभाग के सिद्धान्त के अनुसार उसे उस माल को बनाना ही न चाहिए अथवा कम मात्रा में उत्पन्न करना चाहिए। सिद्धान्त की दृष्टि से विचार करने पर यह भी सिद्ध होता है कि कल-कारख़ानों की सभ्यता का बहुत प्रचार संसार के लिए अकल्याणकारी होगा। जब पूर्वी देशों में भी मैशीन-युग का काल उपस्थित होगा, तो पश्चिमी देश के लोग अपना माल कहाँ बेचेंगे, उन्हें विवश हो कुछ मैशीनों को तोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि उस समय अधिकाधिक माल की खपत नहीं हो सकेगी।

यही बात कच्चे माल के विषय में भी कही जा सकती है। साम्राज्यवादी देश अपने अधिकृत प्रदेशों के कच्चे माल को अपने हाथ में करने के लिए अधिक निर्यात-कर लगाते हैं, जिससे कि दूसरे देश वालों को लाभ उठाने का अवसर न मिले। कुछ साम्राज्यवादियों का कहना है कि उपनिवेश के कच्चे माल पर अपना अधिकार रखने से युद्ध-समय में बड़ी सहायता मिलती है; क्योंकि उस समय शत्रु-देशों के साथ व्यापार बन्द हो जाता है। किन्तु विचार करने पर यह सिद्ध हुआ है कि कोई भी देश इस प्रकार की नीति का अवलम्बन कर अपनी पूरी आवश्यकता की पूर्ति नहीं कर सकता।

साम्राज्यवादियों की दूसरी प्रधान दलील यह है कि उपनिवेशों पर राज्य रहने से हमारे देश के पूँजीपतियों की पूँजी को लाभकारी कार्यों में लगाने का अवसर प्राप्त होता है। यदि हमारा राजनीतिक आधिपत्य न हो तो हमारे देशवासियों का जो कुछ आर्थिक हित है (बैङ्कों, रेलों तथा फ़ैक्टरियों में) उसकी रक्षा कौन करेगा? यदि रक्षा का साधन नहीं रहेगा तो पूँजीपति अपनी पूँजी कैसे लगा सकते हैं और यदि पूँजी के लगाने का अवसर न मिलेगा तो उस पूँजी का आर्थिक मूल्य घटता जायगा। राज्य की सरकार, राजनीतिज्ञों एवं पूँजीपतियों में इसी कारण घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। राजनीति एवं अर्थ (धन-दौलत) की सहयोग-नीति से, जिसको अङ्गरेज़ी में डॉलर डिप्लोमेसी कहते हैं, राज्य के कर्मचारियों, मन्त्रि-मण्डल के राजनीतिज्ञों तथा पत्र-सञ्चालकों में राजनीतिक व्यभिचार फैलता है। पूँजीपतियों का उन पर अनुचित प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण वे राज्य-कार्य को निष्पक्षता और सचाई के साथ सञ्चालित

नहीं कर सकते । दूसरी बात यह भी है कि इस आर्थिक-राजनीतिक सहयोग से अन्तर्राष्ट्रीय कलह भी उठते हैं, छोटे-छोटे देशों को बड़ी हानि होती है। क्योंकि एक उपनिवेश या देश में, जिसमें दूसरे राष्ट्र का राज्य है, वे अपनी पूँजी लगाने का समुचित अवसर नहीं प्राप्त कर सकते । यद्यपि साम्राज्यवादी विदेशी सरकार यह कह सकती है कि हमारे गृह-देश की लगी हुई पूँजी से उपनिवेश-निवासियों को भी रेल, तार, बिजली तथा अन्य फ़ैक्टरियों से लाभ होता है, किन्तु सोचने और विचारने की बात है कि इन सुविधाओं तथा आराम पहुँचाने वाली वस्तुओं से उपनिवेश की बहुसंख्यक साधारण जनता को क्या लाभ होता है। उन्हें तो उलटे विविध प्रकार की हानियाँ और असुविधाएँ ही उठानी पड़ती हैं। छोटे-छोटे बच्चे, स्त्रियाँ कम से कम मज़दूरी पर रात-दिन अस्वस्थकर स्थान में परिश्रम किया करती हैं। उनका स्वास्थ्य ख़राब जाता है, बीमारी फैलती है, अनाचार और व्यभिचार बढ़ता है। इस विषय में एक बात और कहनी है, और वह यह है कि उपनिवेश-निवासी छोटे-छोटे पूँजीपतियों को विदेशी पूँजीपतियों के सामने हानि उठानी पड़ती है, उपनिवेश-वासियों के श्रम से उनके कच्चे माल अथवा अन्य वस्तुओं से जो तैयार माल बनते हैं, उनका कुल लाभ विदेशी पूँजीपतियों के हाथ में चला जाता है। यदि वही माल अधिकृत प्रदेश के पूँजीपतियों के हाथ में रहता, तो देश की साम्पत्तिक अवस्था भी कुछ अधिक सुधरती। इस प्रकार पूँजीवाद के प्रभाव से साम्राज्यवादी राष्ट्र के शासन-सञ्चालकों पर अनुचित प्रभाव पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य बढ़ता है और उपनिवेशों को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक पहुँचती है, इस प्रकार इस दृष्टिकोण से भी साम्राज्यवाद हितकर नहीं।

बलपूर्वक दूसरे देशों को पराजित करके उस पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने वाले साम्राज्यवादी लोग तीसरा तर्क यह उपस्थित करते हैं कि अपने देश की बढ़ी हुई जन-संख्या को बसाने के लिए हमारे अधिकार में उपनिवेश तथा अधिकृत प्रदेश चाहिए। हमें यह मान लेने में तनिक भी सङ्कोच नहीं कि जापान, इटली तथा जर्मनी आदि देशों की जन-संख्या इतनी अधिक है कि उनके लिए अन्य स्थानों की आवश्यकता है, जहाँ वे सुख-शान्ति से निवास कर सकें। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि साम्राज्यवादियों का यह तर्क उनकी अनौचित्यपूर्ण नीति एवं अत्याचार के लिए एक बहाना मात्र है। हमारे गौराङ्ग साम्राज्यवादी भाई हम कृष्णवर्ण वालों को नीच समझते हैं, असभ्य मानते हैं और हेय-दृष्टि से हमारी ओर देखते हैं और बलपूर्वक एशिया तथा अफ्रीका के विभिन्न देश-प्रदेशों में अपना राज्य स्थापित कर धीरे-धीरे उन्हें भी गौराङ्ग देश बनाना चाहते हैं। यदि जन-संख्या का ही प्रश्न होता तो बन्धु-भाव से मैत्री स्थापित कर समुचित निवास-स्थान खोज लेना कोई कठिन बात नहीं थी; किन्तु इस तर्क के पीछे प्रायः राजनीतिक चाल छिपी रहती है। वे केवल बढ़ी हुई जन-संख्या के लिए स्थान नहीं चाहते, बल्कि वहाँ भी अपना राज्य स्थापित करना चाहते हैं। वहाँ के आदिम-निवासियों के ऊपर अपने देशवासियों की निरङ्कुश सत्ता जमाना चाहते हैं। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलैण्ड में अपना प्रभाव बढ़ा कर जापानियों को वहाँ जाने से रोक दिया है। अमेरिका वाले जापानियों, चीन वालों तथा भारतवासियों को अपने यहाँ बसने का अधिकार नहीं देते। दक्षिण अफ्रीका में काले-गोरे का जो प्रश्न है, वह भी किसी से छिपा नहीं है। यदि केवल बढ़ी हुई जन-संख्या के बसाने का ही प्रश्न होता तो उन भारतीयों पर, जिन्होंने जङ्गल काट कर अपने लिए निवास-स्थान बनाए थे, गोरे लोग इतना अत्याचार क्यों करते? वे भी शान्ति-पूर्वक वहाँ बसते; किन्तु उनके लिए वास्तव में जन-संख्या का प्रश्न नहीं, बल्कि गोरों का राज्य स्थापित करने का प्रश्न प्रतीत होता है। इतने दिनों के साम्राज्यवाद ने बढ़ी हुई जन-संख्या को आश्रय और स्थान देने में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है? कुछ भी नहीं, बल्कि उलटे भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में परस्पर द्वेष और कलह अवश्य उत्पन्न हो गया है।

साम्राज्यवादियों का अन्तिम प्रधान तर्क यह है कि हम लोग सभ्य-सुशिक्षित हैं और संसार की कल्याण-दृष्टि से हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम असभ्य, अर्द्धसभ्य, अशिक्षित समाज को अपने राजनीतिक आधिपत्य में रख कर उन्हें सभ्य तथा सुशिक्षित बनाएँ। इस तर्क के आधार पर उपनिवेशों तथा अन्य अधीनस्थ प्रदेशों के प्रति यह उनकी असीम कृपा है कि अपने देश से सैकड़ों-हज़ारों मील की दूरी पर जाकर असभ्य अशिक्षित जातियों

के बीच में रह कर उन्हें सभ्य बना रहे हैं। यद्यपि हम एकदम से यह अस्वीकार नहीं कर सकते हैं कि उनके सम्पर्क-विपर्क से एशिया, अफ्रीका के देशों तथा सैकड़ों उपनिवेशों के लोगों का कई बातों में उपकार हुआ है। किन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो ज्ञात होगा कि उन्होंने केवल लोक-कल्याण को अपने दृष्टिकोण में रख कर ही अधिकृत प्रदेशों में अपनी नीति को स्थिर नहीं किया, बल्कि अपने देश और देशवालों का हित ही उनका प्रधान ध्येय था। अपनी सेना के सङ्गठन में, अपने देश के लिए कच्चे माल के उत्पन्न कराने में तथा अपने शासन को सुदृढ़ करने में जितना ध्यान साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने दिया है और उन्होंने जितनी शक्ति लगाई है, उतना ध्यान और उतनी शक्ति अधिकृत देशवासियों को शिक्षित करने में नहीं लगाया और न उनकी सर्वाङ्गीय उन्नति के लिए लोकोपकारी संस्थाओं का ही स्थापन किया। शिक्षा की व्यवस्था की है अवश्य, स्कूल तथा कॉलेज भी स्थापित किए हैं; किन्तु ऐसी शिक्षण-पद्धति का अनुसरण किया है जिससे कि अधिक लाभ होने की सम्भावना नहीं। बड़े-बड़े कॉलेजों में ही नहीं, छोटी-छोटी कक्षाओं में भी विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। इसका जो दुष्परिणाम हुआ है अथवा स्वभावतः हो सकता है, उसका अनुमान प्रत्येक बुद्धिमान पुरुष स्वतः कर सकता है। यदि साम्राज्यवादी लोग अपने को सभ्यता की पताका का वाहक कहते हैं, तो उन्हें चाहिए कि अधिकृत देश की सैनिक शक्ति सङ्गठित कर सदा के लिए दासता की शृङ्खला में बाँधे रहने का विचार छोड़ दें और सच्चे दिल से उन्हें अपने देश में अपना शासन चलाने का अवसर दें।

अब नीचे कतिपय पंक्तियों में साम्राज्यवाद के भविष्य पर विचार करके हम यह देखने की चेष्टा करेंगे कि संसार के कल्याण के लिए साम्राज्यवाद की आवश्यकता है कि नहीं। संसार के इतिहास में साम्राज्यवाद का भी एक समय था; किन्तु अब समय-परिवर्तन से उसके लिए स्थान नहीं। अब साम्राज्यवाद उत्तरोत्तर पृथ्वी के वक्षस्थल से लोप होता जायगा। आगे अब उसका विकास नहीं हो सकता। एक तो साम्राज्यवादियों की भूमि-लोलुपता की पूर्ति के लिए ऐसे क्षेत्र शेष नहीं हैं, जहाँ अब वे अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकें। दूसरे आज जो-जो देश-प्रदेश तथा उपनिवेश साम्राज्यवादी राष्ट्रों के अधीन हैं, वे धीरे-धीरे स्वतन्त्र हो रहे हैं और उनकी इस स्वतन्त्राभिलाषा को कोई शक्ति अधिक काल तक दबा नहीं सकती। फलतः यह सिद्ध होता है कि ज्यों-ज्यों भारत, कोरिया, फ़िलिपाइन्स, पूर्वीय द्वीप-समूह आदि स्वतन्त्र होते जायँगे, त्यों-त्यों साम्राज्यवादी शक्तियाँ और क्षीण होती जायँगी और एक वह दिन आएगा कि जर्मनी, रूस तथा ऑस्ट्रिया-हङ्गरी आदि देशों की तरह वर्तमान साम्राज्यवादी देश शुद्ध राष्ट्र रह जायँगे और साम्राज्यवाद नष्ट हो जायगा।

बीसवीं शताब्दि ज्यों-ज्यों अग्रसर होती जा रही है, यह प्रतीत होता जा रहा है कि अब समस्त संसार के वास्तविक सुख-शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का सङ्गठन ही आवश्यक है। गत यूरोपीय महायुद्ध ने इस आवश्यकता का अनुभव हमें विशेष रूप से कराया था और तदनुसार राष्ट्र-सङ्घ जैसे वृहद् सङ्गठन की आयोजना भी की गई। यद्यपि इन पंक्तियों का लेखक इस बात से सहमत नहीं है कि वर्तमान रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन अथवा विधान समुचित सफलता प्राप्त कर सकेगा, तथापि इतना कहने को तैयार अवश्य है कि एक निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन ही संसार में शान्ति स्थापित करेगा। यह तभी सम्भव होगा, जब कि पृथ्वी के वक्षस्थल से साम्राज्यवाद का भार सदा के लिए उठ जायगा। अभी तक राष्ट्र-सङ्घ को निःशस्त्रीकरण में तथा अन्य अनेक विषयों में जो सफलता नहीं मिल सकी है, उसका प्रधान कारण यह है कि सङ्घ-सम्मिलित कतिपय राष्ट्र साम्राज्यवादी हैं। शुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का सङ्गठन साम्राज्यवाद के सर्वनाश के पश्चात् राष्ट्रीयता के आधार पर होगा। राष्ट्रीयता के भावों को भी उचित सीमा के अन्दर सीमित रखना होगा, अन्यथा अमर्यादित राष्ट्रीयता शीघ्र ही साम्राज्यवाद का रूप धारण कर लेती है, जैसा कि १८वीं तथा १९वीं शताब्दि के इतिहास में हमने पढ़ा है। शुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शुद्ध राष्ट्रीय जीवन आवश्यक है।
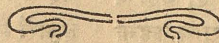
कहानी-कला

[श्री० रामनारायण जी 'यादवेन्दु', बी० ए०]

[यह लेखमाला 'चाँद' के आगामी अङ्कों में क्रमशः छपा करेगी। प्रति मास कहानी-कला के आवश्यक अङ्गों पर विशेष प्रकाश डाला जायगा, जिससे नवीन कहानी लेखकगण विशेष उपकार लाभ करेंगे।—स० 'चाँद']

कहानी क्या है ?

Short story is a ' representation, in a brief, dramatic form, of a turning point in the life of a single character.'

—*James W. Linn.*

आधुनिक विज्ञान-जगत में परिभाषा का मूल्य किसी से अविदित नहीं है। आचार्यों ने श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, भय, सङ्कोच, भाव, विचार, कल्पना आदि मनोभावों की परिभाषा करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार साहित्य के एक प्रमुख अङ्ग—कहानी की परिभाषा भी साहित्याचार्यों ने की है। एक बार शिकागो-विश्वविद्यालय में कहानी पर व्याख्यान देते हुए श्री० जेम्स डबल्यू० लिन ने कहा था—"कहानी किसी एक पात्र के जीवन की वह महत्वपूर्ण घटना है, जिसकी संक्षेप में, नाटकीय ढङ्ग से अभिव्यञ्जना की गई हो।" इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर इसमें हमें कहानी के सभी मुख्य अङ्ग मिल जाते हैं। कहानी में कथानक का स्थान सर्वोपरि है। परन्तु यह सत्य है कि आजकल, अङ्गरेज़ी भाषा में, ऐसी कहानियाँ भी लिखी जाती हैं, जिनमें कथावस्तु का आंशिक या सर्वथा अभाव होता है। ऐसी कहानियाँ अपवाद कही जा सकती हैं। कहानी की उपर्युक्त परिभाषा में शब्दों द्वारा कथावस्तु की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् कहानी में पात्र के चरित्र-चित्रण का स्थान आता है। चरित्र-चित्रण की व्याख्या करने का यहाँ प्रसङ्ग नहीं है। अतः इसकी विवेचना अन्यत्र यथास्थान की जायगी। परन्तु हम यह लिखने का लोभ सम्बरण नहीं कर सकते कि आधुनिक कहानी में—चाहे वह किसी भाषा की क्यों न हो—चरित्र-चित्रण को जो महत्व प्रदान किया गया है, उसे मुक्तकण्ठ से सभी साहित्यिकों ने स्वीकार किया है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिए उनका कथोपकथन ही विशेष रूप से मार्ग-दर्शक का कार्य करता है। अतः कहानी में पात्र के जीवन की महत्वशाली घटना और पात्र के चरित्र-चित्रण की प्रधानता के साथ कथोपकथन का समावेश भी स्वाभाविक हो जाता है। यदि कहानी में पात्रों की सृष्टि की जाय, परन्तु भाषण का अधिकार उन्हें न दिया जाय, तो पात्रों का अस्तित्व व्यर्थ सा होगा। इसलिए कहानी में मूक पात्र के लिए स्थान नहीं होता।

उपरोक्त परिभाषा में प्रयुक्त शब्द 'सूक्ष्मता और नाटकीय ढङ्ग' कहानी के प्रकार पर विशेष प्रकाश डालते हैं। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह पद कहानी के व्यक्तित्व को हमारे सामने रखता है। कहानी में सूक्ष्मता और नाटकीय ढङ्ग का होना अनिवार्य है। यदि सूक्ष्मता की अवहेलना करके उसकी रचना की जाय, तो ऐसा करना कहानी की मर्यादा का उल्लङ्घन होगा और नाटकीय ढङ्ग का अभाव कहानी की शैली का।

अनेक कला से अनभिज्ञ पुरुषों की यह धारणा है कि कहानी और उपन्यास में कोई मौलिक भेद नहीं है। यह मान्य है कि कहानी और उपन्यास में अनेक बातों में समता है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह समता उसके भेद का परिहार कर उसमें एकरूपता का भाव आरोपित करने की क्षमता रखती है। कहानी-कला के विवेचन की दृष्टि से उपन्यास और कहानी के सम्बन्ध पर विचार करना तथा कहानी की स्वतन्त्र सत्ता प्रतिष्ठित करना अत्यावश्यक है। अतः हम विशद रूप से इस प्रसङ्ग पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

कहानी और उपन्यास में भेद

जैसा कि कहानी की परिभाषा में बतलाया जा चुका है, कहानी में एक ही पात्र के जीवन की महत्वपूर्ण घटना की अभिव्यक्ति होती है। उसमें, उपन्यास की भाँति, किसी विशेष पात्र के जीवन तथा पात्रों के जीवनों की विशद विवेचना के लिए स्थान नहीं। औपन्यासिक किसी जीवन का सम्पूर्ण और सर्वाङ्ग चित्रण करने का

प्रयास करता है; परन्तु कथात्मक कहानी-लेखक 'जीवन की विशद व्याख्या' में अपने लक्ष्य की सफलता नहीं पाता। वह पात्र के विशद जीवन में से किसी एक अति महत्वशाली घटना को चुन लेता है।

वास्तविकतावादी उपन्यास सर्वथा सम्पूर्ण ही होता है; परन्तु कहानी में सम्पूर्णता के स्थान पर लाक्षणिकता का प्रयोग ही वाञ्छनीय है। इसलिए कहानी और उपन्यास का सबसे प्रमुख भेद घटना-निर्वाचन, उपेक्षा एवं गोपनीयता पर निर्भर है। क्योंकि कहानी, उपन्यास की भाँति जीवन का सम्पूर्ण चित्र नहीं है। उसका लक्ष्य तो ओजपूर्ण, प्रभावपूर्ण और लक्षणात्मक ढङ्ग से जीवन के किसी विशेष अङ्ग की आदर्शात्मक व्याख्या करना है।

जब यह निर्णय हो चुका कि कहानी का लक्ष्य उपन्यास की अपेक्षा अधिक मर्यादित और विशेषता सम्पन्न है, तब कहानी के कथानक में सरलता और चातुर्य का समावेश आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। क्योंकि कहानी में जटिल कथानकों (Plots) का प्रयोग अवाञ्छनीय ही नहीं, अपितु उसके सौन्दर्य को नष्ट करने वाला है। चरित्र-चित्रण के लिए कहानी का कार्य (Action) उपन्यास की अपेक्षा अधिक अविराम, सोद्देश्य और सामञ्जस्य-संयुक्त होना चाहिए। समय, स्थान और दृष्टिकोण में सम्यक् सिद्धान्त का आदि से अन्त तक पालन करना चाहिए। पात्रों की संख्या न्यून हो, परन्तु वे असाधारण परिस्थिति में हमारे सामने आवें।

उपन्यास के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसके आधार में किसी मौलिक भाव का वर्त्तमान होना अनिवार्य नहीं है। परन्तु कहानी के लिए मौलिक भाव की अत्यन्त आवश्यकता है। क्योंकि आधुनिक कहानी का लक्ष्य केवल यही नहीं है कि उसके द्वारा इतिवृत रूप में क्रमशः घटनाओं का वर्णन हो, अपितु उसका प्रधान ध्येय यही है कि वह जीवन के एक अङ्ग का ज्वलन्त चित्र इस प्रकार चित्रित करे कि वह पूर्व-निश्चित भाव या संस्कार की अभिव्यक्ति मात्र हो।

संक्षेप में, कहानी की सामग्री केवल एक स्थिति है। आधुनिक कहानी, इस विषय में, उपन्यास और सरल वर्णन, या कथा एवं उपाख्यान, जिससे इसका प्रादुर्भाव हुआ है, से सर्वथा भिन्न है। उपन्यास का सम्बन्ध जीवन-चरित्रों से है और सरल वर्णन एवं उपाख्यान का घटनाओं के रोचक तारतम्य से। परन्तु कहानी, जिसे अङ्गरेज़ी भाषा में Short Story कहते हैं, जीवन-इतिवृतों को जिस ढङ्ग से हमारे सामने प्रस्तुत करती है, वह उपाख्यान और उपन्यास के ढङ्ग से सर्वथा भिन्न है। कहानी में पात्रों के जीवन को हम तीन रूपों में पाते हैं। एक पूर्व-चिन्तन द्वारा, दूसरे भावी निर्देश द्वारा और तीसरे प्रमुख सङ्कट के प्रस्तुत द्वारा। कहानी में घटनाओं के तारतम्य का प्रयोग एक निश्चित उद्देश्य के द्वारा होता है, जिससे एक स्थिति के प्रभाव की अभिव्यक्ति हो।

कहानी और उपन्यास के जिस महत्वपूर्ण भेद का ब्रेण्डर मेथ्यू (Brander Matthews) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कहानी-दर्शन' (Philosophy of the Short Story) में प्रतिपादन किया है, वह है प्रभाव की एकता। प्रधान पात्रों के जीवन की केवल एक ही स्थिति आधारभूत रचना की एकता प्रदान करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सामान्यतया कहानी का कथानक इतना सरल होता है कि उसमें विभाग और उप-विभागों की आवश्यकता नहीं होती। प्रधान और गौण पात्रों का, उपन्यास की भाँति, समुदायों में मिलना बहुत कम सम्भव है। कहानी में आधिकारिक वस्तु तो होती है, परन्तु प्रासङ्गिक वस्तु का अभाव रहता है।

यहाँ तक हमने, उपन्यास और कहानी के विषय में विचार प्रस्तुत कर उपन्यास और कहानी के मौलिक भेद को प्रतिष्ठित किया है और कहानी को एक स्वतन्त्र अङ्ग सिद्ध करने का प्रयास किया है। अब हम कहानी और नाटक के सम्बन्ध पर विचार प्रकट करना चाहते हैं।

कहानी और नाटक

यद्यपि कहानी और नाटक में विषय की दृष्टि से सीधा सम्बन्ध नहीं है, तथापि यह मानना पड़ेगा कि क्षेत्र और शैली के विचार से कहानी और नाटक में घनिष्ठ सम्पर्क है। केवल रोचक घटनाओं के तारतम्य की अपेक्षा स्थिति (Situation) पर ज़ोर देना, पात्रों के जीवन में सङ्कट प्रस्तुत करना, और प्रभावात्मक रीतियों का निश्चित और निर्दिष्ट प्रयोग इत्यादि कहानी-कला के ऐसे अङ्ग हैं, जिन्हें अधिकांश में नाट्य-कला के अध्ययन द्वारा ही कहानी में विकास मिला है। जिस प्रकार नाटककार स्थानाभाव

के कारण अपनी स्थिति को बड़े प्रभावोत्पादक ढङ्ग से बहुत थोड़ी शब्दावली में अभिव्यक्त करता है और अपने प्रधान पात्रों को एक दूसरे के सम्पर्क में बड़े महत्वशाली बना देता है, उसी प्रकार कहानी-लेखक का क्षेत्र बड़ा परिमित है ; थोड़े से उपकरणों को लेकर वह अपनी कला का प्रदर्शन करने में प्रवृत्त होता है। कहानीकार, बिना किसी प्रकार की भूमिका या प्रस्तावना के, शीघ्र अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यक्षेत्र में अग्रसर हो जाता है, और उस तीव्रतम स्थिति (Climax) के लिए पाठक को तत्पर करता है, जो कहानी-कला में एक प्रधान वस्तु मानी गई है।

कतिपय व्यक्तियों और घटनाओं का पार्थक्य, कथोपकथन की कलापूर्ण नाटकात्मक रचना, केवल एक ही समस्या पर मनोयोग, हृदय का मर्मस्पर्शी चित्रण इत्यादि विशेष रूप से नाटकीय गुण हैं। संक्षेप में, कहानी को, कविता, उपन्यास और नाटक के समान ललित-कला का उत्कृष्ट रूप प्रदान करने में नाटक का कार्य स्तुत्य है। नाटकीय रूप कहानी का एक दोष माना जा सकता है। परन्तु स्थिति को नाटकीय ढङ्ग से अवलोकन और उसके प्रभाव को प्रबल करने के निमित्त अनेक नाटकीय रीतियों का प्रयोग न केवल हितकर ही है, अपितु आधुनिक कहानी के लिए एक अनिवार्य उपकरण है।

कहानी की विशेषता

यह तो प्रमाणित है कि साहित्य के एक मनोरञ्जक अङ्ग—कहानी—का प्रादुर्भाव स्वतन्त्र रीति से नहीं हुआ। उसने अपना स्वरूप निबन्ध, उपन्यास, उपाख्यान, एवं नाटक से किसी न किसी रूप में निर्मित किया है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि साहित्य-संसार में उसकी भी एक स्वतन्त्र सत्ता है। उपन्यास और नाटक ने कहानी को अपने स्वरूप-निर्माण में कहाँ तक उपकरण प्रदान किए हैं, इसका वर्णन किया जा चुका है। पाश्चात्य साहित्य में कल्पनात्मक और वैयक्तिक पद्धति पर लिखे हुए निबन्धों के द्वारा ही उपाख्यान का जन्म हुआ और भविष्य में उन्नति करते-करते इसी ने कलापूर्ण कहानी का रूप धारण कर लिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वर्तमान युग में कहानी ने एक मनोरम चमत्कारपूर्ण कला का रूप ग्रहण किया है। वास्तव में समस्त ज्ञान-विज्ञान और समस्त जीवन उसका क्षेत्र बन गया है। विश्व का कोई व्यापार और जीवन का कोई ऐसा अङ्ग नहीं है, जिसमें एक उच्चकोटि की कलापूर्ण कहानी के लिए उपकरण न मिल सकें। कहानी-कला की इस अद्वितीय सफलता का सम्पूर्ण श्रेय यूरोप और अमेरिका के कलाविदों को है। लोकमत की ओर से इस कला का अभिनन्दन उसकी श्रेष्ठता, हृदयस्पर्शिता और मनोरञ्जकता का ज्वलन्त प्रमाण है। पर हिन्दी-साहित्य में इस कला के बहाने जिस अनिष्ट और अशिव विचार-धारा का प्रसार किया जा रहा है—इसका अनभिज्ञ, कलाशून्य लेखकों के हाथ में जो दुरुपयोग हो रहा है—वह खेदजनक ही नहीं, प्रत्युत साहित्य के लिए नाशकारी है ! यह विषय प्रसङ्ग के अन्तर्गत नहीं है; अतः यहाँ केवल निर्देश ही किया गया है। इस सम्बन्ध में आगामी किसी प्रकरण में विचार किया जायगा। यहाँ कहानी की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालना ही अभिप्रेत है।

कहानी एक क्षण के लिए हमारे ध्यान को आकर्षित करने की चेष्टा करती है, जिससे हम उस 'स्थिति' पर त्वरित और तीव्र दृष्टि डाल सकें, जो किसी भी क्षण विलीन हो सकती है। उसके द्वारा हमें एक ऐसे पात्र से परिचय मिलता है, जिसकी विचित्र प्रवृत्तियाँ हमारे हृदय पर एक स्थायी और गम्भीर छाप लगा जाती हैं। कहानी समस्त जीवन का एक लघु संस्करण मात्र नहीं है; उसके द्वारा हमारे लिए न समय और शक्ति की बचत होती है और न स्थान की। हाँ, उसके द्वारा जीवन हमारे लिए तीव्रतम बन जाता है। क्योंकि उपन्यास और कल्पनात्मक कथा की अपेक्षा वह हमारे हृदय पर गहरा प्रभाव डालती है।

कहानी की गति एक ही दिशा में रहती है। उसमें घुमाव-फेर और दुर्गम पथ अपेक्षित नहीं। वह सीधे से सीधे मार्ग द्वारा, यथासम्भव, अल्प समय में, अपने ध्येय की प्राप्ति करने में अपनी सफलता समझती है। उसमें विस्तार की भावना बिल्कुल नहीं होती, क्योंकि उसमें शब्दों के व्यर्थ प्रयोग के लिए गुञ्जाइश नहीं।

साहित्यिक कलाविद् घटनाओं का आविष्कार करता है, परन्तु वह उनको अतिशयोक्ति रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत नहीं करता। जीवन की वास्तविकता के साथ

कहानी का वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा कि एक उपन्यास या नाटक का। यदि कहानी के अवलोकन के बाद पाठक को उसकी सत्यता में सन्देह रहे तो उसके कलापूर्ण होने पर भी वह किसी काम की नहीं। एकता और प्रभाव की उपलब्धि में सत्यता का त्याग उचित नहीं। परन्तु कहानी की विशेषता तो इसी में है कि वह मानव-जीवन में वास्तविकता और वैचित्र्य (Realism and Romance) का सामञ्जस्य प्रतिष्ठित करती है।

कल्पना-तत्व का जितना प्रयोग कहानी में किया जाता है, उतना शायद उपन्यास में नहीं होता।

एकता और सम्भावना कला की गोपनीयता के बिना असम्भव है। कहानी में जटिलता और विशद कथावस्तु का प्रयोग मनोयोग के स्थान में ध्यान को बाँट देता है। इसी कारण मन को भावात्मक या कल्पनात्मक सङ्कट के लिए प्रस्तुत रहने को अवकाश नहीं मिलता।

कहानी का गाम्भीर्य गुण लेखक की उस भद्र-भावना में है, जिसके द्वारा वह सूक्ष्म विवरणों को त्यागने में सन्नद्ध रहता है। लेखक का कार्य तो केवल निर्देश कर देना है, पाठक-हृदय में एक प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न कर देना है। निष्कर्ष यह है कि कहानी में सम्पूर्णता नहीं होती; उसमें एक ऐसी शक्ति होती है, जिसके प्रभाव से पाठक जिज्ञासा की डोरी पकड़े निश्चित ध्येय तक पहुँचने का प्रयास करता है। संक्षेप में, यही कहानी का स्वरूप है।

卐 卐 卐

ओ निशि-बाल !

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

क्षितिज-माला पहिने चुपचाप
चूमता था वसुधा को व्योम,
झाँकता था झुक झीने श्वेत—
बादलों के पीछे से सोम।

❀

सपत्नी-धरणी का यह देख
व्योम के साथ प्रमोद विहार,
वहीं पर तूने होकर म्लान
तोड़ कर फेंका मुक्ताहार !

❀

कहाँ गाती थी तू चुपचाप
नींद का आलस-गूँथा गीत ?
कहाँ कम्पित छोड़ा उच्छ्वास
वायु का बन-बन कर भयभीत ?

जहाँ तम-पङ्क असंख्य पसार
विहग-तारक सजते सुकुमार,
उड़ा करते थे सारी रात
न जाते पर नभ के उस पार।

❀

वहीं पर दिया प्रेम से भेज
ओस के साथ प्रभात-कुमार,
चूम कर, जतला अपना प्यार
गोद से समुद सहास उतार।

❀

प्यार करता वसुधा से व्योम
सूर्य की किरणें उस पर डाल,
कभी उसने क्या ऐसा प्रेम
किया है तुझसे ओ निशि-बाल !

दिल की आग

[श्री० "पागल"]

[प्रस्तुत लेख "दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह" नामक पुस्तक का एक स्वतन्त्र अध्याय है, जिसके कुछ हिस्से 'चाँद' में धारावाही रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। हमें आशा है, पाठक इसे बहुत पसन्द करेंगे। पुस्तक इस समय प्रेस में है और सम्भवतः नवम्बर के अन्त तक प्रकाशित हो जायगी।
—स० 'चाँद']

क

यह बालिका थी, वह युवक। यह भोली थी, वह भोलेपन का पुजारी। यह सौन्दर्य की पुतली थी, वह सौन्दर्योपासक। यह चित्र-स्वरूप थी और वह चित्र बनाने वाला। यह उसकी चित्रकारी पर मुग्ध थी और वह इसकी मोहनी छवि पर लट्टू था। इसकी रोचकता उसके चित्रों में थी और उसका हुलास इसकी सजीव मूर्ति में था। दोनों की रुचि एक समान थी।

इसने उसे अपनी रोचकता का विधाता पाया। उसे इसमें अपनी कला का आदर्श मिला। चित्रों की लालसा ने इसके हृदय को उनके रचयिता की ओर झुकाया, तो उसे उसकी कला की प्यास ने अपने आदर्श पर सौ जान से निछावर कर दिया। यों दोनों दिल, दिल ही दिल आपस में अटल रूप से मिल गए और उनके मिलाप पर दोनों ने चुपके से मिल कर एक चुटकी सेंदुर के साथ एक पवित्र चुम्बन से इस लोक से उस लोक तक के लिए एक गहरी छाप लगा दी।

[अरे! यह तो अलिन्द ही की सी कहानी जान पड़ी। अब तो मेरी उत्सुकता ऐसी भड़की कि मैंने इसे ध्यान से पढ़ना शुरू किया।]

प्रेमी के प्रेम-चुम्बन ने बालिका में एक नवीन जीवन का सञ्चार कर दिया। नवयौवन की छीटें पड़ीं। प्रतिभा चमकी। सौन्दर्य लहलहा उठा। लज्जा और सङ्कोच रखवाली के लिए फट पड़े। अब बालिका को चित्रकार के सामने जाते कलेजा पिछड़ने लगा। वह घबड़ा कर उससे भागने लगी।

फिर भी बालिका बालिका थी। अभी उसके खेलने के दिन थे। वह प्रेम का अस्तित्व, प्रेम का मूल्य, प्रेम का महत्व, प्रेम का परिणाम कुछ समझ न सकी। दिल की लगी को बस लड़कपन की एक दिल्लगी जान कर रह गई। हृदय की कसक और छटपटाहट को बाल्य-क्रीड़ाओं में फुसलाने लगी। फिर भी उसे शान्ति न मिली। वह लुक-छिप कर दूर से चित्रकार से मिलने के लिए विवश हो जाती थी।

चित्रकार सौन्दर्योपासक था और था कलाविद। उसकी कला का आधार सौन्दर्य था। वह सुन्दरता और प्रेम की घनिष्ठता भली-भाँति जानता था। प्रेम की महिमा समझता था। उसने अपनी कला के आदर्श में सौन्दर्य का आदर्श देखा और सौन्दर्य के आदर्श में अपने प्रेम का आदर्श पाया। उसकी सारी रोचकताएँ उस बालिका ही में एकत्रित हो गईं। बस वह उसी के ध्यान में सदा के लिए लीन हो गया और उसकी दिव्यमूर्ति को कृपण के सुवर्ण की भाँति अपने हृदयपट में दृढ़ रूप से छिपाए जवानी के शिखर पर से उतरने लगा।

परन्तु बालिका ने अभी नवयौवन की सीढ़ियों पर क़दम ही रक्खा था। इसकी जवानी चढ़ाव पर थी, जिसमें प्रेम के अतिरिक्त नित नई उमङ्गें, नई कामनाएँ तथा अभिलाषाएँ आ-आकर दिल को गुदगुदाती हैं। प्रेम के सङ्कोच तथा पीड़ा से अकुला कर बालिका भी दिल बहलाने के लिए नई-नई रोचकताएँ ढूँढ़ने लगी, जिनकी उसे कमी न थी। गुड़ के साथ चींटियाँ भी आ जाती हैं। इसी तरह इसके नवयौवन के आगमन के साथ इसकी ख़ुशामद में रहने के लिए उसके यहाँ

युवक-सम्बन्धियों का भी आना-जाना बढ़ा। उनमें सबसे अधिक इसके समय को एक डिप्टी साहब ने मोटर, ग्रामोफ़ोन, हारमोनियम इत्यादि का इसे चसका दिला कर अपना लिया। यों अब यह ख़ुशामद, मनोविनोद तथा प्यार की नज़रों में पलने लगी। और इसे अपने हृदय तथा चित्रकार की सुधि लेने का अवसर नहीं मिलता था। चित्रकार का दिल जलने लगा।

[अब तो मेरे कान और खड़े हुए। यह कहानी अलिन्द की सी नहीं, बल्कि स्वयं उसी की निकली। मगर उसके भेद का जानने वाला और उनको इस सफ़ाई से लिखने वाला संसार में मेरे सिवाय और दूसरा कौन हो सकता है, यही सोचता हुआ अब मैं आगे पढ़ने लगा।]

परन्तु इन ऊपरी दिलबहलावों से बालिका के दिल की आग बुझ न सकी। वह कण्डे की अग्नि की भाँति राख के भीतर सुलगती ही रही। इसे किसी की सङ्गत में वह हुलास प्राप्त नहीं होता था, जो चित्रकार के साक्षात में था। परन्तु यदि बालिका को सङ्कोच पास फटकने नहीं देता था, तो उधर जलन ने चित्रकार के पैरों में बेड़ियाँ डाल दीं। इसी से दोनों के व्यवहारों में मुर्दनी छा गई। यदि कभी संयोगवश क्षणिक साक्षात होता भी था, तो उसमें अब वह हुलास न था। वह तपाक और वह मिठास न थी। बल्कि एक पीड़ा थी और दृष्टि में दोनों ओर अविश्वास था, जिसके कारण हृदय-कमल सदा की भाँति एक दूसरे के सामने खिल उठने के बदले और भी सङ्कुचित हो जाते थे। परन्तु दोनों को अपनी-अपनी दृष्टि और त्रुटि दिखाई नहीं पड़ी। दोनों ने दूसरे ही के बदले हुए व्यवहार और बदली हुई निगाहें देखीं। चित्रकार जल कर भागा। बालिका चिढ़ कर और दूर हटी।

फिर भी दिल की पीड़ा दिल से छिपी न रही। व्यवहार जितना ही इन दोनों को दूर हटाता था, उतना ही दोनों हृदय अधीर होकर और निकट खिंचते आते थे और अपनी-अपनी वेदना को चिढ़ और जलन में दिखाते थे।

परन्तु दोनों की दृष्टि व्यवहार ही पर अटक कर रह गई। दिल तक पहुँच न सकी। कोई भी यह रहस्य समझ न सका कि बालिका का हृदय जिसकी ओर मुग्ध होकर जितना ही लपकता है, उसका स्त्री-स्वभाव इसे उसके इष्टदेव से उतना ही दूर पिछाड़ता रहता है, ताकि ललचाया हुआ पुरुष-हृदय और भी ललच कर उसके पीछे वेग से झपट पड़े। क्योंकि स्त्री वश में करने के लिए बनी है और इसीलिए वह पुरुष-हृदय में पान में सुपारी की तरह प्रेम के अतिरिक्त साहस और पराक्रम भी चाहती है। यदि उसका हृदय, हृदय पर मुग्ध होता है तो उसका स्वभाव शासन के सबल हाथ के ही आगे शीश नवाता है। इसीसे बालिका जब चित्रकार के पास आने में हिचकती या उससे भागती थी, तो उसका स्त्री-स्वभाव यही चाहता था कि वह व्यग्र होकर मुझे रोक ले। मुझ पर अपना अधिकार जमावे और अपने पास से अब अन्यत्र कहीं जाने न दे। परन्तु चित्रकार में इतना साहस कहाँ था? उसका साहस या पुरुषार्थ तो प्रेम की अधिकता में विलीन हो चुका था। अतएव हृदय, प्रेम-बन्धन में बँध कर भी स्वभाव की स्वतन्त्रता के कारण बालिका को उस समय अपनी वास्तविक सुधि दिलाने में असमर्थ ही रहा।

[कहानी के आरम्भ ही से स्त्री-भाव की प्रधानता तथा स्त्री-स्वभाव की इतनी बारीक आलोचना देख कर मैं और अचरज में पड़ गया। क्योंकि यह करामात सदैव स्त्री की लेखनी दिखाती है। यद्यपि लेखक ने कहानी में कहीं भी अपना नाम नहीं लिखा था, तथापि मेरा साहित्यिक अनुभव अब पुकार कर यह कहने लगा कि अवश्य ही यह किसी स्त्री की लिखी हुई है। एकाएक मेरा ख़्याल तारा पर पहुँचा। उसे अलिन्द और सरोज का हाल बहुत कुछ मालूम था। इसलिए विश्वास हुआ कि हो न हो यह उसीने सरोज के चरित्र तथा भावों पर, जिन्हें अलिन्द समझ कर भी समझ नहीं पाता था और जिन्हें पुरुष होने के नाते न मैं ही ठीक-ठीक अङ्कित कर सकता था, वास्तविक प्रकाश डालने के अभिप्राय से लिखी है। अन्यथा अन्य किसी को अपना नाम छिपा कर अपनी लिखावट बिगाड़ कर इसे लिखने और इसे इतने गुप्त रूप से भेजने का क्या प्रयोजन हो सकता था? इसलिए अब मैं तारा को प्रत्येक शब्द में ढूँढ़ता हुआ और बेताबी से पढ़ने लगा।]

ख

बालिका का विवाह एक नवयुवक राजा से लगा। नई कल्पनाएँ अपनी नई-नई चमकीली आशाएँ लिए उसका मन लुभाने के लिए फट पड़ीं, जिनके कोलाहल

में उसे अपने हृदय की चिल्लाहट और दिल-जले की आहें सुनाई न पड़ सकीं और ब्याह हो गया।

नई परिस्थिति ने उसे चकाचौंध कर दिया। अपने पति की दूसरी स्त्री होने का आसन मिला, तथापि रानी का पद बड़ा रुचिकर था। सौत की जलन के अनुभव के लिए अभी उसके हृदय में पति-प्रेम का अङ्कुर नहीं उगा था। सौत की उपस्थिति उसे कुछ भी न खली।

परन्तु बालिका के भाग्य में विवाहिता होकर भी कुमारी ही रहना बदा था। पण्डितों ने पति-पत्नी-मिलन की साइत ही नहीं बनाई और राजा साहब को संसार-भ्रमण के लिए निकल जाना पड़ा। ऐश्वर्य के वैभव और कौतुक में इसकी भी उसे कुछ परवाह न हुई। फिर भी उसका दिल कभी-कभी ऐसा सूना रहने लगा, जैसे उसका कुछ खो गया है।

वह अपनी माँ के घर आई। माँ-बाप से मिली। परन्तु इसकी बेकली न मिटी। सखी-सहेलियों से भेंट की, फिर भी हृदय का अभाव दूर न हुआ। वह चित्रकार के यहाँ गई। उसको कनखियों से देखा, तब इसकी आँखें खुलीं और उसे अपने खोए हुए धन का पता चला। अपने हृदय की प्यास की ख़बर हुई। चित्रकार के प्रेम की गहराई में अपने प्रेम को देखा। उसकी गुरुता और महत्व समझा। जिसे उसने पहले खेल समझा था, वह जान का रोग निकला। चित्रकार का सामना कर न सकी। अपराधिनी की भाँति वहाँ से भागी।

ससुराल आकर ऐश्वर्य के आनन्द में अपने प्रेम को भुला देना चाहा। परन्तु अपने दिल की फटकारों से सहम गई। क्योंकि अब वह बालिका नहीं, पूर्ण युवती हो चुकी थी। चिन्ताओं ने उसे घेर लिया।

राजा साहब वर्षों के बाद घर आए। उनके चरणों पर कर्तव्यवश उसने अपना हृदय न्योछावर करना चाहा। परन्तु पति जी ने इसमें इसे कुछ सहायता न दी। नित नई वेश्याओं की रङ्गरेलियों में पड़ कर वह इसकी सुधि लेने का अवकाश ही नहीं पाते थे। इसके व्यथित हृदय में एक नई आँच लगी और यह जल-जल कर दिन काटने लगी।

राजा-महाराजों का जीवन देखने में चाहे कितना ही ऐश्वर्यपूर्ण हो, तथापि बन्दीजन की भाँति अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रता के लिए सदा तरसा ही करते हैं। वे बेचारे साधारण लोगों के समान स्वच्छन्दतापूर्वक आना-जाना क्या, कहीं उठ-बैठ भी नहीं सकते। किसी से मिल-जुल नहीं सकते। यहाँ तक कि निजी व्यक्तियों से भी मिलने में पूरी स्वतन्त्रता नहीं होती। यह भेद युवती ने अब जाना और इसी के साथ यह भी ताड़ा कि पति जी नाम-मात्र के राजा हैं। असल राजा उनके मैनेजर हैं, जो उन्हें अपनी उँगलियों पर कठपुतली की भाँति नचा रहे हैं और मैनेजर ही का हाथ उसके पति-मिलन में बाधा डाल रहा है। कुछ दिनों राजा के कोई संक्रामक गुप्त रोग के कारण वह उनके निकट नहीं पहुँचने पाई। बाद को पति जी वेश्याओं के फन्दों में ऐसे फँसे कि उनकी सेवकाई से वह सदा वञ्चित रही। जो युवती मीठी निगाहों में पली थी, जो गहरे से गहरे प्रेम का सम्मान पा चुकी थी, वह यह अनादर भला कैसे सहन कर सकती थी? कुढ़ते-कुढ़ते वह अपना स्वास्थ्य खो बैठी। ऐसे सङ्कट की घड़ी में चित्रकार ही की याद उसके आँसू पोंछती थी। परन्तु आँसू पोंछते-पोंछते उसे और रुला देती थी।

मैनेजर भीतर-बाहर सर्वशक्तिमान् होने के कारण इसके पास काम-काज के बहाने आने लगे। इसकी तीक्ष्ण बुद्धि परख कर गहन विषय पर सलाह भी लेने लगे। राजकाज में अपनी यों उपयोगिता देख कर इसे कुछ सन्तोष मिला और राजा के निकम्मेपन की पूर्ति इसने अपनी योग्यता से करना चाहा। मैनेजर दिन-दिन इसका लोहा मानने तथा इसका सम्मान करने लगे। इसकी प्रतिष्ठा बढ़ी और बढ़ी इसी के साथ इसकी बदनामी भी। सौत जल मरी। उसने बदनामी का और डङ्का पीट दिया। लोगों की निगाहों में यह गिर गई।

अब इसका भी माथा ठनका और इसने मैनेजर के व्यवहारों पर अपनी मर्मभेदी दृष्टि डाली। उनकी नज़रों में अपने रूप की प्यास देखी और व्यवहारों में उसी के बुझाने का आग्रह पाया। युवती पहले घबराई, परन्तु बाद को दिल में हँसी। ऐसे शक्तिशाली हाथ को अपनी चुटकियों से मसल देने का साधन मानो आप से आप हो गया। मैनेजर पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य का शासन स्वयं अपने हाथ में लेने तथा पति जी को मुट्ठी में करने की कामना इसके हृदय में जाग्रत हुई। इसलिए मैनेजर की लालसा बढ़ने दी। उसमें कुछ भी आपत्ति

नहीं की। ऐसी तृष्णा की दृष्टि वह बहुत देख चुकी थी। इसकी उसे कुछ परवाह न थी।

परन्तु इसी में उसने भूल की। उसने यह नहीं सोचा कि मैनेजर साहब कोई साधारण व्यक्ति नहीं, वरन् ऐसे सर्वशक्तिमान हैं कि राजा यद्यपि अन्नदाता जी कहलाते थे, तथापि मैनेजर ही को लोग असल मालिक समझ कर 'सरकार साहब' कहते थे। इसका भरण-पोषण तक उन्हीं पर निर्भर था। उनकी शक्ति के आगे इसका एक भी कर्तव्य नहीं चल सकता था। इस भूल ने इसकी परिस्थिति बड़ी भयङ्कर कर दी। दिनोंदिन उनको अपने वश में करने के बदले स्वयं उसी के उनके चङ्गुल में पड़ने की सम्भावना होने लगी। उस पर प्रेम की वेदना, सौत का काँटा, पति की उपेक्षा, आशाओं का नाश, बदनामी का आघात, हाय! किसी तरफ़ भी उसे चैन दिखाई न पड़ा। वह ऊब कर माँ के घर भागी।

चिन्ताओं ने उसके लावण्य को चूस लिया था। अतएव वह मीठी निगाहें, जिनके बीच में वह पली थी और जिनसे उसे इस सङ्कट में कुछ सन्तोष पाने की आशा थी, सब खट्टी पड़ कर इसके हृदय पर और चोट पहुँचा बैठीं। वह तिलमिला कर इस बार स्वयं ही चित्रकार के पास दौड़ी। उसे अपने व्रत और तपस्या में वैसा ही अटल पाया। वह औरों की भाँति रूप-लोलुप न था। वह अब भी इसे अपनी ही समझता था और इसी की याद तथा प्रतीक्षा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। इसका कलेजा उमड़ आया। वेदना में सङ्कोच का बन्धन कुछ ढीला पड़ गया और वह अब अपनी व्यथा, जो किसी से भी नहीं कह पाती थी, उससे छिपा न सकी। केवल नहीं बताया तो अपने प्रेम का हाल और पति की उपेक्षा। चित्रकार मर मिटा, एकदम पागल हो गया।

[अब तो मुझे तारा के इस कहानी की लेखिका होने के सम्बन्ध में कुछ भी शक न रहा। और साथ ही उसके ज्ञान, सूझ और योग्यता पर मैं हज़ार जान से फड़क उठा। क्योंकि जितना सच्चा अनुमान उसने इसमें सरोज के वास्तविक भावों का किया था, उतना इन घटनाओं को जानते हुए भी हम लोग क्या, बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक भी नहीं कर सकते थे। सरोज की प्रकृति संसार के लिए एक समस्या ही बनी रह जाती। उस समय मुझे तारा पर कितना अभिमान हुआ, मैं कह नहीं सकता, अब मैं गर्व से पढ़ने लगा।]

ग

युवती पराधीन थी। वह तुरन्त ही ससुराल बुला ली गई। वह यथाशक्ति अपनी यन्त्रणाओं से लड़ती रही। परन्तु जब देखा कि अब अपनी रक्षा नहीं कर सकती और उसका भविष्य सब प्रकार से अन्धकारमय हो गया, तब वह जीवन से ऐसी ऊब उठी कि उसे अन्त कर देना ही निश्चय किया। ऐसी कुघड़ी में चित्रकार की मूर्ति उसके नेत्रों के सामने खड़ी हो गई। हृदय में एक टीस उठी। आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। और वह क्षमा-क्षमा चिल्लाती हुई, उस कल्पित मूर्ति के आगे गिर पड़ी।

इस भयङ्कर सङ्कल्प में पड़ कर वह अपना-पराया सब भूल गई। धर्म, समाज और कर्तव्य तक भूल गई। यदि न भूल सकी तो केवल चित्रकार की याद। वही इसे इस समय, जो सामाजिक ऐनक से सदा पराया दिखाई पड़ता था, लाख अपनों में अपना, वरन् अपनी ही आत्मा प्रतीत हुआ। रो-रोकर यह उसे पत्र लिखने बैठ गई। शोक और विह्वलता में अपने हृदय पर वश न रख सकी। सङ्कोच का पर्दा फाड़ कर अपना सब दुखड़ा उगल बैठी। यहाँ तक लिख मारा कि आह! हृदय में सदा प्रेम रख कर भी प्रेम का सत्कार न कर सकी। परन्तु अब शरीर का बन्धन तोड़ कर ईश्वर चाहेंगे तो मेरी आत्मा इस पत्र के पहुँचने के पहले ही आपकी सेवा में पहुँचेगी।

[ओहो! यह तो वही पत्र था, जो अलिन्द की डायरी से मालूम हुआ था कि उसे यहाँ से भागते समय मिला था और जिसे वह पूरा पढ़ भी न सका था कि वह पुल के नीचे दरिया में गिर पड़ा। ऐसी सूरत में उसकी बातें सिवाय सरोज के अन्य कोई बता नहीं सकता था। तारा को कैसे मालूम हुईं, इसने मुझे अब अजीब चक्कर में डाल दिया। शायद इसका रहस्य आगे खुले, यह विचार कर मैं फिर पढ़ने लगा।]

युवती आत्म-हत्या की युक्तियाँ सोचती हुई सो गई। एकाएक अपने बदन पर कुछ बोझ पड़ते ही चौंक पड़ी। देखा, उसकी सौत छुरा ताने उसके कलेजे पर चढ़ी बैठी है। पहले घबराई। फिर आँखें बन्द करके बोली—धन्य भाग! मेरी मिहनत बच गई। इस अनुग्रह के लिए मेरी

आत्मा आपकी ऋणी रहेगी। ईश्वर के लिए जल्दी कीजिए।

ताना हुआ छुरा जहाँ का तहाँ रुक गया। सौत हिचकी, तथापि उसी भाव से कहा—तुम मेरा सर्वस्व छीन कर इस तरह सुख-निद्रा में सो नहीं सकतीं।

"आपका सर्वस्व आपको मुबारक। मुझे उससे कोई सरोकार नहीं।"

"झूठ और मुँह ही पर? क्या तुमने अन्नदाता जी को पूर्णरूप से नहीं अपना रक्खा है? क्या तुम सरकार साहब को नहीं चाहती हो?"

"न मैं इन्हें चाहती हूँ और न उन्हें। मैं चाहती हूँ बस अपनी मृत्यु। बड़ी कृपा की, जो आप मेरी इच्छा पूर्ण करने आई हैं।"

"तब क्यों सरकार साहब तुम्हारे पीछे दीवाने हो रहे हैं?"

"उनकी बात उनसे पूछिए। आह! आप नाहक़ देर कर रही हैं।"

सौत प्राण लेने आई थी। परन्तु युवती को प्राण देने में स्वयं ही तैयार पाकर उसकी भयङ्करता विलीन हो गई और अब उसने युवती के शरीर पर से हटते हुए पूछा—भला तुम अपने जीवन से क्यों इतनी निराश हो?

"इससे आपको बहस नहीं। आपसे यह काम न हो सके तो लाइए छुरा मुझे दीजिए।"

सौत ने छुरे को झन से अलग फेंका और ठण्ढी साँस लेकर फिर पूछा—बताओ, तुमसे सरकार साहब से किसी प्रकार का घना सम्बन्ध है या रहा है?

"कभी नहीं।"

"हाँ? × × × अब तुम नहीं मर सकतीं। नहीं मर सकतीं। मरना भी चाहो तो अब मरने नहीं पाओगी। तुम्हें मेरी ख़ातिर जीना पड़ेगा।"

यह कह कर सौत युवती से लिपट गई।

घ

दोनो सौतें स्वभावतः एक-दूसरे की दृष्टि में खटकते रहने के कारण सदा दूर ही दूर रहती थीं। प्रबन्ध भी इन दोनों के रहने के लिए राजभवन के अलग-अलग खण्डों में ऐसा था, जिसमें दोनों आपस में मिल-जुल न सकें। तभी आज सौत कई दिनों के उद्योग पर युवती की दासियों को मिला कर उसके मकान में चोर की तरह घुसी, तब जाकर दोनों के जीवन में पहले-पहल बातचीत की नौबत आई।

युवती अपने लिए तो एक प्रकार से मर चुकी थी और आत्म-हत्या के लिए तैयार थी ही। परन्तु सौत के आग्रह पर उसके कामों में सहायता देने के निमित्त इसे अपना विचार बदल देना पड़ा।

उसी दिन से सौत नित्य ही आधी रात को चुपचाप इससे मिलने लगी। जब उसे इस पर पूर्णरूप से विश्वास हो गया, तब उसने अपने हृदय का भेद यों खोला—

"जब मेरा विवाह हुआ तो अन्नदाता जी की पढ़ाई तथा नासमझी की अवस्था थी। पढ़ाई में विघ्न पड़ने के कारण रियासत के प्रबन्धकर्ताओं ने उन्हें मुझसे मिलने की अनुमति नहीं दी। सरकार साहब मेरी देख-रेख और पूछताछ वैसे ही करते थे, जैसे अब वह तुम्हारी करते हैं। मगर उनकी नीयत कुछ ख़राब ताड़ते ही मैं आग हो गई। दुरदुरा कर उन्हें अपने सामने से निकाल बाहर किया और दासियों तथा अपने साथ के रहने वालियों से कह दिया कि ख़बरदार! अब यह मेरे पास आने न पाएँ। मगर अफ़सोस! यह मैं उस समय नहीं समझ सकी कि राज्य मेरा नहीं उनका है। दासियाँ मेरे नहीं, उनके अधीन हैं। परिणाम यह हुआ कि एक दिन मैं बेहोश कर दी गई। होश आने पर जाना कि उन्होंने मुझ पर विजय प्राप्त कर लिया। उफ़! उस वक़्त मेरी क्या दशा हुई, मैं कह नहीं सकती। ठीक तुम्हारी तरह मैं भी आत्म-हत्या करने के लिए बावली हो रही थी।"

युवती ने बात काट कर कहा—नहीं-नहीं, ईश्वर की दया से मुझ पर ऐसी नहीं बीती है और न मेरी निराशाओं का ऐसा कोई कारण ही है।

सौत ने एक लम्बी साँस लेकर फिर कहना आरम्भ किया—

"स्त्री-प्रकृति बड़ी विचित्र होती है। जिन पैरों से वह रौंदी जाती है, उन्हीं को वह प्रायः चूमने लगती है। विजयी पुरुषों के स्वागत के लिए इसके हृदय-पट का द्वार सहज ही खुल जाता है। अधिकतर इसी नियम के बल पर नई बहुएँ प्रथम साक्षात् के बाद ही प्रति-प्रेम में पड़ जाती हैं। यही गति मेरी हुई। यद्यपि सरकार साहब के

ख़ून की मैं प्यासी हो रही थी, तथापि मेरा हृदय उसी साइत से उनकी ओर झुकने लगा। कामना की पूर्ति हो जाने से या उनका यह बरताव केवल अपने अपमान का बदला लेने के आवेश में हुआ था या पश्चात्ताप और डर के मारे। ख़ैर, कारण कुछ भी हो, उन्होंने फिर मुझे अपना मुँह नहीं दिखाया। उनका न आना मेरे लिए और बुरा हुआ। क्योंकि स्त्री-स्वभाव की यह भी एक विलक्षण लीला है कि जब पुरुष की लालसा कम हो जाती है, तब इसकी लालसा बढ़ने लगती है। चुपके-चुपके मेरा भी प्रेम बढ़ने लगा।

"इसी बीच में मेरी बाँह में एक फोड़ा निकला। वह अच्छा तो हो गया, मगर मरहम के प्रभाव से या मेरे दुर्भाग्य या सौभाग्य से उस जगह सफ़ेद दाग़ पड़ गया, जिसको डॉक्टर साहब ने श्वेत कुष्ठ बता कर मुझे अन्नदाता जी के लिए अयोग्य सिद्ध कर दिया। उनका दूसरा विवाह होना आवश्यक हुआ और ब्याह होकर तुम आईं। मैं इसमें कुछ भी हस्तक्षेप न कर सकी। मेरे अधःपतन ने मेरी ही दृष्टि में मेरा सर ऐसा नीचा कर दिया था कि मैं किसी बात में चूँ नहीं कर सकती थी। मैं स्वयं अपने को अन्नदाता जी के लिए सर्वथा अयोग्य जान कर उनसे दूर ही रहने में अपना कल्याण समझती थी और समझती हूँ। परन्तु सरकार साहब का तुमसे मिलना-जुलना मुझसे देखा नहीं जाता। यहाँ तक कि तुम्हारी जान की गाहक बन गई थी। वह बुरे-भले चाहे जैसे भी हैं, मेरी बाँह गह कर अब मेरे पति हो चुके। तुम अपने राजा की एकमात्र रानी बन कर चैन करो। मगर मेरे सरकार साहब को मुझसे मत छीनो। अब उन्हीं की होकर रहने और उनको अपनाने में मुझे सहायता दो। यही भीख तुमसे माँगती हूँ। मैं जानती हूँ, वह तुम्हारी मुट्ठी में हैं। अगर चाहो तो × × ×"

गला रुँध गया और वह युवती से लिपट गई।

[कहानी की रोचकता में मैं ऐसा फँसा कि लेखिका का ध्यान न रह सका। अब जो ख़याल आया तो तारा पर से मेरा शक बिलकुल जाता रहा। इन घटनाओं को बस सरोज ही लिख सकती थी। इसलिए अब विश्वास करना पड़ा कि यह अवश्य उसी ने लिखी है और मरने के पहिले इसे चोंगा द्वारा दरिया में बहा दिया है। तभी यह कहानी इतनी अनोखी रीति से पहुँची है। मगर तारा का नाम, जिसे देख कर इसे पढ़ने को मैं उत्सुक हुआ था, वह कहानी में अब तक नहीं आया। उसी को ढूँढ़ता हुआ अब मैं आगे बढ़ा।]

ङ

युवती कई दिनों तक इसी उधेड़-बुन में रही कि सौत की सहायता करना उसका उपकार करना है या उसके पाप में सङ्गी होना। परन्तु उसके नित्य के आग्रह और इस तर्क पर डावाँडोल हो गई कि "समाज ने जिनको मेरा हाथ पकड़ाया था, उन्होंने कभी मेरी सुधि ली ही नहीं और न ले सकते हैं, तो जिसकी मैं अनुचित या पैशाचिक किसी भी रूप से हो चुकी हूँ, उनको अब पति मान कर अपनाने में कौन सी बुराई है?"

इसी बीच में युवती ने एक दिन सन्ध्या को सरकार साहब के कमरे का द्वार खोला, त्योंही एक चिरपरिचित आवाज़ पर चौंकी। झट द्वार बन्द करके उसके एक नन्हें सूराख़ से झाँकने लगी, जो तख़्ते का जोड़ एक स्थान पर ज़रा हट जाने से बन गया था। लम्प के साए में नौकर के रूप में बैठे हुए होने पर भी अपने चित्रकार को उसने पहचान लिया। अपने को सँभाल न सकी। भाग कर अपने बिस्तरे पर जा गिरी।

वह स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर सकती थी कि मेरा प्रेमी कभी ऐसी हीन दशा में रहना गवारा कर सकता है। अपमान के साथ उसे बड़ा क्षोभ भी हुआ कि यह मेरे ही कारण अपनी ऐसी दुर्दशा बनाए है। वह उसे इस सङ्कट से छुटकारा देने का उपाय सोचने लगी। अन्त में एक दिन जब उसने सौत की ख़ातिर सरकार साहब को उनके प्रेम-प्रस्ताव पर अपनी कोमल अस्वीकृत द्वारा उत्साहित करना निश्चय कर लिया और इसी नीयत से अपना पत्र उनके तकिए में रख कर भीतर चली, तो वहाँ किसी के आने की आहट मालूम हुई। उसने सूराख़ से देखा कि चित्रकार है और यह भी देखा कि उसने उस पत्र को फाड़ कर उसके स्थान पर दूसरा पत्र स्वयं लिख कर रख दिया। युवती घबड़ा उठी। द्वार खोल कर तकिए की ओर लपकी। पर्दे का हिलना चित्रकार का उसकी आड़ में जल्दी से छिप जाना बता रहा था। युवती ने उधर कुछ ध्यान न दिया। वह उसके रक्खे हुए पत्र को निकाल कर पढ़ने लगी। पढ़ते ही उसके होश उड़ गए।

दिल में डरी कि यदि ऐसी कार्रवाई मेरे अनजाने कहीं फिर हुई तो उसके बने-बनाए खेल का ही नाश नहीं, वरन् उसका भी सर्वनाश हो जाएगा। क्योंकि ऐसे शक्तिशाली से इस तरह का विरोध करके वह कदापि सकुशल नहीं रह सकती। वह पत्र फाड़ कर चली गई। समझ लिया कि इस बात से चित्रकार अब जल कर मुझसे दूर भागेगा। बात यही हुई। उसने फिर चित्रकार को नहीं देखा। यद्यपि अपने प्रेमी को इस प्रकार जलाने का उसे घोर पश्चात्ताप रहा, तथापि वह यह सोच कर सन्तोष करती थी कि ऐसी भयङ्कर परिस्थिति में उसके कष्ट को कम करने का अन्य कोई उपाय न था।

युवती ने जब देखा कि उसके उत्साहित करने वाले पत्रों से सरकार साहब पूरे कामान्ध हो चुके हैं, तो उन्हें अपने धोखे में सौत से मिलाने के निमित्त आधी रात को अपने कमरे में बुलाया। जानती थी कि शराबी होने के कारण वह ऐसे समय सदैव नशे में चूर रहते हैं। जब वह भीतर आए तब उसने द्वार बन्द कर लिया। क्योंकि पुरुष-प्रकृति का यह बड़ा गूढ़ तत्व है कि पुरुष तभी तक धर-पकड़ करता है, जब तक स्त्री उस पर अविश्वास करती और भागती है। युवती का यह रङ्ग देख कर सरकार साहब निश्चिन्त होकर कोच पर बैठ गए। उन्हें वह आग्रह और छेड़-छाड़ के साथ अपने हाथ से शराब पिलाने लगी। दो ही चार प्यालों में उनका बचा-खुचा होश-हवास भी जाता रहा। उस समय युवती लम्प की ज्योति मद्धिम करके कमरे से बाहर हुई। और उसके स्थान पर उसी तरह के कपड़े पहने सौत भीतर आ गई। दोनों के ढाँचे, डील-डौल और रङ्ग एक ही समान होने के कारण हलकी रोशनी और अपने नशे की अवस्था में सरकार साहब को पता न चला कि यह वही है, जो मुझे शराब पिला रही थी या कोई दूसरी।

[ओहो! जिस दृश्य को देख कर अलिन्द पाड़ पर से मूर्च्छित होकर गिरा, जिसने उसे अब तक पागल बना रक्खा था और जिसका सङ्केत भी उसकी बड़बड़ाहट में मिला था, वह अब स्पष्ट रूप से मालूम हो गया कि यही था। मगर वाह री! भाग्य की लीला! इसने सरोज की प्रकृति पर भ्रम का कैसा बेढब पर्दा डाल रक्खा था कि मैं भी उसे अन्त में अमानुषी, हृदय-हीना, ओछी, विश्वास-घातिनी और विलासिनी जान कर कोरी घृणा की पात्री समझने लगा था, वही सरोज कितनी स्वाभाविक, भावमयी, गहरी, बुद्धि तथा ज्ञान में एकता और अपने हृदय का ख़ून करने वाली निकली कि मेरी श्रद्धा अब उसके लिए सौगुनी बढ़ गई। सब से अधिक तो मैं मानवी चरित्र की गुत्थियों पर उसकी आलोचनाएँ देख कर मुग्ध हो रहा था और उन्हीं की खोज में मैं और आगे बढ़ा।]

जागरण

काशी, ५ अक्टूबर, १९३२

चाँद लिमिटेड कम्पनी

'चाँद' ने हिन्दी-संसार में जो ख्याति प्राप्त की है, वह किसी से छिपी नहीं है। इन आठ-दस सालों में उसने नई मशीनों से सुसज्जित प्रेस ही नहीं खोल लिया है, बल्कि दो बँगले भी मोल ले लिए हैं, जिनमें प्रेस और कार्यालय चलता है। यह कारबार इतना बढ़ गया है कि 'चाँद' के कुशल संस्थापक श्री० रामरखसिंह सहगल ने उसे एक लिमिटेड कम्पनी-द्वारा सञ्चालन और प्रवर्धन करना निश्चित किया है। उसके लिए एक कम्पनी बना ली गई है, जिसकी बाज़ाब्ता रजिस्ट्री हो चुकी है। तजवीज़ यह है कि कम्पनी की पूँजी आठ लाख हो और एक हिस्सा १०) का रक्खा जाय। 'चाँद' की सम्पत्ति इसमें शामिल कर ली गई है। प्रॉसपेक्टस देखने से मालूम होता है कि कम्पनी के लम्बे इरादे हैं। कई हज़ार के हिस्से बिक भी गए हैं। हमें आशा है, हिन्दी-प्रेमी जनता इस नए उद्योग में सहयोग देगी और दिखा देगी कि हिन्दी में भी बड़े पैमाने पर प्रकाशन का काम किया जा सकता है।

दो ही चार मिलन में कामी की कामाग्नि बुझ गई और सरकार साहब को अपने धोखे की ख़बर न हुई। युवती इस भ्रम का पर्दा हटा कर उनकी आँखें खोलने की ताक़ ही में थी कि उनकी चाहत शिथिल पड़ जाने के कारण वह उनकी दृष्टि में फीकी पड़ गई। उधर उनकी कामनाओं को एक नया लक्ष्य भी मिल गया। एक तारा नाम की चिकनी-चुपड़ी छोकड़ी किसी का प्रशंसा-पत्र लेकर जीविका के लिए आई। वह अपनी सुन्दरता के कारण सहायक ड्योढ़ी अफ़सरी के नए पद पर झट नियुक्त कर ली गई। जिसके ऊपर ज़नानख़ाने के प्रबन्ध का भार रक्खा गया।

[तारा का नाम आते ही मेरी साँस रुक गई और दिल धड़कने लगा कि कहीं वह मेरी ही तारा न हो। जी में आया उसे देखने और पहचानने के लिए उसी क्षण चल दूँ। परन्तु किसी तरह जब्र करके कहानी का बहुत-कुछ अंश छोड़ता हुआ जल्दी-जल्दी पढ़ने लगा।]

प्रेम-पीड़िता युवतियों में एक अद्भुत आकर्षण होता है। ऐसी ही कोई बात तारा की निगाहों में थी। इसलिए जो कोई उसे देखता था वह उसी का दम भरने लगता था। परन्तु वह किसी से बोलती-चालती न थी। पूछने पर केवल इतना बताती थी कि उसके माता-पिता के अकस्मात् मृत्यु हो जाने के कारण उसे जीविका के लिए घर से निकलना पड़ा। सौभाग्यवश रेल ही में उसे किसी विलायती मेम से भेंट हो गई, जो हिन्दी की परीक्षा की तैयारी कर रही थी। अपनी पढ़ाई में सहायता देने के लिए उसने इसे अपने साथ रख लिया और परीक्षा दे चुकने पर इसे कोई नौकरी देने के लिए अपने पत्र के साथ मैनेजर साहब के पास भेजा, जिन्हें वह पहले से जानती थी।

तारा के आकर्षण ने सरकार साहब पर कुछ ऐसा जादू डाला कि वह युवती को भूल गए और उसके धोखे में उनका सौत से मिलना भी बन्द हो गया। उनकी इस उदासीनता से अब युवती अपने को कुछ स्वतन्त्र पाने लगी।

अब तक वह अपनी स्वाभाविक लज्जावश सदा अपने पति की प्रतीक्षा ही में रहती आई थी। कभी स्वयं उनसे मिलने का उद्योग कर न सकी थी। उस पर अड़चन यह थी कि जब कभी राजा साहब घर में रहते थे, तो उनके सोने का प्रबन्ध ऐसी जगह किया जाता था, जहाँ पहुँचने के लिए सरकार साहब का कमरा नाँघना पड़ता था। इससे युवती और भी दुबसट में पड़ी रहती थी। परन्तु इसमें अब वह सङ्कोच न रहा। अपने उद्देश्य-पूर्ति में सौत का साहस देख कर यह भी साहसी हो चली थी। इसलिए इसने छिप कर उनसे मिलने तथा उनकी विलासिता की आदत छुड़ाने की ठानी।

राजा साहब अधिकतर राजभवन से अलग रङ्गमहल में सोया करते थे, जो नदी के बीच में बना हुआ था। बाढ़ आने के कारण वे कई दिनों से वहीं थे। बाढ़ की शोभा देखने के बहाने युवती ने एक दिन वहाँ सन्ध्या तक जाकर रहने की अनुमति प्राप्त की। परन्तु लौटने के समय इसने मूर्छा का ऐसा नाट्य किया कि लेडी-डॉक्टर को उसे वहाँ से हटाए जाने के लिए मना करना पड़ा।

आधी रात को जब युवती की दासियाँ सो गईं, और सरकार साहब की भी आँख लग गई, तब यह उठी और धड़कते हुए दिल के साथ चुपके-चुपके राजा साहब के शयन-गृह के द्वार पर पहुँची। द्वार भीतर से बन्द मिला। वह बेचारी किङ्कर्तव्य-मूढ़ की भाँति जहाँ की तहाँ खड़ी रही। अन्त में हताश होकर द्वार का मुट्ठा पकड़ कर अपनी ओर खींचा। ऊपर की सिटकिनी सरक कर नीचे गिरी और द्वार खुल गया।

पलँग पर राजा साहब के साथ सोती हुई एक भद्दी सी स्त्री ने चौंक कर तकिया पर से सर उठाया। युवती के एड़ी से चोटी तक आग लग गई। अपने पर किसी प्रकार भी जब्र न कर सकी। सिंहनी की भाँति उस स्त्री पर टूट पड़ी। और दोनों हाथों से उसके बालों को पकड़ कर नीचे घसीटा। राजा साहब चिल्ला कर बाहर भागे। स्त्री कूद कर पलँग के नीचे मुण्डी खड़ी हो गई। और उसकी खोपड़ी से निकला हुआ नक़ली बाल हाथ में लिए युवती भौंचक सी उसका मुँह ताकने लगी।

हल्ले-गुल्ले में सारा घर का घर पर्दे का बिना कुछ ख़्याल किए वहाँ फट पड़ा। मैनेजर साहब आते ही दोनों हाथों से अपना सर पीटते हुए हाय! हाय! करके यह रोना रोने लगे कि—"हाय! सर्वनाश हो गया। इस कलङ्किनी ने राजकुल को एकदम डुबो दिया। किसे मालूम था कि यह ऐसी पापिष्ठा है कि पुरुषों को

स्त्रियों के भेष में अपने पास बुलाती है। और पुरुष भी कैसा ? यह गूँगा। धत् तेरे की ! स्वयं अन्नदाता जी ने आज आकर इसकी दुराचारी अपनी आँखों से देख ली। तभी वह चिल्ला कर इसके पास से दूर भागे। नहीं इसका भण्डा भला काहे को फूटता ? × × ×"

युवती को जैसे काठ मार गया। उसकी समझ में कुछ भी न आया। जिस मुँह से वह सदा मनसुहाती सुनती आई थी, उसी से यह गालियों की धारा निकलते पाकर और भी सन्नाटे में आ गई। धीरे-धीरे उन शब्दों के अर्थ उसके दिमाग़ में गूँजे और अब अपने को इतने लोगों के सामने एक स्त्री-भेषधारी पुरुष के सङ्ग देखा। एकाएक सारा संसार अग्निमय हो गया। वह चीख़ कर वहाँ से भागी और छत पर से धड़ाम से बढ़ती हुई नदी में फाँद पड़ी।

[इतना पढ़ते ही मैं भी चिल्ला उठा कि अरे ! यह तो सरोज की भी लिखी नहीं हो सकती। क्योंकि उसकी लिखी गल्प इस घटना के पहिले ही समाप्त हो जाती, उसके लिए अपनी मृत्यु का हाल लिखना बिलकुल असम्भव था। इस उलझन में पड़ कर मेरी परेशानी अब तो इतनी बढ़ी कि अपनी उत्सुकता शान्त करने के लिए आगे सब छोड़ कर झट अन्तिम पृष्ठ पढ़ने लगा।]

× × ×

साधू के न टालने वाले आग्रह पर युवती अपना हाल कहने के लिए विवश हो गई। और उसे सुना कर बोली—आपने मुझे बचा कर घोर अन्याय किया है।

साधू ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—स्वर्ग और नर्क अन्यत्र नहीं, इसी संसार में है पुत्री ! इसीलिए तू मर कर भी नहीं मर सकी। डूब कर भी बहती हुई मेरे हाथ लगी। अभी तेरे भाग्य में तुझे अपने पापों का फल भोगना बदा है।

"आह ! मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है, जो परमात्मा मुझसे ऐसे रुष्ट हैं ? यही तो मैं समझ नहीं पाती।"

"पाप ? अह ! ह ! ह ! अच्छा, नहीं समझ पाती तो जिसका दिल तूने जला रक्खा है, उस दिल-जले की आहों में तू इसको देख।"

"मगर उसके लिए मैं भला कैसे दोषी हो सकती हूँ ?"

"लड़की ! ताली एक हाथ से नहीं बजती। अगर उसकी आहों में तुझे अपना पाप नहीं दिखाई पड़ता तो तू उसे अपने ही दिल की आग में देख, जो अपनी ठण्ढी आँच से तेरी आत्मा को चुपके-चुपके बराबर झुलसती आई है।"

युवती काँप उठी और एक गहरी साँस लेकर पूछा—आख़िर अब मेरा उद्धार कैसे हो सकता है ?

"जिस दिल को तूने जला कर भस्म कर डाला है, उसी की सच्चे हृदय से सेवा करने में तेरे पापों का प्रायश्चित्त होगा और तुझे भी शान्ति मिलेगी।"

"मगर संसार मुझे ऐसा कब करने दे सकता है ?"

"जिस संसार को तूने ईश्वर से भी बड़ा समझ कर उसके रिश्ते के फन्दे से ईश्वरीय नियमों का गला घोंटा है, उस संसार के लिए तो तू अब मर चुकी है। वह अब तेरी क्यों परवाह करने लगा ? सौभाग्य से इसके फन्दे में पड़ कर भी तू जैसी थी वैसी ही बनी रही। आख़िर क्यों ? क्या अब भी नहीं समझी ?"

एक गँवार रेल में सफ़र कर रहा था, पूरी पटरी पर टाँग पसारे बैठा था। एक जेन्टिलमैन भी उसी डब्बे में आ गए, और बैठने को कहीं जगह न देख, उस गँवार से बोले—मैं ज़रा आपको तकलीफ़ देना चाहता हूँ।

गँवार (बिगड़ कर)—क्या तुमने मुझको कमज़ोर समझा है, जो तकलीफ़ देना चाहते हो। ज़रा तकलीफ़ दो और फिर मैं तुमको मज़ा चखाऊँ।

कृष्ण—आज मुझे ट्राम की पटरी पर एक चौअन्नी मिली।

कमल—वह मेरी ही होगी। कल मेरी खो गई थी।

कृष्ण—परन्तु यह तो दो दुअन्नियाँ हैं।

कमल—हाँ ! शायद ट्राम के नीचे आकर टूट गई हो।

युवक

[श्री० बाबूलाल जी प्रेम]

लक्ष्य हिमाचल से भी उन्नत,
भाव सिन्धु से भी गम्भीर।
प्रगति वेगतर झञ्झानिल से,
काल-जिह्व से भी रणधीर॥
दीप्तमान शत सहस्रार्चि सम,
करे विभासित सकल मही।
विद्युत से भी जो चञ्चल है,
धीर वीर नवयुवक वही॥

⁂

प्रकृति गोद में पल कर विचरे,
अखिल विश्व के प्राङ्गण में।
समझ खिलौने बाधाओं को,
खेले जो रणराङ्गण में॥
व्यङ्ग कुवाच्य विषम निन्दा विष,
सुधा-धार सम करता पान।
होनहार जगती की आशा,
श्रेष्ठ युवक की यह पहचान॥

⁂

शीत-उष्ण की दुसह बात को,
मातु थपकियाँ वत् जाने।
तड़िताणव की वज्ररागिनी,
सुखद लोरियाँ जो माने॥
जिसका सरल सौम्य मुख लख कर,
ऊषा की हो शोभा म्लान।
उस निसर्ग की भव्य मूर्ति को,
युवक शब्द से कर आह्वान॥

प्राण-शक्ति के परिवर्धन हित,
करता हो जो प्राणायाम।
शारीरिक सुसङ्गठन के हित,
प्रतिदिन जो करता व्यायाम॥
तथा मनोबल के वर्धन हित,
करता कष्टों का आह्वान।
जिसे अशान्ति शान्ति-दात्री हो,
युवक-शिरोमणि उसको जान॥

⁂

जिस पर प्रतिक्षण कोई हो धुन
अरु हो अटल आत्म-विश्वास।
पारावार अगाध सुखा दे
जिसकी दीर्घ ऊष्ण निश्वास॥
जिसकी सुदृढ़ धमनियों में हो
आकांक्षा, हाँ, रक्त नहीं!
हो विश्राम हलाहल जिसको
विषयों में अनुरक्त नहीं॥

⁂

जिसकी हो हुङ्कार मात्र ही
अरिदल दहलाने वाली।
एक चरण की ठोकर ही हो
भूधर धसकाने वाली॥
यम दिक्पाल इन्द्र अचरज में
हों, निज सम लखि जिसका वेष,
भृकुटि-भङ्ग ही विधि-निषेध हो
जीवन, मरण, पतन उन्मेष॥

अचल हिमाचल भी चल होवे, ध्रुव अध्रुव हो जाय कभी।
चपला तथा चञ्चला चाहे, अचला बन कर रहें सभी॥
प्रकृति-नियम भी हों परिवर्त्तित, विश्व-नियामक चञ्चल हो।
एक लक्ष्य हो, एक दृढ़व्रत, युवक श्रेष्ठ का अविचल हो॥

"आए थे हरि-भजन को; आटन लगे कपास"

१
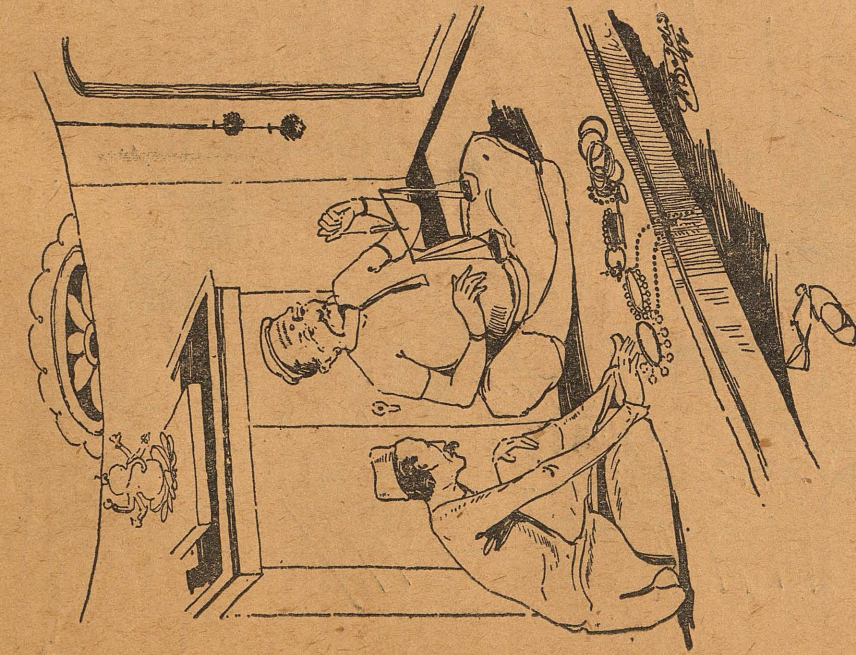
आयोजन

"तीन हज़ार में पैतृक ज़मीन बेच दी और दो हज़ार इन गहनों के मिल जाएँगे। पाँच हज़ार में लल्ला बालिस्टर होकर आ जाएगा।"
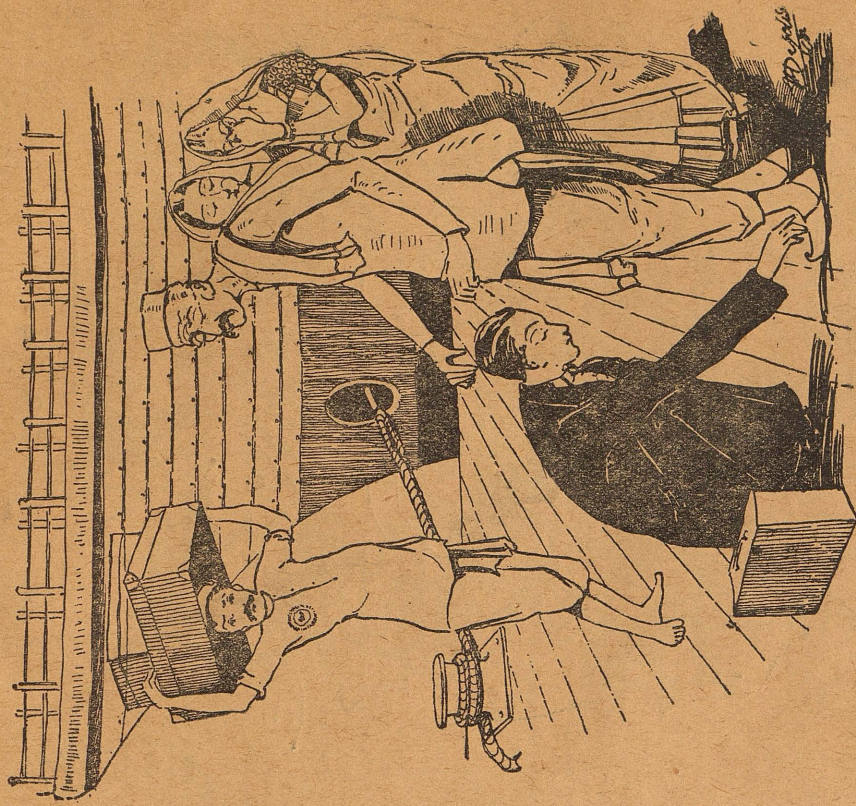
प्रस्थान

"आयुष्मान हो बेटा, भगवान तुम्हारी यात्रा सफल करें। हफ्ते-हफ्ते चिट्ठी-पत्री भेज कर अपना कुशल-समाचार देते रहना।"
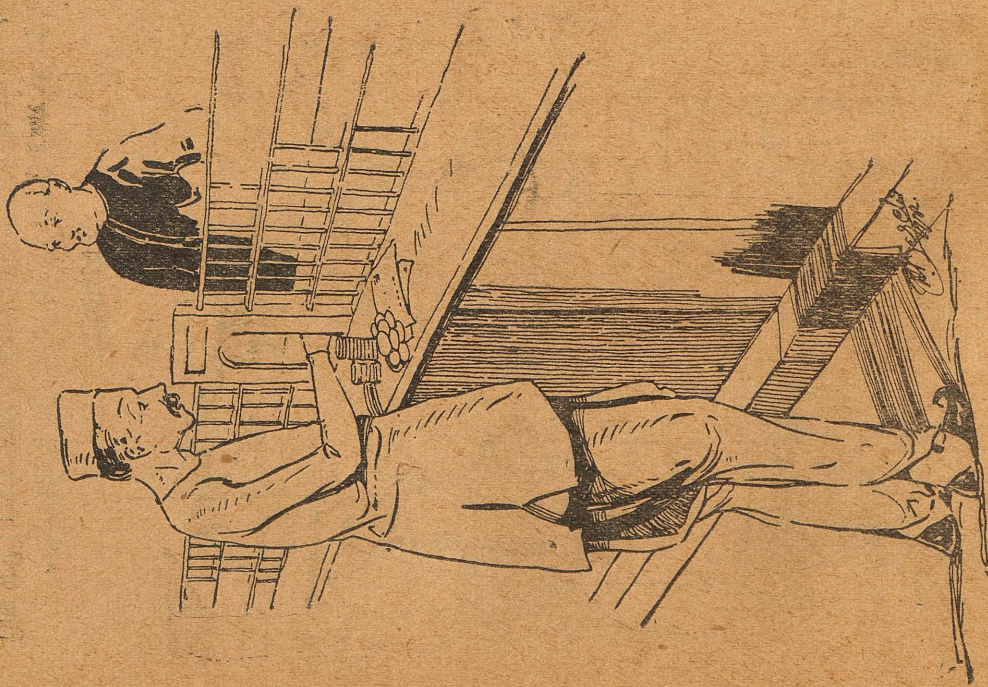
तार मनीऑर्डर

"१,०००) और तार द्वारा भेजने को लल्ला ने लिखा है। इतनी बड़ी पढ़ाई का खर्चा कम थोड़े ही पड़ता है जी।"

रिक्रिएशन
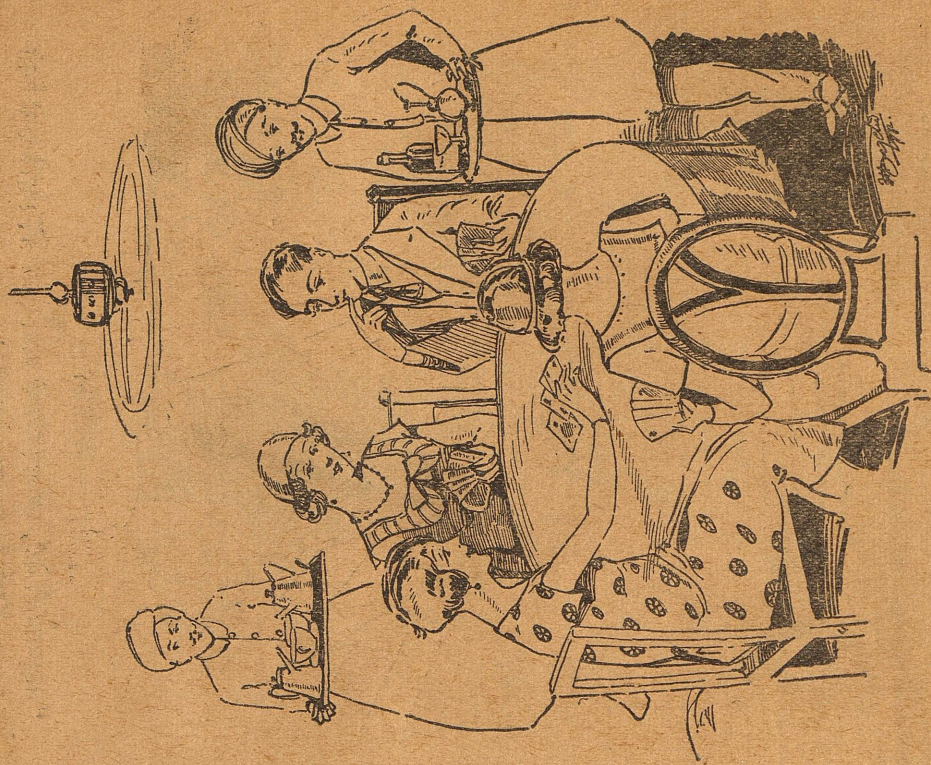
। "बड़े मौक़े से मेरे मूर्ख पिता ने १,०००) भेज दिया। अब जोन के बथ-डे (वर्ष-गाँठ) पर एक अच्छी सी रिस्टवाच और नेकलेस की व्यवस्था आसानी से हो सकती है।"
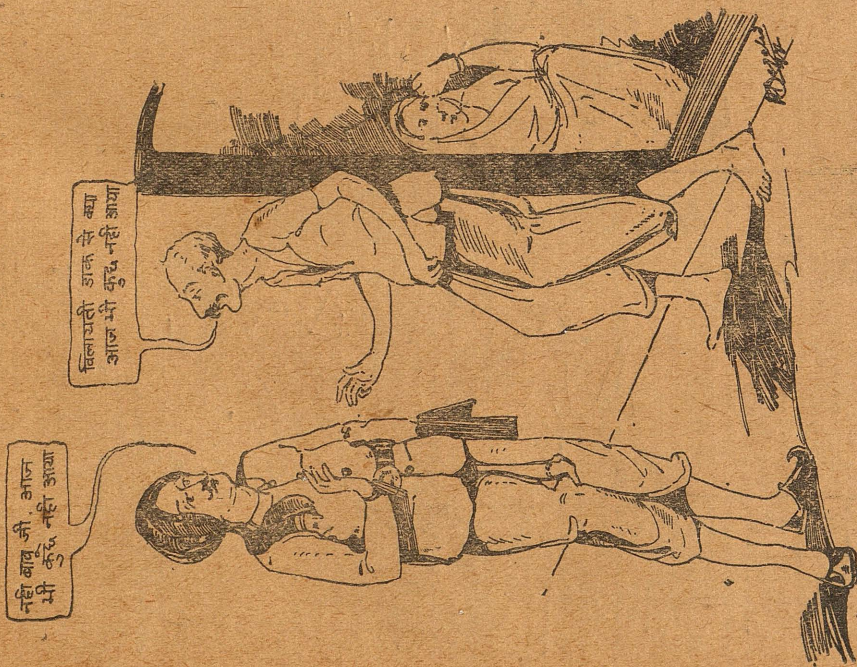
प्रतीक्षा

"जब से तार मनीऑर्डर गया है, तभी से लल्ला की कोई भी चिट्ठी नहीं मिली। बेचारा जरूर पढ़ाई में लगा होगा।"
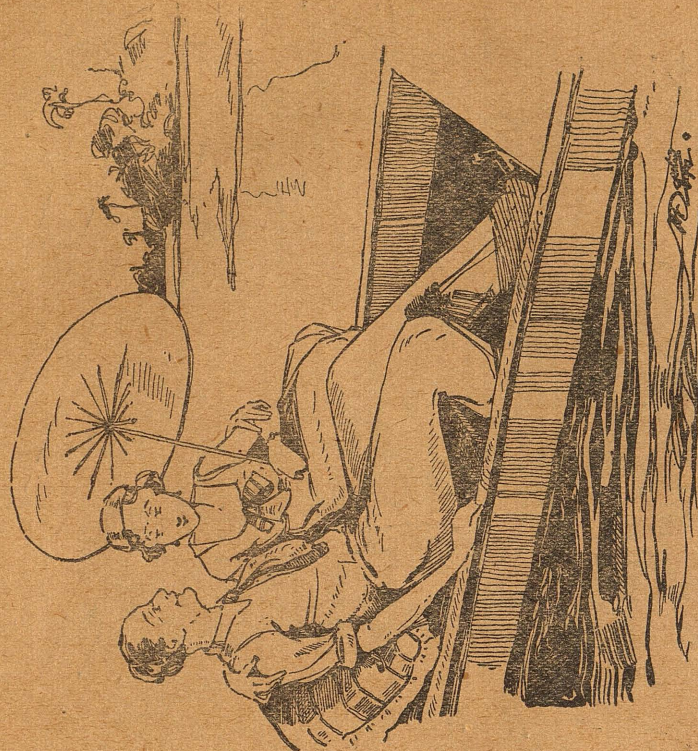
बोटिङ्ग

"मेरी प्यारी जोन, क्या तुम मुझे दिल से चाहती हो?"
"निश्चय ही मेरे प्यारे, मैं तुम्हारी हूँ और तुम मेरे हो!"

पश्चात्ताप
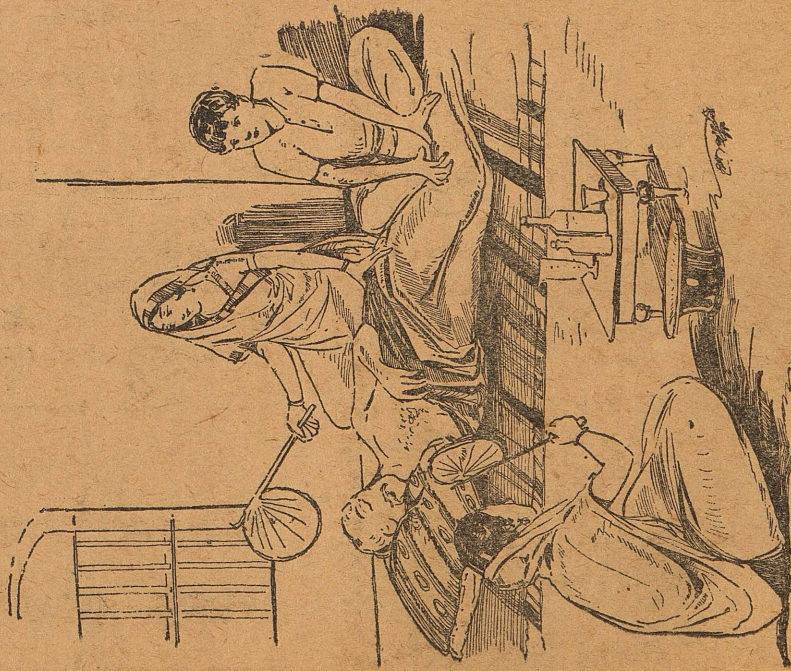
"साल भर बीत गए ! लल्ला ने एक पत्र भी नहीं दिया ! सुनते हैं, किसी मेम से सादी कर ली है ! हा ! अदृष्ट !!"

परिणाम !

मि० एल० लॉल (लाल) बार-ऐट-लॉ और उनकी श्वेताङ्गिनी पत्नी मिसेज़ डोर्थी जोन लॉल !

महाराष्ट्र के महात्मा

[श्री० सुरेन्द्र शर्मा]
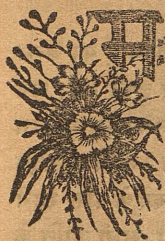
महाराष्ट्र के जातीय जीवन में, आज से कई सौ वर्ष पहले धार्मिक और राजनीतिक भावों का समन्वय जिस खूबी के साथ हुआ था, उसका सानी सिक्ख-इतिहास के सिवा, इस देश के समूचे इतिहास में ढूँढ़े नहीं मिलता। विदेशी इतिहास-लेखक इस तत्व को समझ ही नहीं सके, इसी कारण, उन्होंने अपने ग्रन्थों में महाराष्ट्र के अभ्युदय का, उसकी राजनीतिक प्रगति के मूल कारणों का जो वर्णन किया है, वह अधूरा और इकतरफ़ा है। उस अधूरे वर्णन में यहाँ तक कहा गया है कि महाराष्ट्र में शिवाजी तथा उनके वीर योद्धाओं के उद्योग से जिस विशाल हिन्दू-राज्य की नींव डाली गई, वह सचमुच उच्चकोटि के नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित थी ही नहीं, वह तो केवल कुछ 'लुटेरों' का उद्योग मात्र था। परन्तु विदेशी इतिहास-लेखकों के पक्षपातपूर्ण अधूरे वर्णन से जस्टिस रानाडे, लोकमान्य तिलक और भाण्डारकर आदि भारतीय विद्वान सन्तुष्ट न रह सके। उन्होंने स्वयं भारतीय इतिहास—मुख्यतः महाराष्ट्र के इतिहास—के ज्ञान-सागर का मन्थन किया और बीसियों लेख और अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिख कर विदेशी इतिहास-लेखकों की अधूरी और इकतरफ़ा बातों का खण्डन किया। जस्टिस रानाडे ने तो अपने 'Rise of Maratha Power' नामक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि महाराष्ट्र के राजनैतिक अभ्युदय में, राजनैतिक और धार्मिक भावों के समन्वय का एक अद्भुत तत्व काम कर रहा था। वह तत्व समर्थ गुरु रामदास आदि कितने ही सन्तों के अनवरत उद्योग और निस्पृह सेवा, त्याग और तपस्या के फल-स्वरूप प्रस्फुटित हुआ था। महाराष्ट्र में राजनीतिक अभ्युदय के साथ ही साथ धार्मिक भावना भी, उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। वहाँ की धार्मिक उन्नति में बीसियों त्यागी साधु-महात्माओं का हाथ था। मुसलमानों की सत्ता स्थापित होने के पहले ही महाराष्ट्र में धार्मिक सुधार का श्रीगणेश हो गया था।

कविवर महीपति ने महाराष्ट्र के कितने ही साधु-सन्तों का चरित्र लिखा है। उसी चरित्र के आधार पर, मराठों की धार्मिक जाग्रति का इतिहास उस समय तैयार किया गया, जबकि महाराष्ट्र में ब्रिटिश शासन का नाम तक न था। उस धार्मिक जाग्रति का श्रेय कितने ही महात्माओं को था। जब देवगिरि में जाधव राजा राज्य करते थे, तब ज्ञानेश्वर जी महाराज ने श्रीमद्भगवद्गीता पर, मराठी में प्रसिद्ध ज्ञानेश्वरी टीका लिखी। बल्काल राज्य के समय में मुकुन्दराज नाम के प्रसिद्ध कवि हुए और उसी समय उन्होंने 'विवेक-सिन्धु' नाम का उपयोगी ग्रन्थ लिखा। बारहवीं शताब्दी में जितने मराठी-ग्रन्थ लिखे गए, उन सब में मुकुन्दराज का ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ है।

मुसलमानों के आक्रमणों के समय, महाराष्ट्र में धार्मिक जाग्रति का काम कुछ शिथिल हो गया था, परन्तु बाद में उसकी रफ़्तार फिर तेज़ हो गई। जिस समय महाराष्ट्र का सुदृढ़ हिन्दू-राज्य स्थापित हुआ था, उस समय तो वहाँ सब जगह धार्मिक भावों का प्रचार हो चुका था। दो सौ वर्ष तक महाराष्ट्र में धार्मिक भाव उन्नत होते रहे। अन्त में धार्मिक अवनति के साथ ही मराठों की राजनैतिक स्वतन्त्रता भी जाती रही। महाराष्ट्र के धार्मिक जाग्रति के इतिहास में तो यहाँ तक लिखा है कि धर्म-प्रचार का काम वहाँ लगभग ५०० वर्ष तक होता रहा। इसी बीच में ५० से अधिक महात्मा उत्पन्न हुए। उनका प्रभाव सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर स्थायी रूप से पड़ा। महाराष्ट्र के जातीय जीवन में उन महात्माओं के बढ़ते हुए प्रभाव को देख कर ही यदि महीपति को उनके पुण्य-चरित्र लिखने का विचार हुआ हो, तो कोई ताज्जुब की बात नहीं।

महाराष्ट्र के साधु-महात्माओं के उपदेशों में बड़ा ज़बर्दस्त आकर्षण था। यही कारण था कि उनके उपदेशों का

प्रभाव वहाँ के साधारण से साधारण आदमी तक पर पड़ा। उन महात्माओं के चरित्र सचमुच आदर्श थे। वे सच्चे अर्थों में महात्मा थे। अपने दिव्य चरित्र के बल पर संसार के अज्ञानान्धकार में डूबे हुए प्राणियों को ज्ञान के प्रकाश में ले जाकर उनका आत्मोद्धार करना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। महात्माओं की मण्डली में स्त्रियाँ, हिन्दू-धर्म को मानने वाले उदार मुसलमान, मराठे, कुनबी, दर्ज़ी, माली, लुहार, सुनार, कसेरे, अनुताप की आग से शुद्ध होकर पश्चात्ताप करने वाली वेश्याएँ, दासियाँ, शूद्र, भङ्गी, ब्राह्मण आदि ऊँच-नीच सभी शामिल थे। महात्माओं के आध्यात्मिक उपदेशों से ऊँच-नीच सभी की ज्ञान-पिपासा शान्त हुई। अपढ़-कुपढ़, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभी बिना किसी भेद-भाव के अपने कल्याण के लिए उद्योग करने लगे। उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों और विमल विचारों की प्रेरणा से हिन्दू-मुसलमान सभी समान भाव से धार्मिक भावों में रँग गए। ऊँचे आध्यात्मिक ज्ञानामृत से समूचा महाराष्ट्र सराबोर हो गया। इस देश के इतिहास में धार्मिक जाग्रति का यह काम सचमुच अनूठा था। उन्हीं दिनों नानक ने पञ्जाब को जगा कर हिन्दू-मुस्लिम एकता का बीज बोया। पूर्व में श्रीगौराङ्ग देव ने शाक्त धर्म की जगह भागवत धर्म का प्रचार किया। देश के विभिन्न स्थानों में रामानन्द, कबीर, सूर, तुलसीदास, जयदेव, रैदास आदि ने भी अपने-अपने ढङ्ग से भक्ति के भावों का प्रचार कर सर्वसाधारण को ज्ञानामृत का पान कराया।

महाराष्ट्र में जो महात्मा हुए हैं, उनमें चाङ्गदेव, ज्ञानदेव, निवृत्ति, सोपन, मुक्ताबाई, जनाबाई, आकाबाई, वेणूबाई, नामदेव, एकनाथ, रामदास, तुकाराम, शेख़-मुहम्मद, शान्ति बहामनी, दामाजी, उद्धव, भानुदास, कूर्मदास, बोधले बाबा, सन्तोबापवार, केशव स्वामी, जयराम स्वामी, नृसिंह सरस्वती, रघुनाथ स्वामी, चोखा मेला, नरहरि सुनार, सावन्त्या माली, बहिराम भट्ट, गणेशनाथ आदि अनेक महात्मा बहुत प्रसिद्ध थे।

आरम्भ ही से महाराष्ट्र के साधु-महात्मा, समाज में किसी जाति-विशेष की सत्ता जमाने के विरोधी थे। उनका सिद्धान्त था कि मनुष्य की आत्मा की उच्चता, किसी ख़ास कुल में जन्म लेने, अथवा समाज की किसी स्थिति विशेष पर ही अवलम्बित नहीं है। नीच से नीच जाति में जन्म लेने पर भी, मनुष्य, यदि उसे विकास का पूर्ण अवसर मिले तो, अधिक से अधिक संस्कृत, शिक्षित और विद्वान बन सकता है। महाराष्ट्र के इन सन्तों में ब्राह्मण कम थे और अन्य जातियों के लोगों की संख्या अधिक थी।

ज्ञानदेव, उनके भाई और बहिन मुक्ताबाई का जन्म तो उनके पिता के संन्यासी बन जाने पर हुआ था। जब उनके गुरू रामानन्द को पता लगा कि उनके संन्यासी बन जाने में उनकी पत्नी सहमत नहीं थीं, तब उन्होंने ज्ञानदेव के पिता को अपने गाँव में जाकर अपनी स्त्री के पास रहने की आज्ञा दी। उक्त संन्यासी के बच्चों को, सभी जाति के लोगों ने नीच समझा और सब लोगों ने उनका बहिष्कार कर दिया। जब वे बच्चे कुछ बड़े हुए, तब ब्राह्मणों ने फ़तवा दे डाला कि उनका यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं होना चाहिए। वे बालक जीवन भर जाति-च्युत रहे। परन्तु आगे चल कर अपने साधु-चारित्र और मनुष्योचित अद्भुत गुणों के कारण सभी जगह उनका आदर हुआ। एक दूसरे महात्मा मालोपन्त का विवाह एक नीच जाति की स्त्री के साथ हुआ था। विवाह के समय तक उस स्त्री की जाति का किसी को पता नहीं चला। पति ने महज़ इसी कारण उसका त्याग नहीं किया, किन्तु उसके साथ ऐहिक सम्बन्ध रखना छोड़ दिया। जब स्त्री की मृत्यु हुई और महात्मा मालोपन्त ने प्रचलित प्रथा के अनुसार उसका अन्तिम संस्कार किया, तब एक ऐसा अद्भुत चमत्कार दिखाई दिया, जिससे उनके शत्रुओं तक को यह मानना पड़ा कि उन दोनों का चरित्र आरम्भ ही से अत्यन्त पवित्र था।

जयराम स्वामी के गुरु कृष्णदास का एक नाई की कन्या के साथ विवाह हो गया था। परन्तु उस साधु-पुरुष के पवित्र आचरण का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उस समय के श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य भी उसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सके। महाराज एकनाथ जी तो जाति-भेद को बहुत ही हेय समझते थे। उन्होंने एक भूखे चाण्डाल को भोजन कराया। जब लोगों ने उन्हें जाति से निकाल दिया और वे लोगों के कहने से उसका प्रायश्चित्त करने को नदी पर गए, तब एक बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना हुई। उस घटना से सिद्ध हो गया कि एक भूखे चाण्डाल को

भोजन कराने का पुण्य हज़ारों ब्राह्मणों को खिलाने से भी अधिक होता है। एकनाथ जी ने एक चाण्डाल को भोजन कराके एक असाध्य कोढ़ी को आराम कर दिया, परन्तु एक हज़ार ब्राह्मणों को खिलाने से उसे कोई फ़ायदा न हुआ। ब्राह्मणों ने, जाति-नियम भङ्ग करने के कारण एकनाथ जी के यहाँ श्राद्ध में भोजन करने से इन्कार कर दिया। कहते हैं कि इस पर उस तपोनिष्ठ महात्मा ने उन हठी ब्राह्मणों के मृतक पूर्वजों को स्वर्ग से पृथ्वी पर बुलाया और झूठे जाति-अभिमान की निस्सारता सिद्ध कर दी!

महात्मा नामदेव के चरित्र में लिखा है कि एक बार पण्ढरपुर के देवता ने उन्हें ब्राह्मणों को निमन्त्रित करने का आदेश दिया और स्वयं भी उनके साथ भोजन किया। ब्राह्मणों ने महात्मा का बहिष्कार कर दिया। उस समय ज्ञानदेव ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर दुष्ट ब्राह्मणों को उपदेश देते हुए कहा—

"देवता के दरबार में ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं माना जाता। उसके लिए तो सभी एक से होते हैं। इसलिए यह कहना व्यर्थ है कि मैं ऊँच जाति का हूँ और मेरा पड़ोसी नीच जाति का। ऊँच और नीच दोनों ही गङ्गा जी में नहाते हैं, पर वह अपवित्र नहीं होती। दोनों ही हवा में साँस लेते हैं; परन्तु हवा ख़राब नहीं होती। दोनों ज़मीन पर घूमते हैं, पर वह कभी अस्पृश्य नहीं समझी जाती।"

अछूतों को मन्दिरों में प्रवेश न करने देने की निन्दनीय प्रथा महाराष्ट्र में भी थी। पण्ढरपुर के देवालय में घुसने के कारण चोखामेला महार को नामधारी उच्च जाति के लोगों ने बड़े कष्ट दिए। जब लोगों ने उनसे मन्दिर में घुसने का कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि स्वयं यहाँ पर नहीं आया, बल्कि देवता मुझे ढकेलते हुए यहाँ लाए हैं। आगे चल कर उन्होंने मन्दिर के पुजारी से कहा—

"यदि परमात्मा पर भक्ति और विश्वास नहीं, तो ऊँची जाति में जन्म लेने ही से क्या लाभ है? इस दशा में धर्म-विधान और विद्वत्ता भी किस काम की? चाहे आदमी नीच जाति का ही क्यों न हो, यदि उसका हृदय पवित्र है, ईश्वर पर भक्ति है, सभी प्राणियों को आत्मवत् मानता है, अपने और दूसरे के बच्चों में कोई भेद नहीं देखता, तथा सत्य-प्रेमी है, तो निस्सन्देह वह महान है और ईश्वर भी उस पर सदा सन्तुष्ट रहेगा। यदि मनुष्य का ईश्वर पर विश्वास है और समस्त मानव-जाति पर प्रेम है, तो उसकी जाति के सम्बन्ध में कोई विचार नहीं करना चाहिए। ईश्वर के दरबार में जात-पाँत का कोई भेद नहीं। उसकी नज़र में कोई बड़ा और छोटा नहीं।"

हठी और धर्मान्ध ब्राह्मणों पर साधु चोखामेला के तात्विक उपदेशों का कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने वहाँ के मुसलमान कर्मचारी के सामने नालिश कर दी। मदान्ध शासक ने फ़तवा दे डाला कि चोखामेला को बँधवा कर, बैलों के द्वारा खिंचवा कर मार डाला जाय! आख़िरश ईश्वर ने अपने भक्त की रक्षा की। चोखामेला बँधा हुआ ज़मीन पर पड़ा रहा, परन्तु बैल उसको घसीटने के लिए टस से मस नहीं हुए! अत्याचारी ब्राह्मण इस घटना से बहुत ही निराश हुए।

महाराष्ट्र के सन्तों में बहिराम भट्ट की कथा भी बड़ी मनोरञ्जक है। वे शास्त्री थे। सनातनधर्म में जब उन्हें शान्ति न मिली, तब उन्होंने एकेश्वरी मत से अपने हृदय को सन्तुष्ट करने के लिए मुसलमान-धर्म ग्रहण कर लिया। परन्तु वहाँ भी उन्हें शान्ति न मिली, इससे वे फिर सनातनधर्मी बन गए। इस प्रकार बार-बार के धर्म-परिवर्तन से मुसलमान और ब्राह्मण दोनों ही शास्त्री महोदय की निन्दा करने लगे। अब शास्त्री जी ने अपने आपको मुसलमान और हिन्दू कहना ही छोड़ दिया। उन्होंने ब्राह्मणों से कहा कि मैं मुसलमान बन गया हूँ, मेरी मुसलमानी भी हो चुकी है, यदि मुझे ब्राह्मण बनाना चाहते हो तो बना लो। इसी तरह उन्होंने मुसलमानों से कहा कि मेरे कान में छेद हैं, उन्हें बन्द कर दो। जब तक मेरे कान के छेद बन्द न होंगे, तब तक मैं मुसलमान नहीं हो सकता। असल बात यह है कि बहिराम भट्ट तत्वदर्शी थे, वे हिन्दू-मुस्लिम भेद-भावना की सङ्कीर्ण परिधि के पार पहुँच चुके थे।

इस प्रकार इन महात्माओं के प्रभाव से महाराष्ट्र में लोगों के रहन-सहन और स्वभाव में बहुत अन्तर पड़ा। जात-पाँत के बन्धन ढीले पड़े। सन्तों की उदार शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि धार्मिक क्षेत्र में जाति का महत्व बिलकुल नहीं रहा। धार्मिक और

सामाजिक बातों में मनुष्य मात्र की समानता के भावों का विकास हुआ।

दक्षिण भारत में आज भी समाज में ब्राह्मणों की अखण्ड सत्ता अपने पैर जमाए हुए है। यदि ब्राह्मण के रास्ते में चाण्डाल जा पहुँचे, तो उसकी परछाईं से वह मार्ग अपवित्र हो जाता है! 'पञ्चम' लोगों को अब भी ऊँची जाति के लोग जी भर कर ज़लील कर लेते हैं। परन्तु महाराष्ट्र में ऊँच-नीच की इस सङ्कीर्ण भावना का नाम तक नहीं रह गया है। वहाँ के 'शिवाजी उत्सव,' 'गणेशोत्सव' आदि राष्ट्रीय और धार्मिक मेलों में बिना किसी ऊँच-नीच की भावना के सभी जातियों के लोग प्रेम से भाग लेते हैं। बड़ी-बड़ी धार्मिक यात्राओं में अन्तिम दिन सब लोग समान भाव से 'गोपाल काला' नाम का प्रसाद पाते हैं। यूरोप की तरह, महाराष्ट्र में भी इन विचारों का नाश हो गया कि 'ईश्वर और मनुष्य के बीच में पुजारी ही मोक्ष प्राप्त करा देने वाला आवश्यक साधन है।' वहाँ अब समाज में इस विचार का नाम तक नहीं रह गया कि ब्राह्मण जाति को ईश्वर ने ही श्रेष्ठ बनाया है, इसलिए अन्य जातियों को उसकी पूजा और सेवा करनी ही चाहिए। उक्त सन्तों के उपदेशों से दिन पर दिन महाराष्ट्र-समाज में यह भाव जमता गया कि हीन जाति में जन्म लेने पर भी, ईश्वर पर दृढ़ भक्ति और प्रेम रखने से मोक्ष-प्राप्ति में कोई बाधा नहीं पड़ती।

महाराष्ट्र के महात्माओं को व्यर्थ के तप, उपवासादि तथा आजीवन यात्रा से शरीर को कष्ट देकर जीर्ण-शीर्ण बना लेना पसन्द नहीं था। वे यह भी नहीं चाहते थे कि कोई अद्भुत चमत्कार की शक्ति प्राप्त करने के लिए अत्यन्त कठोर नियमों का पालन करके योग किया जाय। इन सब बातों को छोड़ कर उन्होंने तो केवल अन्तःकरण की शुद्धि और भक्ति ही पर ज़ोर दिया है। भक्ति और योग की स्पर्धा के उदाहरण के लिए नीचे लिखी घटना बड़ी मनोरञ्जक है:—

एक बार चाङ्गदेव अपनी योग-शक्ति के बल से एक बाघ पर बैठ कर, तथा साँपों का कोड़ा अपने हाथ में लिए हुए ज्ञानदेव से मिलने गए। ज्ञानदेव महाराज ने एक दीवार पर बैठ कर उसे चला दिया। इससे चाङ्गदेव का सारा घमण्ड दूर हो गया। इसी तरह एक बार ज्ञानदेव ने योगबल से सूक्ष्म शरीर धारण कर एक गहरे कुएँ का सारा पानी पी लिया। इस पर नामदेव ने अपनी भक्ति के बल पर उस कुएँ में इतना पानी भर दिया कि वह ऊपर बहने लगा और पथिकों को सहज ही में ख़ूब पानी मिलने लगा।

महाराष्ट्र के महात्माओं के चरित्र की बड़ी ज़बर्दस्त ख़ूबी यह थी कि उनमें से अधिकांश आजीवन गृहस्थ बन कर ही रहे। एकनाथ महाराज आजीवन अपने परिवार के साथ रहे। तुकाराम और नामदेव भी अपने परिवार के साथ रहते थे। यही हाल बोधले बाबा, चोखामेला, दामजी पन्त, भानुदास आदि सन्तों का था। असल बात यह है कि उस समय के महात्माओं को गृहस्थाश्रम की पवित्रता अच्छी तरह से मालूम थी। प्रायः लोग यह समझ लेते हैं कि गृहस्थ-आश्रम का त्याग कर देने से संसार में दुःख, शोक, चिन्ता आदि का नाम तक न रहेगा। परन्तु महाराष्ट्र के महात्माओं ने अपने पुण्य चरित्र से लोगों में फैले हुए इस भ्रम का निराकरण कर दिया। उन्होंने लोगों को समझाया कि झञ्झटों से घबरा कर महज़ गृहस्थी की ज़िम्मेदारी छोड़ बैठने, तथा गेरुआ कपड़े रँग कर, द्वार-द्वार पर भीख माँगते रहने का नाम संन्यास नहीं है, बल्कि सच्चे अर्थ में गीता में कहे गए भगवान कृष्ण के शब्दों में संन्यास का भाव है:—

"काम्यानां कर्मणा न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।"

अर्थात्—"सकाम कर्मों के त्याग को ही, पण्डित लोग संन्यास कहते हैं।"

महाराष्ट्र की साधु-स्त्रियों के चरित्र भी बहुत ही उज्ज्वल और आकर्षक थे। देवताओं में उनकी श्रद्धा और भक्ति अपूर्व थी। साधु स्त्रियों के सम्बन्ध में महाराष्ट्र के भक्ति-साहित्य में अनेक आख्यायिकाएँ प्रचलित हैं। उनसे पद-पद पर उन देवियों के दिव्य चरित्रों, तप-निष्ठा, भक्ति आदि सद्गुणों का परिचय मिलता है। इन सब बातों से स्पष्ट है कि महाराष्ट्र में स्त्री-पुरुष दोनों ही के निर्मल हृदयों में धार्मिक भावों की जागृति हो रही थी। समाज में सब जगह नीति और सदाचार के ऊँचे सिद्धान्त व्यावहारिक जीवन को ऊँचा उठाने के लिए अमल में लाए जाते थे। असल बात यह है कि प्राचीन काल की वैराग्य-प्रणाली पर, सर्वसाधारण के हित के

लिए, सदाचार, धर्म और नीति के व्यावहारिक सिद्धान्तों की यह एक अपूर्व विजय थी।

प्राचीन पण्डितों को अपने पाण्डित्य का बड़ा गर्व था। उनमें से बहुतों ने व्यवस्था दे रक्खी थी कि स्त्री और शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। मानो ब्राह्मणों ने ही वेदों के ज्ञान का ठेका ले रक्खा था! महाराष्ट्र के महात्माओं ने इस निन्दनीय ढङ्ग के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की और देशी भाषा में गद्य और पद्य साहित्य की अनेक पुस्तकें रच डालीं, जिससे साधारण से साधारण पढ़े-लिखे वे स्त्री-शूद्र तक वेद-वेदाङ्ग के अखण्ड ज्ञान-भाण्डार से लाभ उठाने में समर्थ हो सके, जो संस्कृत भाषा से बिलकुल अनभिज्ञ थे। कुछ सन्तों ने काव्य-ग्रन्थ लिख कर मराठी साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दिया। भक्ति-भावों से परिपूर्ण तुकाराम के अनूठे अभङ्गों को पढ़ने से आज भी हृदय आनन्दातिरेक में उमड़ने लगता है। वे अभङ्ग मराठी साहित्य की सचमुच अमर चीज़ हैं।

सबसे पहले ज्ञानदेव ने मराठी भाषा द्वारा सर्वसाधारण में आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार का श्रीगणेश किया। इसके बाद एकनाथ, रामदास, नामदेव, तुकाराम, वामन पण्डित, मुक्तेश्वर, श्रीधर, मोरोपन्त आदि ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। अपनी भाषा में उन्होंने वेदों और शास्त्रों का अनुवाद नहीं किया, इसलिए कि बुद्ध की धार्मिक क्रान्ति के कारण, लोगों में वेदों और शास्त्रों की अपेक्षा रामायण, महाभारत, भागवत और गीता का प्रचलन अधिक हो चला था। इसी कारण इन ग्रन्थों के मराठी भाषा में अनुवाद करके सन्तों ने उन्हें साधारण आदमियों के लिए सुगम बना दिया। मूर्ख पण्डितों ने क्रोध में भर कर महात्माओं द्वारा मराठी भाषा में लिखे गए ग्रन्थों को पानी में फेंक दिया। कहते हैं कि महात्माओं के तप के प्रभाव से वे ग्रन्थ-रत्न पानी पर उतराने लगे। अब उनका पहले से भी अधिक प्रचार हो गया।

वामन पण्डित संस्कृत साहित्य के धुरन्धर विद्वान थे। वे संस्कृत के सिवा किसी दूसरी भाषा में बोलना और लिखना पाप समझते थे। परन्तु समर्थ गुरु रामदास ने उनका भ्रम दूर कर दिया। कहा जाता है कि पण्डितों का मिथ्या अभिमान दूर करने के लिए एक बार ज्ञानदेव जी ने अपने तप-बल से भैंसे के मुख से वेद का पाठ करवाया! जो लोग वेद का अर्थ न समझ कर तोते की तरह उसे रट लेते थे, उनकी दयनीय दशा का दृश्य इस घटना में भली-भाँति दिखाया गया था। महात्माओं ने महाराष्ट्र में धर्म-प्रचार का काम देशी भाषाओं के ही द्वारा किया। इस काम के लिए, साधारण आदमियों के हृदय तक पहुँचने के लिए उन्होंने संस्कृत भाषा को अधिक उपयोगी नहीं समझा। यही कारण है कि भारत में महात्माओं के उद्योग से देशी भाषाओं का ख़ूब प्रचार हुआ और साथ ही जन-साधारण की भी धार्मिक और सामाजिक उन्नति हुई।

योगियों का अनुभव है कि समाधि से उनका ईश्वर के साथ तादात्म्य हो जाता है। परन्तु नामदेव, तुकाराम, एकनाथ और ज्ञानदेव को बहुत प्रयत्न करके, ईश्वर का थोड़ी देर तक दर्शन करना पसन्द नहीं था, बल्कि वे सदा ईश्वर के पास रहने का अनुभव करते थे। इस प्रकार प्रति क्षण के ईश्वर-दर्शन से उन्हें जो आनन्द होता था, उसे वे योगियों के ब्रह्मानन्द से भी अधिक समझते थे। प्रतिदिन ईश्वर के दर्शन करने से हृदय में आनन्द का जो स्रोत उमड़ता है, वह वर्णन की नहीं, किन्तु अनुभव करने की चीज़ है। हमारे साधु-महात्माओं का केवल यही एक वैभव था। उनके जीवन का यही एक सहारा था। महात्माओं के प्रभाव से ऊँच-नीच, स्त्री-पुरुष सभी इस आनन्द को प्राप्त करने में अपना जीवन लगा देते थे।

महात्माओं के उपदेशों के प्रभाव से लोगों में ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध की जानकारी बढ़ने लगी। ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने के लिए लोग भक्ति को ही सबसे सुगम साधन समझने लगे। वैष्णवों की पूजा का आधार तो केवल भक्ति पर ही निर्भर था। महीपति के लिखे हुए सन्त-चरित्रों में वाह्य पूजा-उपचार, ज्ञान-ध्यान की अपेक्षा भक्ति-भाव और श्रद्धा ही मुख्य ठहराई गई है। महाराष्ट्रीय सन्तों के उपदेशों का निष्कर्ष यह है—"वाह्य पूजा-पाठ का सम्बन्ध तो केवल हमारे मन और शरीर ही से होता है, किन्तु भक्ति का सम्बन्ध सीधा ईश्वर से होता है। परमेश्वर तो भाव का भूखा है। ईश्वर की इच्छा के हम पालने वाले हैं। हम बिलकुल ईश्वर के अधीन हैं। हमारा अपना कुछ भी नहीं है। यही निष्काम भक्ति हमारा यज्ञ, तप और

दान है। ईश्वर और उसकी सृष्टि, अर्थात् प्राणी मात्र पर प्रेम रखना ही जीव का परम धर्म है।"

एक बार नामदेव महाराज कुल्हाड़ी से एक वृक्ष की छाल काट रहे थे। कुल्हाड़ी मारने पर वृक्ष से ख़ून बहने लगा। इस पर महात्मा को बड़ा दुःख हुआ। वृक्ष के दुःख का अनुभव करने के लिए उन्होंने कुल्हाड़ी से अपने कन्धे पर घाव कर लिया। इसी प्रकार सन्त-चरित्र की एक घटना और कही जाती है। शेख़ मुहम्मद के पिता ने उनसे क़साई का व्यवसाय करने का अनुरोध किया। उन्होंने पहले अपनी ही उँगली को छुरी से काट लिया, इसलिए कि दूसरे प्राणियों की हिंसा के कष्ट का उन्हें स्वयं अनुभव हो। उस दुःख का अनुभव हो जाने पर उन्होंने क़साई का काम छोड़ दिया और जिस दुनिया में अपना पापी पेट पालने के लिए दूसरों को सताना पड़ता है, उससे वे एकदम विरक्त हो गए। महात्मा तुकाराम के घर वालों ने उनसे कहा कि पक्षियों से खेत की रखवाली कर दिया करो। जब वे खेत पर गए तब उन्हें देख कर पक्षी उड़ गए। वे सोचने लगे कि मेरे किसी अपराध से पक्षी उड़ गए!

उक्त सन्तों की उदारता और स्वार्थ-त्याग की बातें साधारण आदमी के दिमाग़ को अनहोनी सी जँचेंगी, और उनमें विश्वास भी नहीं होगा। परन्तु यदि उन सन्तों के उज्ज्वल और आदर्श चरित को गहराई से अध्ययन किया जाय, तो उनके भक्तिपूर्ण स्वार्थ-त्याग के कामों की सचाई में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता।

समर्थ गुरु रामदास गले में झोली डाल कर अलख जगाते हुए महाराज शिवाजी के महलों के नीचे जा पहुँचे। उन्होंने द्वार पर जाकर 'हर-हर समर्थ' की ध्वनि की। यह ध्वनि शिवाजी के कानों में पहुँची। सच्चे गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में बड़ा आकर्षण होता है। वे गुरुजी की आवाज़ को पहचान कर तुरन्त ही दौड़ आए। इस बात का उन्हें बड़ा असमञ्जस था कि गुरु की झोली में भिक्षा के रूप में क्या डालें। तत्क्षण ही उन्होंने काग़ज़ के एक टुकड़े पर सारा राज-पाट लिख कर डाल दिया। समर्थ गुरु ने इस बात पर आपत्ति करते हुए कहा—"सन्तों को राज-पाट से क्या काम है? उनके लिए तो एक मधुकरी ही काफ़ी है। राज तो 'शिब्बा' के ही बाँट में आया है। हिन्दू-धर्म, गो-ब्राह्मण, प्रजा और सन्तों की रक्षा के लिए तू ही मराठा राज्य के सिंहासन पर आसीन हो!" परन्तु समर्थ गुरु के इस प्रकार अनुरोध करने पर भी शिवाजी किसी तरह राज्य करने के लिए राज़ी न हुए। इस दशा में उस समय यह विवाद दूर करने के लिए समर्थ गुरु ने शिवाजी को आदेश दिया—"अच्छा, राज्य हमारा ही सही, तू हमारी ओर से मन्त्री बन कर काम कर!" कहते हैं कि उस दिन से शिवाजी फिर कभी गद्दी पर नहीं बैठे। गद्दी पर समर्थ गुरु की खड़ाऊँ रक्खी जाती थीं और शिवाजी मन्त्री के आसन पर बैठ कर राज-काज किया करते थे। उसी दिन से एक संन्यासी के राज के चिह्न-स्वरूप भगवा झण्डा मराठा राज्य की पताका के रूप में काम में लाया जाने लगा। आज भी महाराष्ट्र भर में धार्मिक और राष्ट्रीय कामों में समर्थ गुरु के भगवे रँग के झण्डे की पूजा की जाती है।

इस प्रकार एक नहीं, बीसियों उदाहरण इस बात के पेश किए जा सकते हैं कि उक्त सन्तों के चरित्र में स्वार्थ, प्रलोभन, ईर्षा-द्वेष आदि बातों की गन्ध तक नहीं थी और उनका समस्त जीवन परोपकार और समाज-सेवा में ही बीता। उन्होंने अपने ढङ्ग से समाज में नीति, धर्म, सदाचार आदि सद्गुणों का प्रचार किया और लोगों को सांसारिक प्रलोभनों से ऊँचा उठा कर उन्हें परोपकार की ओर प्रेरित किया।

उस समय देश के मुसलमान शासकों की कट्टरता और जातीय विद्वेष की नीति से हिन्दू-मुसलमानों में सङ्घर्षण की भावना बलवती हो गई थी। सन्तों के प्रचार के कारण हिन्दुओं की सामाजिक कमज़ोरियाँ दूर हुईं और उनमें अपने आत्मोद्धार के लिए सामूहिक ढङ्ग से सोचने और अपनी मान-मर्यादा के लिए मर मिटने की भावना पैदा हुई। आरम्भ में हिन्दू-मुसलमानों में बहुत सङ्घर्षण हुआ। सन्तों ने बड़ी बुद्धिमानी से उस समय हिन्दू जाति को उस सङ्कट से बचाया, जो विधर्मियों की दूषित नीति के कारण उपस्थित हो गया था। विधर्मी शासकों के सङ्घर्षण में, अन्त में महाराष्ट्र के महात्मा ही विजयी हुए। उन्हें जातीय विद्वेष की विद्रोह-वह्नि को बुझा कर सर्वसाधारण में राम-रहीम की भेद-भावना से परे एक ईश्वर की भक्ति का प्रचार करने में बहुत कुछ सफलता मिली। हिन्दू-मुसलमानों में स्थायी मेल पैदा करने के लिए उन्होंने जो उद्योग किए, वे आज भी

इतिहास में सुनहले अक्षरों में चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं। फिर भी मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता पूरी तरह दब नहीं सकी। वह कुछ कमज़ोर ज़रूर पड़ गई।

महाराष्ट्र में महात्माओं के धार्मिक आन्दोलन का ज़ोर पन्द्रहवीं शताब्दी से, अर्थात् ज्ञानदेव के जन्मकाल से, गत शताब्दी के अन्त तक, बराबर रहा। इसी आन्दोलन के कारण जनता को देशी भाषा का बहुमूल्य साहित्य मिला। जात-पाँत के भ्रामक विचारों का ज़ोर कम हुआ। शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करके अपने आपको उन्नत बनाने तथा समाज में समान अधिकारों का उपयोग करने का अवसर मिला। उन्हें ब्राह्मणों के बराबर बैठने में कोई रुकावट न रह गई। सन्तों के धार्मिक आन्दोलन के फल-स्वरूप पारिवारिक पवित्रता बढ़ी और स्त्रियों को अपनी हीनावस्था से उबर कर उन्नति करने का सुयोग प्राप्त हुआ। हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ाने में भी यही आन्दोलन सहायक हुआ। इन सन्तों में शेख़-मुहम्मद ऐसे ऊँचे विचार के मुसलमान साधु भी शामिल थे। उनकी प्रेरणा से बहुत से मुसलमानों ने हिन्दू-धर्म की दीक्षा ली थी। शेख़ मुहम्मद के ऐसे मुसलमान अनुयायी आज भी महाराष्ट्र में बहुत हैं। वे लोग रमज़ान और एकादशी का व्रत रखते हैं। सत्यनारायण की कथा बड़ी भक्ति से सुनते हैं। इन्हीं सन्तों के उद्योग से समूचे महाराष्ट्र की आचार-शक्ति और विचार-शक्ति का विकास हुआ और लोगों के दिमाग़ों में विदेशी शासन की जगह सब जातियों के सम्मिलित उद्योग के फल-स्वरूप एक राष्ट्रीय 'स्वराज्य' स्थापित करने की बात सूझी। इन्हीं सन्तों की प्रबल प्रेरणा ने मराठों को, औरङ्गज़ेब ऐसे मदान्ध और स्वेच्छाचारी सम्राट की छाती पर मूँग दलने के लिए, एक ऐसा विशाल और सुदृढ़ हिन्दू साम्राज्य खड़ा करने को उद्यत किया, जिसके लिए मराठों को छोड़ कर उस समय देश भर में और कोई जाति तैयार ही नहीं थी। महाराष्ट्र की धार्मिक हलचल की इन्हीं सब बातों में उस 'महाराष्ट्र-धर्म' का सार बीज-रूप में मौजूद है, जिसका पालन करने के लिए समर्थगुरु रामदास ने शिवाजी के लड़के सम्भाजी को प्रेरित किया था। समर्थगुरु ने सम्भाजी से स्पष्ट कहा था—

"मराठा तितुका मेलवावा, महाराष्ट्र धर्म बाढ़वावा।"

अर्थात्—"जहाँ कहीं जितने मराठे हों, उन सबका सङ्गठन करो और महाराष्ट्र-धर्म की वृद्धि करो।"

महात्माओं का महाराष्ट्र-धर्म राजनीति-प्रधान था। महाराज शिवाजी ने युवावस्था ही में महात्माओं के चलाए हुए महाराष्ट्र-धर्म के ऊँचे तत्व को हृदयङ्गम कर लिया और देश में जातीय जीवन की ज्योति जगा कर एक ऐसा हिन्दू साम्राज्य खड़ा कर दिया, जो अपनी राजनैतिक ख़ूबियों के कारण इतिहास में अपना सानी नहीं रखता। उस मराठा राज्य की आधार-शिला सचमुच नीति, धर्म, और सदाचार के विशद सिद्धान्तों पर रक्खी गई थी। वह सचमुच मराठों का 'स्वराज्य' था। छोटे-बड़े, ऊँच-नीच सभी लोगों ने अपने हृदय का रक्त देकर उस 'स्वराज्य' की अमर बेलि को सींचा था। मराठों के उस 'स्वराज्य' की स्थापना, महाराष्ट्र के महात्माओं के उस 'महाराष्ट्र-धर्म' को सफल बनाने ही के लिए हुई थी, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। सचमुच उक्त सन्तों ही के प्रताप से महाराष्ट्र में राष्ट्र की एकता का भाव पैदा हुआ और लोक-हित की भावना फली-फूली। उस कठिन समय में देश के सार्वजनिक जीवन को, उन महात्माओं के उद्योग से ही बल मिला था, जब कि देश की आत्मा मृतवत् पड़ी हुई थी, और हिन्दू-धर्म की नाव, बिना चतुर केवट के अज्ञान और आपसी फूट की चट्टान से टकरा कर डूबने जा रही थी! इसी कारण देश के जातीय जीवन के इतिहास में महाराष्ट्र के महात्माओं के उद्योग सदा सुनहले अक्षरों में चमकते रहेंगे।

⁂

"सच्चरित्र पुरुष का संक्षिप्त लक्षण इतना ही है कि उसमें सत्य-प्रियता, शिष्टाचार, विनय, परोपकारिता और चित्त की विशुद्धता, ये गुण पाए जायँ, शेष जितने गुण हैं वे सब इन्हीं गुणों के अन्तर्गत हैं।" —ज्ञानेन्द्र मोहनदास

⁂

"बातचीत प्रिय हो, पर अच्छी न हो; चुहल की हो, पर बनावट लिए न हो; स्वच्छन्द हो, पर अश्लील न हो; विद्वत्तापूर्ण हो, पर दम्भयुक्त न हो; अनोखी हो, पर असत्य न हो।"

—शेक्सपीयर

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

उधर यूरोपीय महासमर आरम्भ हुआ और इधर भारत में राष्ट्रीयता बढ़ने लगी। १९१५ में श्रीयुत गोखले और सर फ़िरोजशाह मेहता का देहान्त हो गया, लेकिन सन् १९१४ में लोकमान्य तिलक जेल से छूट चुके थे और उसी समय श्रीमती एनी बेसेन्ट भी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए भारतीय आन्दोलन में सहायता देने लगी थीं। सन् १९१५ में बम्बई में कॉङ्ग्रेस तथा मुस्लिम-लीग दोनों के अधिवेशन हुए। इससे पूर्व सन् १९१५ में ही भारत-सचिव लॉर्ड क्रू इस देश को चेतावनी दे चुके थे कि "भारतीयों को औपनिवेशिक शासन के स्वप्न देखना छोड़ देना चाहिए। यह स्वप्न अभी बहुत समय तक सार्थक नहीं हो सकेगा।" उदारचेता लाट साहब की इस अमूल्य शिक्षा को हिन्दुस्तानियों ने न मालूम क्यों नहीं माना। एनी बेसेन्ट ने एक स्वराज्य-योजना तैयार की और मुस्लिम-लीग तथा कॉङ्ग्रेस ने इस पर विचार कर रिपोर्ट करने के लिए एक कमिटी बिठाई। इस अधिवेशन में तुर्की और ब्रिटेन के युद्ध पर खेद प्रकट किया गया था।

सन् १९१६ में राष्ट्रीय आन्दोलन और भी बढ़ा। युद्ध के समय इसको दबाए रखने के लिए सरकार ने कई क़ानून पास करवाए। इससे आन्दोलन दबा तो नहीं, परन्तु अधिक प्रबल हुआ। मक्के में शरीफ़हुसेन के विद्रोह के समाचार सुनने से मुसलमानों को क्रोध हुआ। उनको मालूम हो गया था कि अङ्गरेज़ सरकार इस विद्रोह में सहायक है। मुसलमान तुर्की से सहानुभूति दिखाते रहे। तिलक और एनी बेसेन्ट ने अखिल भारतवर्ष का दौरा किया और सितम्बर सन् १९१६ में "होमरूल लीग" की स्थापना की। इसके एक मास बाद बड़ी सभा के उन्नीस निर्वाचित सदस्यों ने सरकार को एक कैफ़ियत भेजी, जिसमें शासन-विधान में सुधार करने की माँग प्रकट की गई। कॉङ्ग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने "होमरूल"-योजना को स्वीकार कर लिया। तिलक का अपूर्व स्वागत हुआ और मुस्लिम-लीग के प्रचारक श्री० मुहम्मदअली जिन्हा ने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य पर बहुत ज़ोर दिया।

सन् १९१७ में भारत-सचिव मिस्टर मॉन्टेग्यू भारत में दौरा करने आए। उन्होंने इस बात की जाँच की कि शासन-विधान के अन्दर क्या हेर-फेर किए जावें। उसी साल कॉङ्ग्रेस और मुस्लिम-लीग ने मिल कर सुधार-सम्बन्धी अपनी व्यवस्था मॉन्टेग्यू के सामने पेश की, परन्तु वह स्वीकृत नहीं हुई। सन् १९१८ में अङ्गरेज़ सरकार जो कुछ भारतवर्ष को देना चाहती थी, वह दिया गया। उसी साल के कॉङ्ग्रेस ने उन सुधारों को अपर्याप्त समझ कर उनको अस्वीकृत कर दिया। महासमर की समाप्ति होने पर तुर्की के भाग्य का भी निपटारा होने वाला था। इस विषय में भी मुसलमान चिन्तित थे। साथ ही उधर सरकार लोकमत तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने के लिए रौलेट क़ानून बना चुकी थी, जिसके अनुकूल भाषण, सभा, प्रेस आदि की स्वतन्त्रता बिल्कुल कम हो गई थी और पुलिस तथा मैजिस्ट्रेटों की शक्ति बहुत बढ़ा दी गई थी। इसका विरोध क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, सबने एक स्वर से किया और काला क़ानून के नाम से यह प्रसिद्ध हुआ। इसकी परिभाषा करते हुए लोग कहा करते थे कि न अपील, न वकील, न दलील।

रौलेट क़ानून और तुर्की-भङ्ग के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता की वृद्धि तथा मुसलमानों में राष्ट्रीय भावों को जाग्रति हुई। इसका विस्तृत वर्णन अगले प्रकरण में किया जावेगा

स्वातन्त्र्य संग्राम

समर समाप्ति

३० अक्टूबर सन् १९१८ को तुर्की और युयुत्सु-मण्डल का युद्ध स्थगित हुआ और सन्धि की चर्चा होने लगी। उस समय मिश्र से फ़ारस तक अङ्गरेज़ों का प्रभुत्व था। और सब मुस्लिम देश किसी न किसी अंश में इनके अधीन थे। सब मुस्लिम देशों की दशा ऐसी हीन थी कि उनके पुनर्जीवन का कोई स्वप्न भी नहीं देख सकता था। इस्लाम की शक्ति विलीन होती हुई दिखाई देती थी। तुर्की इससे पहले ही क्षत-विक्षत हो चुका था। इस विशाल साम्राज्य के टुकड़े करने में अङ्गरेज़ों की नीति सफल हो चुकी थी। ईराक़ को अङ्गरेज़ों ने जीत कर फ़ैसल को उसका बादशाह बना दिया था। वास्तव में उसके स्वामी अङ्गरेज़ थे। फ़ैसल केवल उनके हाथ की कठपुतली था। अङ्गरेज़ अपने आपको ईराक़ के संरक्षक कहते थे। शरीफ़ हुसेन अङ्गरेज़ों की सहायता से विद्रोह करके हज्जाज का बादशाह बन गया था और यह देश एक स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया था। पलस्तीन पर अङ्गरेज़ों ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था और वे उसको यहूदियों का राष्ट्रीय निवास बनाने की योजना कर रहे थे। पलस्तीन के पास ही ट्रान्सजार्डन नामक एक छोटा सा राज्य अङ्गरेज़ों की अधीनता में स्थापित हो गया था, जिसका नाम मात्र का बादशाह अमीर अब्दुल्ला था। मिश्र भी अङ्गरेज़ों के क़ब्ज़े में था और उन्होंने फ़व्वाद को वहाँ का बादशाह बना रक्खा था। इस प्रकार तुर्की का विशाल साम्राज्य सङ्कुचित और शक्तिहीन हो गया था। ईरान में भी अङ्गरेज़ों का ज़ोर था और मिश्र, मोरक्को, अफ़ग़ानिस्तान आदि मुस्लिम राज्यों की शक्ति को यूरोपीय आततायियों ने प्रायः नष्ट सा कर डाला था। यही दशा भारतीय मुसलमानों की थी।

ऐसी अवस्था में कौन कह सकता था कि मुस्लिम देशों में फिर जाग्रति होगी और यूरोपीय लोग उनकी तलवार का लोहा मानेंगे। पर वास्तव में हुआ यह कि छः वर्ष के अन्दर ही तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली और शेष मुस्लिम देशों ने भी इस विषय में प्रबल प्रयत्न किए और अपूर्व बलिदान किया, जिससे यूरोपीय राष्ट्रों को अनुभव हो गया कि उनकी निरङ्कुश नीति एशियाई देशों में नहीं चल सकेगी। मिश्र, ईराक़, पलस्तीन आदि मुस्लिम देशों में भी यूरोपीय राष्ट्रों ने शासन का स्वरूप बदला और अपना प्रभुत्व कम किया।

तुर्की

युद्ध स्थगित होते ही ग्रेटब्रिटेन, फ़्रान्स और इटली की सेना ने क़ुस्तुन्तुनिया पर क़ब्ज़ा कर लिया और रूम सागर के पश्चिमी तट के प्रधान नगरों पर भी अधिकार जमा लिया। मित्र राष्ट्रों को विश्वास हो गया कि तुर्की हार गया। देश में नैराश्य और दैन्य छा गया। तुर्क लोग समझने लगे कि यह सब अल्लाह की लीला है। इस महासमर में तुर्की को भारी हानि हुई थी। उसकी लगभग साढ़े चार लाख सेना लड़ाई में कट गई थी और जनसाधारण को अनेक आर्थिक हानियाँ उठानी पड़ी थीं। इस विपत्ति को देख कर जर्मनी से मित्रता रखने वाले उसके नेता अनवर पाशा, तलाट पाशा और जमाल पाशा देश छोड़ कर भाग गए थे। सारे देश की नसें ढीली हो गई थीं। सुलतान मुहम्मद पञ्चम समर-समाप्ति से पूर्व ही मर चुका था। वर्तमान सुलतान मुहम्मद छठा अपने राजप्रासादों में बन्द था। वह एक प्रकार से विजेताओं का क़ैदी था। वे जो चाहें उससे करवा सकते थे।

विजय-विभाग में झञ्झटें

तुर्की की इस विपन्नावस्था में विजेता-सङ्घ जो चाहता सो कर सकता था, पर सन्धि-परिषद् में अनेक ऐसे उलझनदार प्रश्न उपस्थित हुए, जिसके कारण विजेता लोग तुर्की के प्रश्न को यथासमय हल नहीं कर सके। जब जर्मनी और ऑस्ट्रिया का निपटारा हो गया तो तुर्की का प्रश्न हाथ में लिया गया। इसमें अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। जिस समय युद्ध जारी था, ग्रेटब्रिटेन, फ़्रान्स, रूस तथा इटली में तुर्की के सम्बन्ध में चार गुप्त समझौते हो चुके थे। इन समझौतों के अनुसार तुर्की राज्य को इन चारों राष्ट्रों में विभक्त करना था। परन्तु इनमें से रूस सन् १९१८ में ही राज्य-क्रान्ति करके अलग हो चुका था और अपनी नीति बदल चुका था। इसलिए अब समझौते को पुनः दुहराना था और नया बटवारा निश्चित करना था। भारतवर्ष में

अपना राज्य चिरस्थायी और निर्विघ्न करने के लिए अङ्गरेज़ लोग चाहते थे कि मिश्र से अफ़ग़ानिस्तान तक जितना भी भाग उनके अधिकार में आ जाए उतना ही अच्छा। उनको सदैव यह भय रहता था और शायद अब भी रहता होगा कि तुर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान शक्तिशाली बन कर भारतीय मुसलमानों से मिल जावें और भारतवर्ष पर अधिकार जमा लें। इसलिए अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ इन मुस्लिम देशों को अपने चङ्गुल में फँसाए रखने का सदैव प्रयत्न किया करते थे। चर्चिल ने तो स्पष्ट अपना मत प्रकट किया था कि भारतवर्ष में यदि अङ्गरेज़ी साम्राज्य को सुरक्षित बनाना है, तो मिश्र से आसाम तक ग्रेटब्रिटेन का राज्य होना चाहिए। कुस्तुन्तुनिया यूरोप के लिए एशिया का फाटक है। नेपोलियन के समय से यूरोपीय राष्ट्र इसका महत्व समझने लगे थे और सदैव इस पर दाँत लगाए रखते थे। जिस समय महासमर बन्द हुआ, उस समय मिश्र, अरब और ईरान में अङ्गरेज़ों का प्रभुत्व था और कुस्तुन्तुनिया पर विजयी मित्रों को अधिकार था। परन्तु यह सब अस्थायी प्रबन्ध था। सन्धि-परिषद में यह निर्णय होना था कि यहाँ किस विजेता राष्ट्र का स्वामित्व स्थापित किया जावे। सन् १९१४ से पूर्व फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड में यह समझौता हुआ था कि मिश्र से पश्चिम की ओर अफ़्रीका के उत्तरी तट पर फ़्रान्स अपना अधिकार जमा सकता है और मिश्र में इङ्गलैण्ड अपना स्वामित्व स्थापित कर सकता है। इस फ़ैसले के अनुसार फ़्रान्स को पूर्व मुस्लिम देशों पर कोई अधिकार नहीं रह गया था, परन्तु युद्ध के समय में मित्र-मण्डल में जो नवीन गुप्त समझौते हुए, उनके अनुसार फ़्रान्स को पूर्वी मुस्लिम देशों पर पुनः अधिकार प्राप्त हो गए थे और राज-प्राप्ति तथा सामर्थ्य-वृद्धि की उसकी लालसा बढ़ गई थी। इटली सन् १९११ में त्रिपोली पर अपना राज्य जमा चुका था, पर समर-कालीन समझौतों के अनुकूल वह भी राज्य-विस्तार के लिए लालायित था। समझौते की शर्तें अस्पष्ट और अनिश्चयात्मक थीं और रूस के पृथक् हो जाने के कारण उनमें और भी उलझनें पैदा हो गई थीं।

युद्ध के समय से क्या इङ्गलैण्ड क्या फ़्रान्स, सबने गला फाड़-फाड़ कर प्रतिज्ञाएँ की थीं कि युद्ध का ध्येय है संसार में शान्ति स्थापित करना और परतन्त्र देशों को स्वतन्त्रता दिलाना। इन प्रतिज्ञाओं को सच्ची समझ कर ही अमेरिका का राष्ट्रपति विलसन भुलावे में पड़ गया था और अमेरिका समर में सम्मिलित हुआ था। मिश्र के निवासी इन प्रतिज्ञाओं की निस्सारता को समझ गए थे, लेकिन अरब, ईराक़ और पलस्तीन आदि की आँखें अभी नहीं खुली थीं। इन देशों में महासमर की समाप्ति के बाद प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना की प्रतिक्षण प्रतीक्षा की जा रही थी। इधर मरणासन्न देश स्वातन्त्र्य रसायन द्वारा पुनर्जीवित होना चाहते थे, उधर यूरोपीय राष्ट्र-रूपी गिद्ध अपनी दावत की तैयारी कर रहे थे। प्रत्येक विजयी राष्ट्र अधिक से अधिक हिस्सा प्राप्त करने के लिए इच्छुक था। और तीनों में फ़ैसला होना कठिन से कठिन होता जाता था। जब इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स एकमत हो जाते थे, तो इटली को विरोध होता था और इटली और फ़्रान्स के मिल जाने पर इङ्गलैण्ड को आपत्ति होती थी। इसी झञ्झट में लगभग एक वर्ष निकल गया।

यूनान का आक्रमण

इस अनिश्चयावस्था को देख कर यूनान के भी मुँह में पानी आने लगा। तुर्की राज्य में यूनानियों की एक बड़ी बस्ती थी। यूनान को इन लोगों के स्वत्व और स्वातन्त्र्य की रक्षा करने की चिन्ता एकाएक जाग्रत हो उठी। तुर्की की कमर टूट ही चुकी थी। यूनान ने यह अच्छा मौक़ा देखा और स्मरना पर आक्रमण कर दिया। विजेताओं ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि अपने आशीर्वाद के साथ यूनानी सेना को विदा किया। इङ्गलैण्ड और इटली ने पहले गुप्त रीति से और फिर प्रत्यक्ष यूनान को सहायता भी दी। सिसकते हुए रोगी का प्राणान्त करने के प्रयत्न शुरू हो गए। यूनानी सेना ने स्मरना पर क़ब्ज़ा जमा लिया। विजयोन्मत्त सैनिकों ने निरपराध नगर-निवासियों को बेरोक लूटना और मारना आरम्भ किया। सैकड़ों मनुष्यों का बात की बात में क़त्ल किया गया। इतने विजय से सन्तुष्ट न होकर यूनानी सेना को और भी आगे बढ़ाया गया और जिन भागों में यूनानी बस्ती नहीं थी, उन पर भी अधिकार जमाया जाने लगा। बल-मदान्ध यूरोपीय राष्ट्रों को यह कल्पना भी नहीं होती थी कि मरणासन्न तुर्की फिर पुन-र्जीवित होकर उनका सामना तथा आत्म-रक्षा कर सकेगा।

महासमर का तुर्की पर परिणाम

युद्ध-समाप्ति के बाद तुर्की पराजय के ज़ख़्मों की वेदना से कराह रहा था। अरब, सीरिया, ईराक़ और मिश्र को उससे अलग करके विजेता लोग समझते थे कि अब तुर्की के हाथ-पैर टूट गए और वह अपङ्ग हो गया। प्रत्यक्ष में सबको यही ज्ञात होता था और शायद तुर्की भी ऐसा ही अनुभव करने लगा था, परन्तु इस प्रत्यक्ष हानि के गर्भ से एक अपूर्व लाभ की उत्पत्ति हुई, जिसने पराजय को विजय में बदल दिया और मरणासन्न रोगी को हृष्ट-पुष्ट पहलवान बना कर पुनः रणाङ्गण में ला खड़ा किया। उसने आश्चर्यकारी पुरुषार्थ का परिचय देकर सम्पूर्ण सभ्य संसार में सम्मान प्राप्त किया। जिस समय तुर्की एक विस्तृत साम्राज्य था, तो उसमें मिश्र, अरब, यहूदी, तूरानी आदि कई क़ौमें सम्मिलित थीं। ये सब एक सम्राट् के अधीन अवश्य थीं, परन्तु भाषा, परम्परा, संस्कृति तथा सम्प्रदाय-भेद के कारण सब अलग-अलग थीं। तुर्की युवक-सङ्घ ने भी इन सबको एक सूत्र में बाँधने का यत्न नहीं किया। उसकी कोशिश रही तुर्की भाषा और तुर्की सभ्यता का आधिपत्य स्थापित करने की। इस कारण भेदभाव और भी बढ़ते गए और साम्राज्य की जड़ और भी खोखली होती गईं। महासमर के परिणाम-स्वरूप ग़ैर तुर्की मुल्क तुर्की राज्य से अलग हो गए तो अवशिष्ट तुर्की राज्य में ठोसपन आ गया। इस बचे हुए तुर्की राज्य में तुर्की की प्रधानता थी और वे सब इसको अपनी मातृभूमि समझते थे। इस भाग में भी ग़ैर तुर्की ईसाइयों की बड़ी-बड़ी मिल्लतें अर्थात् बस्तियाँ अवश्य थीं, परन्तु तुर्कों की संख्या इन लोगों से कई गुनी अधिक थी।

राष्ट्रीय जाग्रति

आततायी यूनान के नृशंस आक्रमण की ख़बरें अवशिष्ट तुर्की राज्य में घर-घर पहुँच गईं। इस आक्रमण को तुर्क लोग अपने शरीर का ज़ख़्म समझने लगे और लोमहर्षण मानव-वध तथा विपुल सम्पत्ति-हरण की कथाएँ सुन-सुन कर उनका ख़ून खौलने लगा। सम्पूर्ण देश में बदले के भाव जाग्रत हो उठे। देशभक्त तुर्क यूरोपीय आक्रमणकारियों के प्रति दाँत पीसने लगे और नवयुवक रणभेरी की ध्वनि सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। मरणासन्न रोगी बात की बात में ख़म ठोक कर खड़ा हो गया। गिद्ध लोग इधर-उधर बगलें झाँकने लगे। सुलतान ख़लीफ़ा अब भी विजेताओं के हाथ में था। क़ुस्तुन्तुनिया पर उनका अधिकार था। परन्तु जाग्रत तुर्की राष्ट्र को न सुलतान की चिन्ता थी और न राजधानी की अनिवार्य आवश्यकता। अब तुर्की राज्य तुर्कों का था, न कि सुलतान का। यूनानी सेना को तुर्की राष्ट्र-सेना का मुक़ाबला करना था, न कि सुलतान के भाड़े के टट्टू सिपाहियों का। नवयुवकों ने क़ुस्तुन्तुनिया की उपेक्षा करके अलग ही अपना सङ्गठन किया और अङ्गोरा नगर को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया। थोड़े समय में ही वहाँ एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की गई और मुस्तफ़ा कमालपाशा ने इस राष्ट्रीय जाग्रति का नेतृत्व ग्रहण किया।

कमालपाशा

मुस्तफ़ा कमालपाशा का जन्म सन् १८८० में सलोनिका में हुआ था। यहाँ जन्म से ही यह सैनिक वायु-मण्डल में पला और बचपन में जिधर गया उधर उसको सशस्त्र सैनिक क़वायद, तोपें आदि दीख पड़ीं। इन संस्कारों के कारण इसकी सैनिक प्रवृत्ति दृढ़ होती गई। यथानियम सैनिक-स्कूल तथा कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करके यह दमिस्क के रेजीमेण्ट का अफ़सर बना। अपनी युवावस्था में ही यह राष्ट्रीय भावों में रँग चुका था। २०वीं शताब्दी के आरम्भ में तुर्की में जो सुधार-आन्दोलन होने लगा था, उसमें यह ख़ूब भाग लेता था और १९०८ की राज्यक्रान्ति से पूर्व इसको जेल, देश-निर्वासन आदि दण्ड मिल चुके थे। एक बार फ़रार होकर भी यह अधिकारियों के पञ्जे से छूटा था। महासमर के समय उसने एक बार प्रभूत अङ्गरेज़ी सेना को आगे बढ़ने से रोक कर अपने सेना-चातुर्य का परिचय दिया। तुर्की-पराजय के दुखद समाचार कमालपाशा को पलस्तीन में मिले थे। वहाँ पर वह सेनानायक था। ख़बर पाते ही वह राजधानी में पहुँचा और अपने देश की रक्षा करने का उसने दृढ़ प्रण किया। क़ुस्तुन्तुनिया की पङ्गु सरकार ने उससे अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए उसको सेनानायक बना कर एशिया-माइनर में भेज दिया। इसी समय यूनानियों का आक्रमण हुआ और तुर्की में राष्ट्रीय जाग्रति हुई। कमालपाशा को अपना

जीवन सफल करने का अवसर मिला और तुर्की क़ौम को योग्य तथा अनुभवी नायक प्राप्त हुआ।

कमाल की तैयारी

यूनानी सेना ने स्मरना पर अधिकार जमाया। उसके दो मास बाद ही मुस्तफ़ा कमालपाशा ने एर्ज़िरम नगर में राष्ट्रीय नेताओं को निमन्त्रित करके देश-रक्षा के विषय में विचार किया और राष्ट्रीय सङ्घ नामक एक संस्था की रचना की। सितम्बर मास में फिर इस सभा का अधिवेशन हुआ और सभासदों की संख्या बढ़ाई गई। मुस्तफ़ा कमालपाशा कार्यकारिणी समिति का प्रधान निर्वाचित किया गया। राष्ट्रीय जाग्रति और कमालपाशा के व्यक्तित्व के कारण अच्छे-अच्छे प्रभावशाली लोग राष्ट्रीय पक्ष ग्रहण करने लगे। रूफ़्तीबे भूतपूर्व नौसेना-सचिव, बकीर सामीबे भूतपूर्व गवर्नर-जनरल एनातोलिया, अहमद रुस्तमबे भूतपूर्व तुर्की राजदूत आदि शक्तिशाली पुरुषों ने कमालपाशा का साथ दिया और राष्ट्रीय सङ्घ में सम्मिलित हो गए। अपना मन्तव्य तथा कार्यक्रम निश्चित करके सब नेताओं ने अङ्गोरा को राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र बनाया। राष्ट्रीय सेना का सङ्गठन किया जाने लगा और लोग धड़ाधड़ भरती होने लगे। तुर्की के दो परम योग्य सेनानायक इसके अध्यक्ष बनाए गए। क़ारा बकीर क़ियाज़मपाशा पूर्वी एनातोलिया में और अली फ़ौदपाशा पश्चिमी एनातोलिया में सेना लेकर पहुँचे। महारथियों ने अपने-अपने शङ्ख बजा दिए।

स्वातन्त्र्य-घोषणा

इधर यह हो रहा था, उधर पेरिस नगर में सन्धि-परिषद् का अधिवेशन हो रहा था। इससे तुर्की के प्रतिनिधि भी बुलाए गए थे, परन्तु उनकी सुनता कोई नहीं था। उन्होंने बहुत-कुछ यत्न किया कि उनकी बात भी सुनी जाए, परन्तु विजयी मित्रों ने उनको लिखा हुआ उत्तर दिया, जिससे निराश होकर वे वापस क़ुस्तुन्तुनिया में चले आए। इधर स्मरना के आसपास यूनान के और क़ुस्तुन्तुनिया में विजयी मित्रों के ज़ुल्म बढ़ने लगे। ख़लीफ़ा सुल्तान इन लोगों की अँगुलियों पर नाचने लगा। अनवरपाशा, जमालपाशा और तलातपाशा, जो समर-समय में राज-सचिव थे और समर-समाप्ति पर भाग कर अन्य देशों में चले गए थे, उनको पकड़ मँगाया और फाँसी पर लटका दिया। इसके ग्यारह दिन बाद ही कमालपाशा को बाग़ी क़रार दे दिया गया। विजयी मित्रों के इन क्रूर अत्याचारों के कारण क़ुस्तुन्तुनिया में भी स्थिति बदलने लगी। अक्टूबर सन् १९१९ में जो सुलतान का नया मन्त्रि-मण्डल बना, उसके प्रायः सब सचिव कमालपाशा के प्रयत्नों से सहमत थे। कमालपाशा ने अङ्गोरा की सभा से परामर्श करके राष्ट्रीय ध्येय और जनता के स्वत्वों को निश्चित किया और तुर्की राष्ट्र की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इस समय अङ्गोरा-सभा ने यह स्पष्ट प्रकट कर दिया कि जिन देशों में अरब लोगों की जन-संख्या सर्वाधिक है, वे अपना भविष्य स्वयं निर्धारित कर सकते हैं और थ्रेस आदि प्रदेश, जहाँ ग़ैर-तुर्की जनता अधिक है, वहाँ भी बहुमत से अपना भविष्य निश्चित किया जा सकता है। लेकिन इन देशों में अल्प-संख्यक तुर्कों को वही अधिकार होने चाहिए, जो तुर्क-प्रधान देशों में अरब आदि लोगों के होंगे। यह भी तय पाया कि तुर्की तुर्कों का है, उसकी उन्नति, विकास और सुधार करने का उनको पूर्ण अधिकार है और उसमें हस्तक्षेप करने वाले बाहरी लोगों को मार भगाने का तुर्की राष्ट्र को पूरा हक़ है।

इस घोषणा के पश्चात् अङ्गोरा-सभा को यह सूचना मिली कि यदि उसका अधिवेशन क़ुस्तुन्तुनिया में हो तो विजयी मित्र उसको स्वीकार कर सकते हैं। तदनुसार जनवरी सन् १९२० में अङ्गोरा-सभा का अधिवेशन तुर्की की प्राचीन राजधानी में हुआ और उपर्युक्त राष्ट्रीय समझौते को पार्लामेण्ट ने मान लिया। राष्ट्रीय आन्दोलन की पूर्ण विजय हो गई। देश की शासन-व्यवस्था के अनुकूल प्राचीन राजधानी में पार्लामेण्ट का अधिवेशन हुआ, उसने राष्ट्रीय ध्येय तथा समझौता स्वीकार किया। विजयी मित्रों ने भी इसका अनुमोदन किया, इससे अधिक सफलता और क्या होती?

(क्रमशः)

समस्त भारत की सर्व-प्रथम हिन्दू महिला दन्त-चिकित्सक (Dental Surgeon)

डॉक्टर (कुमारी) लीलावती, एल० डी० एस-सी०

[विस्तृत परिचय अन्यत्र देखिए]

सदा न काहू की रही प्रीतम के गल बाँह : चलती-फिरती रहत है, कभी धूप, कभी छाँह !

सन् १९०६ में—

सन् १९१६ में—

यह दोनों चित्र आइरिश बालिका मिस ऐलिस (सन् १९०६ में) के हैं, जिनसे भारतवासी (१९३२ में) मिसेज़ जाफ़रअली अथवा श्रीमती 'सावित्री देवी' के नाम से परिचित हुए हैं। आपको, कहा जाता है, श्री० यशपाल नामक एक पञ्जाबी विप्लवकारी युवक को आश्रय देने के अभियोग में ५ वर्ष का कठिन कारावास-दण्ड प्रदान किया गया है। आजकल आप लखनऊ-जेल में रक्खी गई हैं। आपको भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति तथा भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं से बड़ी सहानुभूति रही है। शीघ्र ही आपकी अपील इलाहाबाद के हाईकोर्ट में सुनी जाने वाली है। आपके इस भीषण दण्ड की निन्दा समस्त भारत के पत्रों में (जिसमें 'लीडर' भी शामिल है) हो चुकी है।
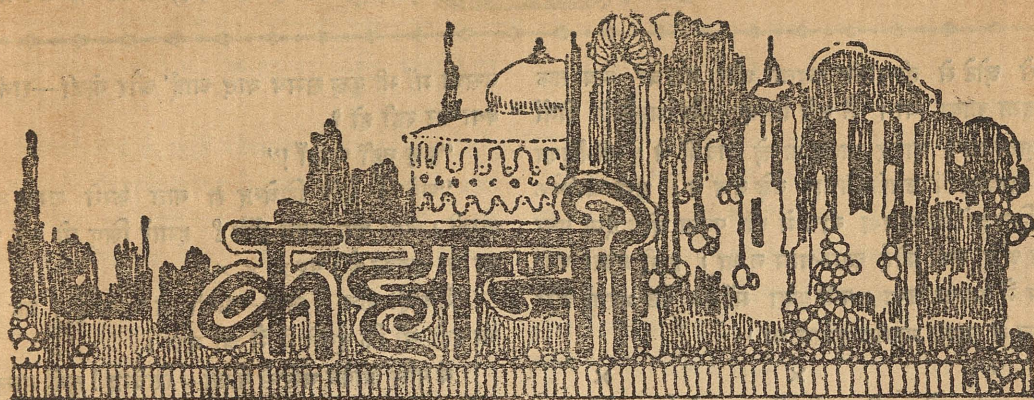
बन्दी

[श्री० नर्मदाप्रसाद जी खरे]

"रानी !"

"क्या है ?"

"तुम्हारा आज पढ़ने में मन क्यों नहीं लग रहा है ?"

"वैसे ही, कुछ सिर भारी है।"

"नहीं, कोई और बात है ?"

"नहीं-नहीं, और कोई बात नहीं।"

"फिर तुम उदास क्यों हो ?"

"नहीं, मैं क्यों उदास होऊँगी।"

"सच कह रही हो ?"

वह कुछ न बोली। आँखें डबडबा आईं। देखते-देखते उनसे कई बड़े-बड़े मोती पुस्तक पर टपक पड़े। मुझ पर बिजली सी गिरी। आज यह पहला अवसर था, जब मैंने उसे रोते देखा था। मुझे भी कुछ पीड़ा हुई और मैं आश्चर्य से पूछने लगा—रानी ! क्या बात है ! क्यों रोती हो ?

वह फिर भी कुछ न बोली। धीरे-धीरे उसने पुस्तक से आँख उठा कर बड़ी कठिनाई से एक बार देखा। आँखों में बड़े-बड़े मोती चमक रहे थे। अश्रु-धार मानो कपोलों की लाली को धोए देती थी। उसने कुछ क्षण बाद फिर पुस्तक पर आँखें गड़ा लीं। मैं बड़े असमञ्जस में पड़ा हुआ था। कहीं ठाकुर साहब ने देख लिया तो क्या कहेंगे। यही पढ़ाई होती है ! मैंने कुछ क्रोध और दुख से कहा—तो न बताओगी। योंही रोती रहोगी ? कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? मेरा भी तो कुछ ध्यान रक्खो रानी !

उसने मन्थर गति से सिर ऊपर उठाते और अतृप्त आँखों से मेरी ओर देखते-देखते कहा—अम्माँ जी अब पढ़ना बन्द करने वाली हैं। कल उन्होंने बाबू जी से कहा था, पर उन्होंने अभी कुछ उत्तर नहीं दिया है।

"क्यों, माँ जी को क्यों तुम्हारा पढ़ना अच्छा नहीं लगा ? कोई कारण भी तो होगा।"

"कहती हैं, लड़की विवाह-योग्य हो गई। अब मेरा आपके पास पढ़ना कई लोगों को सुहाता नहीं। आप और मेरे सम्बन्ध में × × ×"

मैंने देखा, ऐसा कहते हुए फिर उसकी आँखें सजल हो गईं। मेरे हृदय पर धक्का सा लगा। मैं अपने को सँभालता हुआ बोला—इसमें दुखी होने की कौन सी बात है ? न पढ़ना। ख़ूब तो पढ़ लिया। इसका यह अर्थ थोड़े ही है कि मैं तुम्हें पढ़ाने न आऊँगा तो घर में आ भी न सकूँगा।

मैं सब समझ गया। आज तक मैंने कभी यह साहस न किया था। पर आज न मालूम क्यों, उसके आँसू अपने हाथों से पोंछ दिए और दुख के समय में भी अज्ञात सुख का अनुभव किया।

रानी ठाकुर रामप्रतापसिंह की लड़की है। वे पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। उसका नाम रानी तो न था, पर मैं

उसे छोटे से ही रानी कहता और बराबर अब तक कहता आया था। मैं उसे हिन्दी और अङ्गरेज़ी दोनों पढ़ाता था। ठाकुर साहब अच्छे आदमी थे। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार बड़े उच्च थे। मुझे आर्थिक कठिनाइयों के कारण बीच में ही पढ़ना छोड़ देना पड़ा था और कहीं कोई काम-धाम न था। इसी प्रकार पढ़ा कर मैं अपना तथा अपनी वृद्धा माँ का पेट भरता और सुख से समय व्यतीत करता था।

× × ×

रानी मुझे बड़ी प्यारी थी। उसके लिए मेरे हृदय में स्थान था। मैं उसे और वह मुझे चाहती थी। लेकिन हम लोगों का प्रेम अभी इस सीमा तक नहीं पहुँच गया था कि उसका पढ़ना-लिखना बन्द करा देना पड़े। इसमें मुझे भी कोई आपत्ति न होनी चाहिए थी। क्योंकि अपने-अपने विचार तो हैं। ठाकुर साहब की इच्छा रानी का पढ़ना बन्द करने की न थी, पर पत्नी के अधिक ज़ोर देने पर उनके मन में भी बात जम गई और उन्होंने रानी का पढ़ना-लिखना बन्द करा दिया। मुझे तो उतना दुख न हुआ, पर उसे इससे बड़ा दुख हुआ। मैंने उसके बाद देखा और सुना कि रानी में बराबर परिवर्तन होता चला गया और फिर कभी उसे किसी ने हँसते-खेलते और गाते-बजाते नहीं पाया, बल्कि उदासी लिए, आँखों में आँसू भरे कुछ सोचते और जब-तब रोते पाया। भले ही मैं नित्य तो नहीं, पर कभी-कभी उसके यहाँ आता-जाता था—बात करता था—पर उतना खुल कर नहीं। उसे उदास और दुखी देख मुझे भी दुख होता था। मैं उसके परिवर्तन का कारण समझता था। पर क्या करता?

× × ×

कुछ लोगों को मेरा अब ठाकुर साहब के यहाँ जाना फूटी आँख भी न सुहाता था। जब मैं जाता तो काना-फूसी होने लगती और जब उससे कुछ बातचीत होती तो लोग घूर-घूर कर देखा करते। पर अभी तक किसी ने मुझसे एक शब्द भी कभी न कहा था।

सन्ध्या का समय था। वह छत पर बैठी कुछ सोच रही थी। हवा में उसकी साड़ी जब-तब उड़ने लगती थी। मैं बराबर सीधा उसके पास पहुँचा। वह कुछ सचेत हो गई। हम लोग बातचीत कर रहे थे कि उसकी माँ भी कुछ समय बाद आईं और बोलीं—रानी! क्या कर रही हो?

"कुछ नहीं अम्माँ!"

"अकेली बैठी शिवेन्द्र से बात करते शरम नहीं आती। लोग क्या कहते होंगे? हमारे लिए तो वह घर का सा लड़का है। पर × × ×"

मैंने ही बीच में कहा—अभी तो आया हूँ। वह तो जा रही थी कि इतने में मैं आ गया।

वे पास आकर धीरे से बोलीं—शिवेन्द्र! तुम्हें मालूम नहीं, दुनिया में कैसे-कैसे लोग होते हैं। उन्हें तिल का ताड़, धज्जी का साँप बनाते देर नहीं लगती। मैं सच कहती हूँ, चाहे तुम्हें बुरा भले ही लगे, पर अब तुम लोगों को इस प्रकार न मिलना-जुलना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम मेरे घर न आओ, रानी से बात न करो। सब कुछ करो; पर समय देख कर।

रानी मेरी ओर देख कर माँ के साथ अन्दर चली गई। मैं भी नीचे उतर आया। ठाकुर साहब से भी बात-चीत हुई। उनके व्यवहार में भी मैंने कुछ परिवर्तन पाया। अब मैं सीधा घर आया। आज मेरे हृदय को अधिक धक्का लगा। अब मुझे स्वयं रानी के यहाँ जाना अच्छा न लगता था।

× × ×

सच है, मनुष्य पर विपत्तियाँ एक साथ आती हैं। अभी मेरा रानी के यहाँ से पढ़ाना छूटा; जो रो-धोकर २५) रुपए मिल जाते थे वे छूटे। माँ बीमार हुईं और तीन महीने तक चारपाई पकड़े रहीं। न जाने कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, पर मैं अधीर न हुआ। माँ की अचानक मृत्यु ने मेरे धैर्य का बाँध तोड़ दिया। मैं फूट-फूट कर रोया। मुझ दुखिया का रहा-सहा सहारा भी आज टूट गया और मैं आज संसार में अकेला रह गया। रानी को जब माँ की मृत्यु-सूचना मिली, वह मेरी जीर्ण कुटिया में एक टहलनी के साथ आई। उसने मुझे धीरज बँधाया और अपने बड़े-बड़े आँसू भी टपकाए। मुझे आज उसके इतने दिनों बाद मिलने की कुछ प्रसन्नता हुई। ठाकुर साहब सहृदय थे, वे भी घर में आए और मुझे धैर्य बँधाया। पर मैं बड़ा दुखी था। माँ की मृत्यु दूबरे पर दो असाढ़ के समान आई। अब तक मुझे किसी का सहारा था, पर आज से मुझे अपना कहने

वाला संसार में कोई न दिखता था। यदि रहा हो तो ईश्वर जाने!

अब मैं रानी के यहाँ बिलकुल न जाता था। उससे दूर रहने में ही मुझे और उसे लाभ था। श्रावण में नगर से दो मील की दूरी पर एक मेला लगता है। उसे शारदा का मेला कहते हैं। मेरे मन में भी वहाँ जाने की इच्छा हुई और मैं वहाँ पहुँचा। साथ में कोई न था। अकेला एक चट्टान पर बैठा प्रकृति के वैभव के दर्शन कर रहा था कि मुझे रानी वहाँ अपनी एक सहेली और नौकर के साथ मिली। नौकर उसकी सहेली के साथ मन्दिर में प्रसाद चढ़ाने चला गया। आज हम लोगों ने अपना रोना रोया—दिल खोल कर बातचीत की। शायद हम लोगों की यही अन्तिम भेंट थी।

× × ×

रानी पढ़ी-लिखी थी। उसके विचार बड़े उच्च थे। वह प्रेम के आदर्श को समझती थी। देशभक्ति उसमें निहित थी। अब तक उसके वातावरण ने उसे प्रकट न होने दिया था। उसका विवाह निश्चित हो गया था। बारात आने वाली थी। बड़ी धूमधाम और आनन्द मनाया जा रहा था। ठाकुर साहब प्रसन्न थे।

बारात आ गई। पर अब तक, रानी वैसे ही उदास और दुखी बैठी हुई थी। ग्रन्थि-बन्धन का अवसर आया। अब रानी की खोज हुई। कहीं भी उसका पता न था। बड़ी खोज के बाद वह तो नहीं, उसका एक पत्र पलङ्ग पर तकिए के नीचे रक्खा मिला। उसमें लिखा था:—

"पूज्य पिता जी,

आज मैं वहाँ जा रही हूँ, जहाँ मुझे शान्ति मिलेगी, सुख होगा। देश की सेवा कर सकूँगी। अपने प्रेम को विश्व-प्रेम का रूप दे सकूँगी और उसके पुण्य-सलिल से अपनी आत्मा को पवित्र कर सकूँगी। मैं प्रणय-सूत्र में बँध कर अपने विशाल हृदय को सङ्कुचित नहीं करना चाहती। मुझे विश्वास है, आपको इससे तनिक भी दुख न होना चाहिए। यदि कभी अवसर मिला तो फिर मिलूँगी।

आपकी

—रानी"

दूसरे दिन रानी के घर से भाग जाने की ख़बर हवा सी सारे नगर में फैल गई। ठाकुर साहब ने आकर मुझे वह पत्र दिखाया। मुझे उसके इस पागलपन पर कुछ हँसी आई और साथ ही साथ दुख भी हुआ। सब लोग बड़े चकित हुए। कई लोगों ने मुझे इसका दोषी ठहराया। मैंने देखा, उस दिन पुलिस जब-तब मेरे घर के आस-पास पाई गई। ठाकुर साहब तो नहीं, पर कई लोगों को ऐसा विश्वास था कि रानी शिवेन्द्र के कहने से कहीं चली गई है। उसीके सहारे वह इतना साहस कर सकी।

× × ×

मैं भी अब तक न समझ सका था कि आख़िर है क्या रहस्य। ठाकुर साहब पर लोगों ने यह विश्वास जमा दिया कि मैं ही इस दुर्घटना की जड़ हूँ। अब ठाकुर साहब की जितनी मेरे प्रति सहानुभूति थी, धीरे-धीरे वह सब हवा हो गई और वे मेरे कट्टर शत्रु हो गए। इसका फल यह हुआ कि मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पुलिस के भूतों की घुड़कियाँ सहनी पड़तीं, गालियाँ सुननी पड़तीं और कभी-कभी अँधेरे-उजेले लाठियाँ भी खानी पड़ती थीं। मैं मन ही मन सोचा करता कि भगवान! किस पाप का बदला मुझे मिल रहा है। आर्थिक कठिनाइयों ने मेरे हृदय को सब प्रकार से चूर कर दिया था।

कहते हैं, मेरे ऊपर किए गए अनाचारों के कारण 'अज्ञात' नाम की देशसेविका के कुछ पत्र ठाकुर साहब को मिले, जिनमें उन पर अच्छी फटकार और मेरे ऊपर किए जाने वाले अत्याचारों का विरोध था। मैं अब बड़ी व्यग्रता से सोचा करता कि अज्ञात नाम की देशसेविका कौन है, जो मेरे पीछे मृत्यु को निमन्त्रण दे रही है। क्योंकि पत्रों में बड़ी कड़ी फटकार रहती थी।

मैं बड़ी आर्थिक कठिनाइयों में था। भोजन के भी लाले पड़े हुए थे। मैं जैसे अपना समय काटता था, वह मैं ही जानता था। लेने के देने पड़े हुए थे। कहीं कोई काम ही न मिलता था। कभी-कभी जीवन से इतनी ग्लानि होती थी कि आत्म-हत्या कर लूँ, पर साहस न होता था। दो दिन से ठीक-ठीक भोजन भी न किया था।

दूसरे दिन सवेरे ज्योंही मैं सोकर उठा कि अपने मिट्टी के घर की खिड़की में एक लिफ़ाफ़े पर दृष्टि पड़ी।

कौतूहल और जिज्ञासा से शीघ्र उसे खोल कर देखा—दस-दस रुपयों के बीस नोट तथा एक छोटा काग़ज़ का टुकड़ा था, जिसमें अज्ञात नाम की देशसेविका ने मेरी सहायता के लिए ये रुपए भेजे थे। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और अब मेरी श्रद्धा तथा प्रेम उस अपरिचिता की ओर और भी अधिक बढ़ा।

अब समय-समय पर बराबर उसके पत्र और इसी प्रकार की सहायता मिला करती, पर उसका पता अब तक न लगा पाया था। जिज्ञासा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। आख़िर है कौन यह अज्ञात नाम की देश-सेविका, जो मुझे सच्ची सहायता देती है।

बरसात के दिन थे। रिमझिम-रिमझिम पानी बरस रहा था। कभी चपला चमक जाती थी और बादल गरज जाते थे। मैं पढ़ते-पढ़ते सो गया। आज न मालूम क्यों रह-रह कर रानी का ध्यान आ रहा था। मेरे बिस्तर पर लेटते ही पानी मूसलधार बरसने लगा। वह कहता था, आज छोड़ मैं कल न बरसूँगा। अँधेरी रात थी और घर के आसपास बगीचा तथा आम के बड़े-बड़े वृक्ष रहने के कारण और भी तुमुल अन्धकार था। मेरी पलकें लग ही रही थीं कि किसी ने साँकल खटखटाई। मैं चौंक गया। जल्दी उठा और सोचने लगा, इतनी रात को ऐसे पानी में कौन आ गया! कुछ भय भी लगा। कमरे में प्रकाश था, फिर भी हृदय धड़क रहा था। मैंने पूछा—कौन?

कोई उत्तर न मिला, पर किसी के गिरने की धड़ाम से आवाज़ हुई। मैंने आतुरता से द्वार खोल दिया। देखा, कोई स्त्री विचित्र भेष में आहत पड़ी थी। धुँधले प्रकाश में ठीक पहचान न सका कौन है? पहिले तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इतनी रात को मेरे यहाँ यह स्त्री कैसे? पर मैं अधिक देर तक सोच-विचार न कर सका। पैर प्रकाश की ओर बढ़े। मैंने प्रकाश पास लाकर देखा, रानी! अरे यहाँ रानी कहाँ? यह कैसी दशा है। शरीर में एक-दो गहरे घाव थे, जिनसे रक्तस्राव हो रहा था। उसे मूर्च्छित उठा कर बिस्तर पर ले गया। उसे अब भी कुछ सुध न थी। शरीर पर से बरसाती अलग कर दी। अब तक मेरी आँखों में आँसू उमड़ आए थे। मैंने घावों को पोंछते और मुँह पर पानी के छींटे देते हुए पूछा—रानी! रानी!!

उसने कुछ क्षण बाद पलकें खोलीं और रुँधे कण्ठ से बोली—कौन × × × शिवेन्द्र! × × ×

"मेरी रानी! यह दशा कैसे हुई?"

"मैं अब अधिक देर तक न जी सकूँगी × × ×।"

"हा! × × ×"

"एक विपद्-ग्रस्ता को गुण्डों के हाथ से बचाने के समय मेरी यह स्थिति हुई। बच न सकी। वहीं आहत हुई। पुलिस को पता लग गया है। तुम क्यों मेरे साथ मृत्यु का आलिङ्गन करते हो। मरते-मरते तुम्हें एक बार देखने की लालसा थी, सो पूरी हो गई। मैं ही तुम्हारी अज्ञात नाम्नी देशसेविका हूँ।—शिवेन्द्र!"

उसने यह सब लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा। लाख सिर मारने पर भी मेरे आँसू न रुक सके। मैं नमालूम क्यों अपने आप रो पड़ा। उसके कपोलों पर आँसू मोती से चमक रहे थे।

अन्त में उसने मेरी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—मेरे सर्वस्व! × × ×

दो हृदय एक हो गए।

एक ओर प्रभात हो रहा था, सूर्योदय हुआ चाहता था और दूसरी ओर आज मेरी जीवन की रानी का जीवन-सूर्य अस्त हो रहा था। उसने मरते-मरते तक मुझसे वहाँ से भाग जाने को ही कहा, पर मेरा हृदय पीछे हटता गया। वह आज संसार में न थी, फिर भी उसका मुख हँस सा रहा था।

प्रातःकाल जब प्राची से सूर्य झाँक रहे थे, तभी मैंने अपना घर पुलिस से घिरा पाया। मेरी रानी तो सभी बन्धनों से मुक्त हो चुकी थी। मैंने इसी समय अपने आपको बन्दी के रूप में पाया। हाथों में हथकड़ियाँ थीं। मेरी आँखों से प्रेमिल नीर चू रहा था। मैंने एक बार फिर रानी के मुख को देखा, जैसे मुस्कान की प्रतिमा हो। मैं चला—झन-झन रव हुआ। इसी समय मैं सोचने लगा, क्या मैं सचमुच बन्दी हूँ?
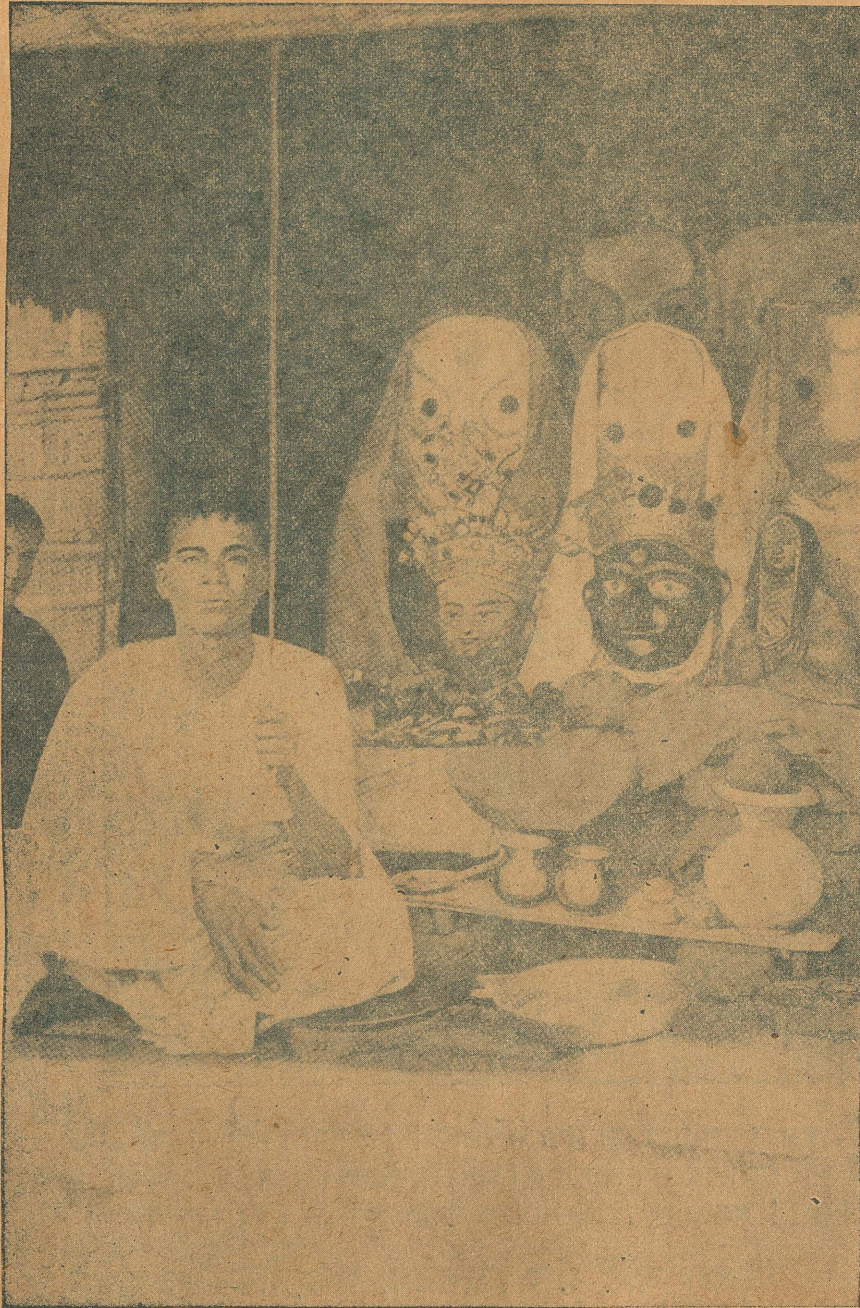
विपद-कसौटी
अपना शत्रु-मित्र पहचानने का विचित्र दर्पण !
यह नाटक एक विचित्र ग्रन्थ है। विपत्ति-काल में ही अपना-पराया, धार्मिक-पापी और सच्चा-झूठा परखा जाता है। सुख में तो सभी अपने होते हैं, परन्तु जो दुख में अपना है, वही वास्तव में अपना है। झूठे और दग़ाबाज़ मित्रों से मनुष्य को किस प्रकार बचना चाहिए, इसका बहुत सुन्दर वर्णन आपको इसमें मिलेगा. विपत्ति-काल में सभी लोग, यहाँ तक कि अपने पुत्र भी किस प्रकार शत्रु बन जाते हैं, इसका एक दृश्य इस चित्र में देखिए ! दुष्ट पुत्र अपने पिता की हत्या करना चाहता है और माता उसे समझा रही है। प्रत्येक पुरुष को इसे पढ़ कर अपनी ज्ञान-वृद्धि करनी चाहिए ! अनेक रङ्ग-बिरङ्गे चित्रों से पुस्तक सुसज्जित है। मूल्य केवल १)
चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

अराजकतावाद के सिद्धान्त

अराजकतावाद का अर्थ है ऐसी सामाजिक पद्धति, जिसमें किसी भी तरह की सरकार या शासन-तन्त्र न हो। अराजकतावादियों का सिद्धान्त है कि ज़मीन, पूँजी और कल-कारख़ाने आदि व्यक्तिगत अधिकार के जीवन-काल की एक सीमा है, जिसके पश्चात् वह नष्ट हो जायगा और पैदावार के समस्त साधनों पर समाज का अथवा पञ्चायती अधिकार हो जायगा। दूसरा सिद्धान्त यह है कि वही राजनीतिक सङ्गठन आदर्श रूप है, जिसमें शासकों का कार्य कम से कम दर्जे तक घटा दिया जाय, और व्यक्तियों को अपनी सब प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति स्वेच्छापूर्वक सङ्गठित दलों अथवा संस्थाओं द्वारा करने की पूरी स्वाधीनता मिल जाय। आर्थिक विषयों में वे सब प्रकार की वेतन की प्रथाओं को नष्ट करके देश में उत्पन्न होने वाली समस्त सामग्री पर समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार चाहते हैं और राजनीतिक क्षेत्र में शासनतन्त्र का पूर्णतया अन्त कर देना उनका अभीष्ट है। उनका यह भी विश्वास है कि जो कार्य इस आदर्श के अनुकूल हैं, उनको भविष्य के लिए छोड़ देने के बजाय अभी से आरम्भ कर देना चाहिए, क्योंकि उनसे किसी न किसी अंश में मनुष्य-समाज का कल्याण ही होगा।

अनारकिस्ट किसी काल्पनिक आदर्श के आधार पर विचार नहीं करते। वे लोग न तो धर्म और नीति की दुहाई देते हैं और न 'प्रकृतिदत्त अधिकार' 'राष्ट्रीय सरकार का कर्तव्य' आदि भावपूर्ण वाक्यों से काम लेते हैं। इसके विपरीत वे अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन आधुनिक विकासवाद के आधार पर करते हैं। वे मनुष्य-समाज की वर्तमान और भूतकालीन परिस्थिति का अध्ययन करते हैं। वे मनुष्यों में उन उच्च गुणों की कल्पना नहीं करते, जो उनमें नहीं हैं। वरन् वे समाज को एक ऐसा सङ्गठित समुदाय मान कर विचार करते हैं, जो व्यक्तियों की आवश्यकताओं और जनता के कल्याण में सहयोग स्थापित करने के लिए यथासम्भव श्रेष्ठ मार्ग का अवलम्बन करता है। वे समाज की प्रवृत्ति और उसकी मानसिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं का अध्ययन करते हैं, और तब यह निर्णय करते हैं कि विकास किस दिशा को जा रहा है। वे मानव-समुदाय की वास्तविक आवश्यकताओं और इच्छाओं के अन्तर पर विचार करते हैं, और उन घटनाओं को भी (जैसे शिक्षा का अभाव, देशत्याग, युद्ध, विजय) ध्यान में रखते हैं, जो इन इच्छाओं की पूर्ति में बाधक होती हैं अथवा उनको कुछ समय के लिए दबा देती हैं। इन तमाम बातों पर विचार करके उन्होंने मानव-जाति के इतिहास में से दो सर्व-प्रधान प्रवृत्तियों को ढूँढ़ निकाला है। एक तो यह कि सब प्रकार की सामग्री तैयार करने वालों में अधिक से अधिक सहयोग उत्पन्न किया जाय, जिससे अन्त में ऐसी स्थिति आ जाय कि किसी वस्तु में व्यक्ति-विशेष का दायित्व बतला सकना असम्भव हो जाय। दूसरी यह कि सब प्रकार के कार्यों में व्यक्तियों को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो, जोकि व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हितकारी है। इस प्रकार अराजकता-वादियों के आदर्श और मानव-समाज के स्वाभाविक विकास में पूर्ण एकता है। ऐसी स्थिति में इस सिद्धान्त में श्रद्धा का कोई प्रश्न नहीं है, वरन् यह एक वैज्ञानिक वाद-विवाद का विषय है।

× × ×

वर्तमान काल में साम्यवाद का सिद्धान्त श्रमजीवियों में दिन पर दिन ज़ोर पकड़ता जाता है और यह सर्वथा स्वाभाविक है। पिछले सत्तर-अस्सी वर्षों में हमारी

उत्पादक शक्ति और सम्पत्ति की जितनी वृद्धि हुई है, वह आशातीत है। यद्यपि यह वृद्धि वैज्ञानिकों, व्यवस्थापकों और श्रमजीवियों की सम्मिलित चेष्टा का फल है, पर मज़दूरी की प्रथा के कारण पूँजीपतियों का ख़ज़ाना तो दिन पर दिन बढ़ता जाता है और मज़दूर अधिकाधिक दरिद्रता के चङ्गुल में फँसते जाते हैं। साधारण मज़दूर तो सदा नौकरी ढूँढ़ते फिरते हैं और उनकी अकथनीय दुर्गति होती है। जो श्रमजीवी किसी कार्य में निपुणता प्राप्त कर चुके हैं और काफ़ी वेतन पाते हैं, वे भी व्यवसाय के उतार-चढ़ाव अथवा पूँजीपतियों की धुन के कारण सदा नौकरी से निकाल दिए जाने के भय में रहते हैं। इस प्रकार वर्तमान काल के करोड़पतियों, जो मनुष्यों के श्रम के फल को शान-शौकत और झूठे भोग-विलास में नष्ट करते हैं, और दरिद्र मज़दूरों, जिनका अस्तित्व अत्यन्त कष्टपूर्ण और अस्थिर हो गया है, के बीच की खाईं दिन पर दिन गहरी होती जाती है। इससे समाज की एकता नष्ट हो रही है और विकास की गति में बाधा पड़ गई है। इसके साथ ही वर्तमान समय के मज़दूरों के धैर्य का भी अन्त होता जाता है और वे समाज के इस प्रकार दो भागों में बँट जाने को सहन करने को तैयार नहीं हैं। क्योंकि वे समझते जाते हैं कि आधुनिक उद्योग-धन्धों में सम्पत्ति उत्पन्न करने में श्रमजीवियों का बहुत अधिक महत्व है, और उनमें सङ्गठन की काफ़ी शक्ति मौजूद है। जैसे-जैसे जनसमूह में शिक्षा का प्रचार बढ़ रहा है और वे सार्वजनिक कार्यों में दिलचस्पी लेने लगे हैं, वैसे-वैसे ही उनमें समानता की अभिलाषा बढ़ती जाती है, सामाजिक पुनसंङ्गठन की माँग ज़ोर पकड़ रही है, और अब उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। श्रमजीवी उस सम्पत्ति में से, जिसे वे उत्पन्न करते हैं, अपना हिस्सा माँगते हैं। वे केवल कुछ सुधारों से सन्तुष्ट नहीं हो सकते, वरन् वे विज्ञान और कला द्वारा प्राप्त होने वाले उच्च श्रेणी के आनन्द में अपने न्याययुक्त भाग का दावा पेश करते हैं। पहले इन अधिकारों की चर्चा थोड़े से सुधारक किया करते थे, पर अब कारख़ानों और खेतों में काम करने वाले लोगों का एक बड़ा हिस्सा इस प्रकार के अधिकारों के लिए दावा करता है। उनके दावे में सचाई है और इसलिए सम्पत्तिशाली लोगों में से भी कितने ही उनके समर्थक होते जाते हैं। इस प्रकार साम्यवाद वर्तमान युग का प्रधान विचार बन गया है और उसकी वृद्धि दमन अथवा ऊपरी सुधारों द्वारा नहीं रोकी जा सकती।

जब श्रमजीवी दल को राजनीतिक अधिकार प्राप्त होने लगे, तो कुछ लोगों को उनकी दुर्दशा के सुधार की आशा हुई। पर इन अधिकारों के साथ आर्थिक सम्बन्ध में किसी तरह का परिवर्तन न होने से वे केवल धोखे की टट्टी सिद्ध हुए। इसीलिए साम्यवाद का सिद्धान्त है कि "राजनीतिक स्वाधीनता का सच्चा आधार आर्थिक स्वाधीनता ही है।"

आर्थिक विषय सम्बन्धी इस महान आन्दोलन के साथ राजनीतिक अधिकारों, राजनीतिक सङ्गठन और शासनतन्त्र के कर्तव्यों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का आन्दोलन जन्म ले रहा है। गवर्नमेण्ट की आलोचना भी उसी प्रकार की जा रही है, जिस प्रकार पूँजीपतियों की आलोचना की जाती है। यद्यपि अधिकांश उग्र विचारों के राजनीतिक सुधारक सार्वजनिक मताधिकार और प्रजातन्त्र शासन को अन्यतम राजनीतिक सुधार समझते हैं, पर कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो इससे एक क़दम और आगे बढ़ते हैं। ये लोग सरकार के अस्तित्व और व्यक्तियों से उसके सम्बन्ध की तीव्र आलोचना करते हैं। प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन का पर्याप्त प्रचार हो जाने पर अब उसके दोष स्पष्ट दिखलाई देने लगे हैं। पार्लामेण्ट और उसकी कार्यकारिणी समिति समाज की अनगिनती आवश्यकताओं पर ध्यान देने और विभिन्न भागों के परस्पर विरोधी स्वार्थों का सन्तोषजनक निर्णय करने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं। यह भी सिद्ध हुआ है कि चुनावों द्वारा राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधियों का चुना जा सकना असम्भव है। इस प्रकार जो प्रतिनिधि चुने जाते हैं, वे किसी विशेष दल की नीति के अनुसार ही क़ानूनों की रचना करते हैं। त्रुटियाँ अब ऐसी स्पष्ट हो गई हैं कि लोग प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन के मूल सिद्धान्त को ही सन्देह की दृष्टि से देखने लगे हैं। इस शासन-प्रणाली ने निरङ्कुश राजाओं की सत्ता का अन्त करने में सफलता प्राप्त की है, पर इससे स्वाधीनता-मूलक शासनतन्त्र की स्थापना नहीं हो सकी है। कुछ लोगों का मत है कि राज्य के कारण उन्नति शीघ्रतापूर्वक होती है। पर अनुभव से यह विश्वास भी नष्ट हो रहा है और लोग मानने लगे हैं कि उन्नति की गति तभी तीव्र होती है, जब

कि उसमें राज्य द्वारा बाधा न पड़े। अब सिद्ध हो चुका है कि एक केन्द्रीय सरकार के हाथ में बहुत सी शक्ति दे देने से सामाजिक जीवन का विकास नहीं होता। वरन् प्रत्येक छोटे-छोटे भागों के स्वाधीन कर देने और प्रत्येक सार्वजनिक कार्य को स्वतन्त्र बना देने, तथा इन विभिन्न भागों के स्वेच्छापूर्वक सहयोग करने से समाज का अधिक कल्याण होता है और यही सरकार का सच्चा स्वरूप है।

इन तमाम सिद्धान्तों पर विचार करके अराजकतावादी इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि जब तक समाज दो विरोधी दलों में बँटा हुआ है और श्रमजीवी आर्थिक दृष्टि से मालिकों के ग़ुलाम बने हुए हैं, तब तक न तो वास्तविक राजनीतिक समानता स्थापित की जा सकती है और न गवर्नमेण्ट की शक्ति को परिमित किया जा सकता है। वे यह भी कहते हैं कि जब तक शासन-तन्त्र का पुनर्सङ्गठन न किया जायगा, तब तक सम्पत्ति के अधिकार की वर्तमान प्रथा में भी सुधार नहीं किया जा सकता। क्योंकि समाज का आर्थिक जीवन जिस ढङ्ग का होगा, उसी ढङ्ग का शासन-तन्त्र भी होना आवश्यक है। जब निरङ्कुश राजा और बादशाहों का शासन था, तो समाज में ग़ुलामों की प्रथा प्रचलित थी। पूँजीवाद का आधिपत्य होने पर प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन-प्रणाली ने जन्म लिया। इन दोनों प्रकार की प्रणालियों में शासन-सत्ता एक विशेष वर्ग के हाथ में थी। पर जिस समाज में से मालिक और नौकर का भेद-भाव जाता रहा है, उसमें इस तरह की सरकार रखना स्पष्ट मूर्खता है। स्वतन्त्र श्रमजीवियों के लिए स्वतन्त्र शासन-तन्त्र की आवश्यकता है, जो केवल स्वेच्छाकृत सहयोग के आधार पर ही सङ्गठित हो सकता है। पूँजी-रहित समाज का शासक-रहित होना भी स्वाभाविक है। इस मत का प्रतिपादन केवल अनारकिस्ट ही नहीं करते, वरन् हरबर्ट स्पेन्सर जैसे सुप्रसिद्ध दार्शनिक ने भी लिखा है कि "समाज के जिस स्वरूप की तरफ़ हम अग्रसर हो रहे हैं, उसमें सरकार का कार्य कम से कम कर दिया जायगा और स्वाधीनता का अधिकार अधिक से अधिक सीमा तक बढ़ा दिया जायगा।"

—माया

❀ ❀ ❀

भारत और जापान पर तुलनात्मक दृष्टिपात

इस लेख में हम भारत और जापान का संक्षिप्त इतिहास देकर, यह बतलाना चाहते हैं कि क्या कारण है कि जापान ने इतने थोड़े समय में इतनी उन्नति की और भारत दिनोंदिन अवनति के गर्त्त में गिरता जा रहा है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारी स्मृति के बहुत पहले ही से भारत अपने धन के लिए केवल एशिया में ही प्रसिद्ध न था, बल्कि पूर्व यूरोप और अफ़्रिका के कुछ भागों में भी लोग इसके धन-वैभव का स्वप्न देखा करते थे। सिकन्दर के समय में ग्रीस में भारत की इतनी प्रसिद्धि थी कि उस बड़े विजेता के मुँह में भी पानी भर आया। वह सोचने लगा कि एशिया का यह सबसे बड़ा समृद्धिशाली देश अपने साम्राज्य में मिला लिया जाय। इसी इच्छा से उसने भारत पर चढ़ाई की थी, किन्तु यहाँ की पुरानी सभ्यता तथा शक्तिशाली राज्यों को—जिनके सैनिक युद्ध-विद्या में बड़े ही निपुण थे—देख कर वह दङ्ग रह गया और यहाँ से लौट जाने ही में अपनी बुद्धिमत्ता समझी।

ईसा की दो-तीन शताब्दी पूर्व, भारत से बौद्ध-धर्म के संन्यासियों ने, मध्य एशिया तथा यूरोप के भीतर नहीं तो उसकी पूर्वी सीमा तक तो अवश्य ही, अपने धर्म का प्रचार किया था और कुछ समय बाद समूचे एशिया में भारतीय विचारों की तूती बोलने लगी थी।

रोमन लोग भी भारत के विषय में पूर्णतया अभिज्ञ थे। भारत से उन दिनों यथेष्ट परिमाण में बहुमूल्य रत्न और रेशमी कपड़े आदि रोम भेजे जाते थे। इसके अतिरिक्त मेडिटरेनियन समुद्र-तट के शहर—वेनिस, जिनेवा आदि—भारत से तिजारत करने की ही वजह से इतने समृद्धिशाली हो गए थे। दो हज़ार वर्षों से हाल तक भी भारत और मेडिटरेनियन समुद्र पर के शहरों में तिजारत हो रही थी।

यह भारत के अपार धन की ख्याति ही थी, जिसके कारण वास्कोडिगामा ने भारत पहुँचने के लिए सबसे

नज़दीक तथा सुविधाजनक सामुद्रिक रास्ते का—अफ़्रिका के दक्षिण से होकर—पता लगाया था। इस नए सामुद्रिक रास्ते का अनुसन्धान होने पर यूरोप के सभी मुख्य राष्ट्र—पुर्तगाल, स्पेन, फ़्रान्स, हॉलैण्ड, ग्रेटब्रिटेन आदि—भारत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने लगे। इन यूरोपीय राष्ट्रों में पहले तो अपना-अपना व्यापार बढ़ाने के लिए बहुत-कुछ स्पर्धा हुई; पर पीछे जब यूरोप में युद्ध छिड़ गया तो यहाँ भी उस युद्ध के परिणाम-स्वरूप छोटा-मोटा युद्ध दिखाई पड़ने लगा और अन्त में इस सामरिक तथा व्यापारिक प्रतिद्वन्दिता में अङ्गरेज़ जाति की ही विजय हुई। इसके उपरान्त इस जाति ने दृढ़तापूर्वक यहाँ पर अपना राजनीतिक तथा व्यापारिक अधिकार जमा लिया और फिर कुछ ही समय बाद भारत से ब्रिटेन में सोने-चाँदी से भी बहुमूल्य धन की नदी का बहना आरम्भ हुआ। यही कारण है कि यूरोप के अन्य प्रायः सभी राष्ट्र उस समय ब्रिटिश जाति से ईर्ष्या करने लगे।

अब, यदि जापान पर हम दृष्टिपात करते हैं, तो पता चलता है कि यह भारत के सातवें हिस्से के बराबर है। इसकी जन-संख्या भी भारत की जन-संख्या के पाँचवें हिस्से के बराबर है। यह भारत से भिन्न, एशिया के मध्य में न स्थित होकर एशिया के पूर्वी किनारे पर अवस्थित है। भारत जैसा इसका इतिहास भी महत्व का नहीं है और इसकी सभ्यता का आविर्भाव भी हाल ही में हुआ है। इसका साहित्य जो कुछ भी रहा हो; किन्तु वह दूसरे राष्ट्रों को नहीं मालूम था। इसके इतिहास से पता चलता है कि इसका सम्बन्ध दूसरे राष्ट्रों के साथ नहीं था। यहाँ तक कि एशिया में भी इसकी कोई ख्याति नहीं थी और अन्य राष्ट्रों में मुख्य स्थान प्राप्त करने की तो बात ही अलग रही। अस्सी साल से भी कम हुआ, जब इसने अपनी एकान्तप्रियता की नीति तोड़ी और अन्य राष्ट्रों के साथ अपना सम्बन्ध भी स्थापित किया। इसका मुख्य धर्म भारत से ही लिया गया है। इसकी कुछ कला (Art) तो बड़ी उच्च कोटि की थी; पर उसमें भी कुछ चीन देश की नक़ल मात्र से ही प्राप्त हुई थी। यह एक कृषि-प्रधान देश था और विदेशियों के साथ इसका व्यापार बहुत थोड़ा था। इसमें लोहे-कोयले की खानें तथा अन्य खनिज पदार्थ भारत की अपेक्षा बहुत कम थे। इतनी कमियों के रहते हुए भी जापान ने दो ही पीढ़ियों के अन्दर इतनी उन्नति की कि वह आज एशिया के राष्ट्रों में सबसे आगे और संसार के मुख्य राष्ट्रों में से एक है। किन्तु भारत ने एशिया का नेतृत्व खो दिया। इसका कोई स्थान भी अब संसार के राष्ट्रों में नहीं है। उस छोटे जापान की इतनी बड़ी उन्नति तथा भारत का अवनति-गर्त्त में गिरता जाना—इस आश्चर्य-जनक भिन्नता की क्या व्याख्या हो सकती है? इसकी एकमात्र व्याख्या तो यही हो सकती है कि जापान स्वाधीन रहा है; किन्तु भारत एक विदेशी जाति के बन्धन में दो शताब्दियों से पड़ा है।

यह तो आज सभी समझते हैं कि किसी राष्ट्र के पतन के दो ही मूल कारण हैं—एक तो किसी विदेशी जाति के बन्धन में पड़ा रहना तथा दूसरा उचित शिक्षा की कमी। भारत में ये दोनों कारण वर्तमान हैं। किसी राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक ही नहीं, वरन् नितान्त आवश्यक है कि वहाँ पर सार्वजनिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय।

जापान जब दूसरे स्वाधीन देशों के सम्पर्क में आया तो उसने भी अपने यहाँ सार्वजनिक शिक्षा की आवश्यकता समझी और सन् १८९९ ईस्वी में यहाँ की सरकार ने एक शिक्षा-क़ानून पास किया, जिसका आशय यह था कि शिक्षा सभी मनुष्यों के लिए आवश्यक है। विद्या पहले बड़े-बड़े राजकीय स्थान पाने का ज़रिया समझी जाती थी; किन्तु अब से बिना किसी जाति के ख़्याल के, देश के सभी मनुष्यों को अवश्य शिक्षित होना चाहिए, ताकि किसी गाँव में एक भी विद्याहीन मनुष्य न पाया जाय और न किसी घर ही में कोई अपढ़ व्यक्ति मिले।

इसके अनुसार यहाँ पर आरम्भिक, द्वितीय तथा उच्च श्रेणी की शिक्षा के लिए स्कूलों की स्थापना हुई। इसी समय में कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों का भी आविर्भाव हुआ। इसके अतिरिक्त यहाँ की सरकार ने कृषि, व्यापारिक तथा औद्योगिक शिक्षाओं की ओर विशेष ध्यान दिया और तत्सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण करने के लिए अपने युवकों को अमेरिका तथा यूरोप भी भेजा।

इसके प्रतिकूल भारत में, यहाँ की सरकार को एक भिन्न ही शिक्षा की नीति को ग्रहण करते हम पाते हैं। इसे शुरू ही से शिक्षा पर अविश्वास तथा भय था।

इसमें सन्देह नहीं, एक प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध भी यहाँ किया गया ; किन्तु वह प्रबन्ध बहुत ही सीमित था और उसके द्वारा देश के इने-गिने बच्चे ही शिक्षित हो सके। उच्च कोटि की शिक्षा तो युवकों को केवल राज-काज में सहायता प्रदान करने के लिए ही दी जाती थी। वैज्ञानिक, औद्योगिक तथा अन्य प्रकार की शिक्षाओं पर, जिससे यहाँ के निवासी भारत की सेवा कर सकते, अपना औद्योगिक जीवन बना सकते तथा दूसरे देशों के संसर्ग में आ सकते, बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया गया।

जापान की सरकार ने हर प्रकार के शिल्पों को प्रोत्साहन दिया, जिसका फल हम अपनी आँखों से देखते हैं कि जापान आज संसार के मुख्य व्यापारिक राष्ट्रों में एक है। किन्तु इसके प्रतिकूल, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने, यहाँ के गृह-शिल्प तक का सत्यानाश कर, भारत को ब्रिटेन की बनी चीज़ों के लिए एक बाज़ार बना दिया। आज हम जापान को एशिया का ही सब से बड़ा व्यापारिक राष्ट्र नहीं मानते हैं, किन्तु संसार के व्यापारिक राष्ट्रों में उसे एक मानते हैं। एकमात्र कारण यही है कि वहाँ की सरकार ने विदेशी व्यापार तथा नव-निर्माण को प्रोत्साहित किया। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने यहाँ के विदेशी व्यापार तथा नव-निर्माण को अपने हाथों में कर लिया। इन सबका फल हम अपनी आँखों देखते हैं कि भारत के अधिकांश ग़रीबों को एक समय पेट भर भोजन तक नहीं मिलता, जीवन की दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति की तो बात ही अलग रही।

सारांश यह कि जापान की सरकार ने अपने देश को समृद्धिशाली बनाने के लिए हर तरह की कोशिशें कीं और उसे सफलता भी मिली, भारत-सरकार ने वैसा कुछ भी नहीं किया।

इसमें भी क्या अब आश्चर्य है कि एशिया के राष्ट्रों में जापान आज सबसे बड़ा उन्नतिशील तथा समृद्धिशाली है ; किन्तु भारत दिनोंदिन गर्त्त में गिरा जा रहा है ? साथ ही पाठकों को इसमें भी सन्देह नहीं होना चाहिए कि यदि भारत को भी जापान जैसी ही सुविधाएँ उन्नति करने के लिए दी गई होतीं, तो वह अपनी प्राकृतिक सुविधाओं द्वारा जापान से कहीं अधिक बढ़ गया रहता, अन्यथा जापान के बराबर तो अवश्य ही रहता।

कवि-शिरोमणि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक जगह लिखा है कि जापानियों ने बहुत बड़ी उन्नति की है। किन्तु यदि बराबर ही अवकाश दिया जाय, तो भारत भी उसी प्रकार की उन्नति करेगा। हम जापानियों से बुद्धि में कम नहीं हैं। सम्भवतः कई गुणों में हम उनसे पीछे हैं ; किन्तु शुद्ध विचार में हम उनसे कहीं बढ़े हैं। उन गुणों में भी, जिनमें आज वे बढ़े-चढ़े हैं, हम उनके किसी समय में बराबर थे ; और इस समय भी हो सकते हैं, यदि बन्धन से मुक्त हो जायँ और हमारी रुकावटें भी दूर कर दी जायँ। जापानी अपने को शिक्षित करने में तथा अपने युवकों को संसार के सभी विश्व-विद्यालयों में ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजने में स्वतन्त्र रहे हैं। किन्तु प्रत्येक भारतवासी यह महसूस करता है तथा इस विषय का प्रत्येक स्पष्टवादी अन्वेषक यह अवश्य स्वीकार करेगा कि सरकार ने हमें निर्बल रखने तथा हमारी शिक्षा को हतोत्साह करने में अपना लाभ समझा है। प्रयोगशालाओं (लेबोरेटरियों) में वह नहीं चाहता कि हम विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करें। प्रायः प्रत्येक प्रकार से उसने जान-बूझ कर हमारे आर्थिक विकास को दबाने तथा रोकने की कोशिश की है।

आधुनिक जापान तथा भारत के जीवन से हमें इस बात का—जिसकी पुष्टि इतिहास करता है—पता चलता है कि किसी देश की वृद्धि तथा विकाश उसकी स्वतन्त्रता पर निर्भर है ; तथा किसी देश के निर्धन तथा निर्बल होने का मुख्य कारण उसकी परतन्त्रता तथा एक विदेशी जाति द्वारा उसका बन्धन ही है।

—नरेशप्रसाद बख़्शी

❀ ❀ ❀

मृत्यु के बाद जीवन

भारत में प्रोफ़ेसर बी० डी० ऋषि परलोक-विषयक बातों के अद्वितीय ज्ञाता हैं। इस विषय को जानने के लिए उन्होंने कई वर्षों से सतत परिश्रम किया है। विदेशों में भी इस विषय की कॉन्फ्रेन्स में भारत के प्रतिनिधि होकर गए हैं। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में लेख भी लिखते हैं। निम्न-लिखित लेख

उन्हीं के "अमृत-बाज़ार" में छपे हुए "पर्दे से परे जीवन" (Life beyond the veil) का छायानुवाद है।

बहुत कम पुरुष मृत्यु और मृत्यु के बाद जीवन के प्रश्न की छानबीन करते हैं। लोग अपने-अपने धर्म के अनुसार मृत व्यक्ति को जला या गाड़ देना ही उनके प्रति अपने कर्त्तव्य की इति समझते हैं। कुछ लोग श्राद्ध, वर्षी और तर्पण करके सन्तुष्ट हो जाते हैं। कुछ लोग उनके स्मारक में उनकी मूर्तियाँ अथवा कोई वस्तु बनवा देते हैं, किन्तु कोई भी मृत्यु और परलोक के रहस्य को समझने का प्रयत्न नहीं करता।

परलोक-विज्ञान के जिज्ञासुओं ने इस विषय का बहुत ज्ञान प्राप्त किया है, जो लोगों के मृतात्मा-सम्बन्धी वर्त्तमान ज्ञान में क्रान्ति मचा देने वाला है। यह ज्ञान उन मृतात्माओं से प्राप्त किया गया है, जो परलोक में रहती हैं। यह किसी किताब या कहानी से नहीं प्राप्त किया गया है, किन्तु सच्ची घटनाओं के आधार पर निर्धारित किया गया है। ये घटनाएँ बुद्धि और तर्क की तुला पर तौल ली गई हैं। अनेक देशों में एक विषय का एक ही वर्णन मिलता है, यह इसकी सचाई का द्योतक है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि यह माध्यम की, जिसके द्वारा ये वर्णन मिलते हैं, कोरी कल्पना नहीं है। इसकी सचाई का तो इस बात से पता लगता है कि किसी मृतात्मा की पारलौकिक शक्ति उसकी पार्थिव शक्ति से मिलती-जुलती है। जब ये बातें निश्चित हो जाती हैं, तो उसके पारलौकिक वर्णन में अविश्वास करने का कोई आधार नहीं रहता है।

मृतात्मा के संसार के वर्णन को समझने के पहले यह समझ लेना चाहिए कि मृतात्मा क्या चीज़ है। यह हिन्दुओं की आत्मा—जिसकी अनिश्चित और अवर्णनीय परिभाषा है और जिसका कोई रूप और हाथ-पैर नहीं है—नहीं है। यहाँ मृतात्मा से अभिप्राय है आकाशस्थ व्यक्ति, जिसके विचार, प्रवृत्ति और गुण-अवगुण पूर्ववत् रहते हैं। मृतात्मा का रूप और हाथ-पैर पूर्ववत् ही होते हैं। इसीलिए मृतात्मा का फ़ोटो पार्थिव शरीर से मिलता है और बिना भूल के पहचाना जा सकता है। यह मृत व्यक्ति की आत्मा का फ़ोटो नहीं रहता है, किन्तु उसके आकाशस्थ शरीर का, जो उसे (मृतात्मा को) उसी तरह ज्ञात होता है, जैसा उसे पृथ्वी पर मालूम होता था। ऐसा वर्णन पृथ्वी के प्रत्येक भाग की मृतात्माएँ देती हैं।

वे कहती हैं कि उनकी मृत्यु के समय किसी तरह की पीड़ा नहीं होती है, मानो वे सोने जा रही हों। कोई व्यक्ति परलोक जाने पर वही रहता है, जो वह मरने के पाँच मिनिट पहले था। उसके विचार, प्रेम, स्मरण-शक्ति और गुण-अवगुण पूर्ववत् रहते हैं। रोग का बादल हट जाता है और मृत व्यक्ति अपने परिवर्तित जीवन को दुःखविहीन और आनन्दित पाता है। एक मृतात्मा ने एक समय कहा—"हम अपने परिवर्तित जीवन में उसी तरह का अनुभव करते हैं, जिस तरह सर्प अपने केंचुल को छोड़ कर करता है। × × ×" मृतात्मा अपने पार्थिव मित्र और सम्बन्धियों को देखता है और उनको अपनी मृत्यु के लिए शोक मनाते देख कर दुखी होता है। वह अपने अस्तित्व का परिचय पृथ्वी के जीव को अनेकों प्रकार से देता है। किन्तु कुछ समय के बाद वह अपने प्रयत्न की विफलता का अनुभव करता है, क्योंकि स्थूल शरीरधारी पार्थिव जीव को मृतात्मा के स्पर्श का अनुभव नहीं होता है। उसके शरीर में पूर्ववत् हाथ-पैर रहते हैं, किन्तु पूर्ववत् अङ्ग-भङ्ग नहीं रहते हैं। एक लँगड़ा अथवा अन्धा आदमी परलोक में लँगड़ा अथवा अन्धा नहीं रहता है। शस्त्रास्त्र के घाव के चिह्न उनके शरीर पर नहीं रहते हैं। स्थूल शरीर का अदृश्य शरीर में परिवर्तन हो जाना ही मृत्यु है। इस परिवर्तन के पश्चात् अदृश्य व्यक्ति पार्थिव कर्मों के अनुसार वहाँ अनुभव प्राप्त करता है। वह अपने शोक-सन्तप्त सम्बन्धियों को सान्त्वना देता है, साथ-साथ स्वयं नवीन परिस्थिति के उपयुक्त बनता है।

ये सम्वाद (Messages) परिवर्तन के प्रारम्भ के अनुभवों का ज्ञान कराते हैं। कभी-कभी वे अपने दूर-स्थित सम्बन्धियों के यहाँ पहुँचते हैं, जिससे वे (सम्बन्धी) आश्चर्यित हो जाते हैं। कभी-कभी वे सम्बन्धियों से मिलने की उत्कट इच्छा के वशीभूत हो साकार शरीर धारण करते हैं। मृतात्माओं को परलोक के सात तलों (Planes) में से किसी एक तल में रहना पड़ता है। इन तलों की निश्चित सीमा बताना कठिन है, परन्तु ऐसा मालूम हुआ है कि ये तलें पृथ्वी की परिधि के चारों ओर वृत्ताकार रूप में स्थित हैं। एक मृतात्मा अपने

तल से दूसरे तल में जा सकता है, किन्तु ठहरना उसे अपने ही तल में होगा। पृथ्वी से परलोक की दूरी पार्थिव माप से नहीं कही जा सकती है, किन्तु वे अपने माप से कभी-कभी दूरी बताते हैं। परलोक में प्रवेश करने पर उन्हें इस पृथ्वी के कर्मों के अनुसार, किसी न किसी रूप में, दुःख-सुख भोगना पड़ता है। वहाँ का दण्ड बहुत कड़ा है। वहाँ पर न्याय करने के लिए जज या जूरी नहीं हैं, न्याय के क़ानून सब पर स्वयं लागू होते हैं। वहाँ पर एक दुष्ट और एक साधू एक साथ नहीं रह सकते हैं, उनके विभिन्न निवास-स्थान रहते हैं। यदि न्याय का सिलसिला ऐसा न हो तो ईश्वर के राज्य में न्याय ही नहीं हो सकता है और उसकी शक्ति का दुरुपयोग होगा। मृतात्माओं का कथन है कि सत्य और न्याय इसी दुनिया के लिए नहीं, किन्तु इनका अखण्ड राज्य परलोक में भी है। दण्ड केवल सुधार की दृष्टि से होता है। दूषित आत्माएँ आध्यात्मिक उन्नति के लिए पवित्र आत्माओं से शिक्षा पाती हैं। महान आत्माएँ बिना किसी लोभ के नीच आत्माओं को शिक्षा देती हैं और इसमें आनन्द अनुभव करती हैं। परलोक के नवीन आगन्तुक वहाँ पर भी अपनी पूर्व धारणा के विरुद्ध, पृथ्वी पर की तरह बहुत सी बातों को होते देख आश्चर्यान्वित होते हैं। इस आश्चर्य का यही कारण है कि वे पहले परलोक की परिस्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं। इसीलिए यदि परलोक-ज्ञान का सर्व-साधारण में प्रचार किया जाय, तो बहुत ही भलाई हो और लोगों को नए वातावरण में जाने पर भी किसी तरह का आश्चर्य न हो।

अदृश्य आत्माएँ किसी बड़े नेता के निरीक्षण में रहती हैं, जिसको हिन्दू मृतात्मा गुरु और दूसरे 'गवर्नर' के नाम से पुकारते हैं। वे उसकी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकती हैं। यदि वे किसी तरह उसकी आज्ञा की अवहेलना करती हैं, तो कठिन दण्ड भोगती हैं। साधारणतः वे कर्त्तव्यच्युत नहीं होती हैं, क्योंकि वहाँ का निरीक्षण बहुत कड़ा है। उन आत्माओं की भलाई के लिए ही दृढ़ निरीक्षण होता है, और अनेक दण्डों में से, उन्हें इस दुनिया में भेज देना एक दण्ड है। मृतात्माएँ यहाँ आना पसन्द नहीं करतीं, उन्हें कर्त्तव्यच्युत होने पर यहाँ आना पड़ता है। कुछ मृतात्माएँ कहती हैं कि उन्हें भोजन और कपड़े की ज़रूरत होती है। उनका कपड़ा बहुत सूक्ष्म वस्तुओं से बना रहता है, जिससे कि उनकी देह बनी रहती है। शून्य आकाश में प्राकृतिक पदार्थ तो अनुपस्थित रहते हैं, अतएव उनके शरीर पार्थिव परमाणुओं से नहीं बन सकते हैं। वे इन चीज़ों (कपड़े इत्यादि) से विचित्र रूप से संयुक्त रहते हैं, और ये चीज़ें उन्हें ख़रीदनी नहीं पड़तीं, जैसा कि कोई समालोचक पूछ सकते हैं। इस वर्णन के तारतम्य को जारी रखना असम्भव है, क्योंकि प्रसङ्गवश बहुत से प्रश्न उठ सकते हैं, जिसका उत्तर मृतात्माएँ प्रायः नहीं देतीं। मृतात्माओं के फ़ोटो से ज्ञात होता है कि वे वस्त्र इत्यादि आवश्यक वस्तु से संयुक्त रहती हैं, क्योंकि ऐसा नहीं होता तो वे फ़ोटो में नङ्गी दीखतीं।

वे कुछ समय के लिए आराम भी करती हैं। मरने के कुछ घण्टे के बाद ही मृतात्मा से सम्बाद मिले हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उनके आराम के समय का अन्दाज़ा लगाना कठिन है। आराम के बाद वे काम करती हैं, जो मरने के पहले की प्रवृत्ति के अनुसार निर्धारित होता है। वे काम में इतना संलग्न रहती हैं कि उन्हें किसी मित्र से वार्तालाप करने का भी समय नहीं मिलता है। परलोक में जीवन नियमित रूप से व्यतीत होता है। उनके ऊपर का तल बहुत ही सुन्दर है, जिसकी तुलना पृथ्वी से किसी तरह नहीं हो सकती। इस विषय में उनका वर्णन बहुत विश्वसनीय है ; क्योंकि उन्हें दोनों तलों का अनुभव रहता है। उनके दैनिक जीवन का वृत्तान्त उनके समय-समय पर कहे हुए सन्देश से मालूम पड़ता है। कभी-कभी वे दैनिक जीवन की कहानी विस्तृत रूप से कहती हैं।

कुछ मृतात्माओं ने वर्णन किया है कि वे नियमशः प्रातःकाल उठती हैं, परमेश्वर की प्रार्थना करती हैं, मन्दिर में जाती हैं, किताब पढ़ती हैं, भोजन करती हैं और बहुत सा समय ध्यान में बिताती हैं। कोई-कोई नियमित रूप से अपनी प्रार्थना के सिवा गुरु के यहाँ प्रार्थना और पूजा के लिए जाती हैं। यह ज्ञात होता है कि वे अधिकांश समय आध्यात्मिक बातों में बिताती हैं और किसी स्थान को जाने के लिए गुरु से आज्ञा लेती हैं। सबका दैनिक जीवन एक तरह का नहीं होता है, उन्हें अपनी-अपनी पूर्व योग्यता के मुताबिक़ काम करना पड़ता है। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ जो

पार्थिव जीवन में राजकार्य में व्यस्त रहते थे, वे केवल प्रार्थना और जप में ही नहीं लगे रहते हैं। वे अपने-अपने देश की उन्नति के लिए किसी काम में लगे रहते हैं। एक तरह के सम्वाद अनेक देशों से मिले हैं कि बड़े-बड़े नेता अपने देश की उन्नति के प्रयत्न में रहते हैं। लॉर्ड किचनर ने इङ्गलैण्ड की उन्नति के विषय में अपनी इच्छा प्रगट की थी और अपने देशवासियों को सतर्क रहने की सूचना दी थी। वे इस संसार के काम पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं। धार्मिक विचार और प्रवृत्ति बहुत दिन तक नहीं बदलती हैं, इसी कारण हिन्दू मृतात्मा अपने सम्वाद में मन्दिर और मुसलमान मृतात्मा मस-जिद लिखती हैं। परलोक-सम्वाद से ज्ञात होता है कि परलोक भी एक दूसरी पृथ्वी है और पृथ्वी की बहुत सी चीज़ें वहाँ भी वर्तमान हैं। वहाँ भी इस दुनिया की तरह घर, स्कूल, बग़ीचे इत्यादि वस्तुएँ हैं। ऊपर के तल में रहने वाले, नीचे रहने वालों की उन्नति के प्रयत्न में रहते हैं और मृतात्माएँ वर्णन करती हैं कि उन्हें स्वर्गीय आनन्द का अनुभव होता है। लिङ्ग-भेद वहाँ भी वर्त्तमान है, किन्तु उस रूप में नहीं, जैसा यहाँ है। वहाँ विवाह और सन्तान-जनन नहीं होते हैं। वहाँ की जन-संख्या यहाँ के मृत व्यक्तियों से बढ़ती है। नीच प्रवृत्ति की मृतात्मा इस संसार में आने का प्रयत्न करती हैं। वे सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ नहीं हैं, तथापि उनकी शक्ति इस पृथ्वी की तुलना में अधिकतर है। वे एक जगह से दूसरी जगह बड़ी आसानी से जा सकते हैं, किन्तु एक ही समय में दो जगहों में नहीं रह सकतीं। बच्चे बढ़ते हैं और बूढ़े जवान हो जाते हैं। प्रेम दो आत्माओं को इकट्ठा करता है और वे दोनों एक साथ रहती हैं। इस दुनिया का पक्षपात, धर्म, कट्टरता और धर्मान्धता धीरे-धीरे मिट जाते हैं। कभी ख़ून किया हुआ व्यक्ति बदला लेने का प्रयत्न करता है। साथ-साथ दो भाइयों की मित्रता का भी सम्वाद मिला है, जो यहाँ पर एक दूसरे के शत्रु थे। वे अपने पूर्व जीवनों के विषय में नहीं जानते हैं और इन प्रश्नों के उत्तर में अपनी अशक्यता प्रगट करते हैं। वे परमेश्वर के अस्तित्व का वर्णन करते हैं, किन्तु यह नहीं कहते कि उन्होंने उसको देखा है। वे परमेश्वर को सब कार्यों का कारण समझते हैं और उसको देखने का प्रयत्न करते हैं। निरीश्वरवादी अपने विश्वास के लिए दण्ड नहीं पाता है, किन्तु वह दूसरी दुनिया की घटनाओं और महान व्यक्तियों के अनुभवों को देख कर चकित हो जाता है। परलोक की विशालता के कारण उसका कोई विस्तृत वर्णन नहीं दिया जा सकता और हम लोगों को बिन देखी जगह के संक्षिप्त वर्णन से ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है।

—डॉक्टर रामचरित्र कँवर

❋ ❋ ❋

ऋग्वेद में स्त्रियों की दशा एवं उनका समाज में स्थान

कहावत चली आती है कि पुत्री माता-पिता की चिन्ता का कारण हुआ करती है। परन्तु यह बात वैदिक काल में न थी। पुत्री का लालन-पालन माता बड़े स्नेह एवं वात्सल्य से करती थी। उसकी मन्द-मृदु मुस्कान गृहस्थ को आनन्दित करने वाली होती थी। वह अपने ज्येष्ठ भ्राताओं द्वारा गौरवान्वित होती थी। सब से अधिक प्रेम उस पर माता का होता था। इसका कारण यह था कि पुत्रवर्ग तो पिता तथा गुरु के समीप रहते और शिक्षादि ग्रहण करते थे तथा बालिका अपनी माता के पास रह कर उसके कार्य में सहायता पहुँचाती थी। सारांश यह कि पुत्री माता-पिता एवं भाइयों के स्नेह का केन्द्र थी।

शिक्षा

उसकी शिक्षा पर पूर्ण ध्यान दिया जाता था और सुशिक्षित परिवारों में तो उसको बड़ा विस्तृत अध्ययन कराया जाता था। इसी कारण से वह समाज में पुत्रों के समान ही सम्मान और अधिकार प्राप्त करती थी। ऋग्वेद-काल में अनेक ऋषि-पत्नियाँ हो गई हैं, जिन्होंने अनेक छन्दों की रचना की, यज्ञ किए तथा उच्चकोटि के काव्य का निर्माण किया। उच्च श्रेणी के गायकों में भी स्त्रियों ने उत्तम स्थान प्राप्त किया था। लोपामुद्रा, ममता, घोषा, अपाला, सूर्या, इन्द्राणी, शची और विश्ववारा सर्वश्रेष्ठ ऋषि-पत्नियों में थीं। विश्ववारा ने छन्दों का निर्माण ही नहीं, वरन् ऋत्विज का कार्य भी किया। उस

समय स्त्रियों को यज्ञों में ऋत्विज-कर्म सम्पादन करने का अधिकार न था। उपर्युक्त ऋषि-पत्नी अपनी महान योग्यता के कारण ही ऐसा करने को समर्थ हुई थी।*

अपाला ने इन्द्र की महिमा में एक छन्द बनाया और उसको स्वयं सोम अर्पण किया। इन्द्र की कृपा से वह उस चर्मरोग से मुक्त हो गई, जिसके कारण कि वह अपने पति द्वारा त्यक्त हो गई थी।† उसका पिता गञ्जा हो गया था और उसके क्षेत्रों की उपजाने वाली शक्ति जाती रही थी। इन्द्र ने कृपा करके उसके पिता के गञ्जेपन और उसके खेतों की ऊसरता को हरण कर लिया था।

स्त्रियाँ बहुधा अपने पतियों के साथ युद्ध-क्षेत्रों में भी जाती थीं। मुद्गलानी अथवा इन्द्रसेना ने, जो मुद्गल ऋषि की पत्नी थी, अपने पति को लुटेरों का पीछा करने में सहायता दी थी। लुटेरों ने इन ऋषिराज की गौएँ चुरा ली थीं; पत्नी ने सारथ्य ग्रहण किया और पति ने युद्ध किया। दोनों ने मिल कर लुटेरों को परास्त किया और अपनी गौओं को उनसे पुनः प्राप्त किया।‡

ये सब दृष्टान्त इस बात के द्योतक हैं कि महिलाएँ ऋग्वेदिक आर्यों के गार्हस्थ्य और सामाजिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण भाग लेती थीं। जिस प्रकार विद्या में स्त्रियाँ पुरुषों से कम न थीं, उसी प्रकार शारीरिक गठन एवं स्वास्थ्य भी उनका पुरुषों के समान था। ऋग्वेद में स्त्री-योद्धाओं का उल्लेख है।§ इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में युद्ध-विद्या-विशारदा स्त्रियाँ भी विद्यमान थीं।

वैवाहिक जीवन

ऋग्वेद-काल में कौटुम्बिक जीवन में स्त्रियों का स्थान उच्च एवं सम्मानप्रद था। यद्यपि वह अपने पति की आज्ञाकारिणी एवं इच्छानुवर्तिनी होती थीं, तथापि उनके पति उनके साथ मानपूर्वक व्यवहार करते थे। उसको अपने पति के साथ यज्ञ करने का अधिकार था। निपुत्री विधवा अपने मृतपति की सम्पत्ति की अधिकार-सिद्ध स्वामिनी होती थी।

*ऋग्वेद ५, २८, १। † ऋग्वेद ८, ९१, ४। ‡ ऋग्वेद १०,१०२। §ऋग्वेद ५,३०,९।

उस समय स्वयम्बर की प्रथा प्रचलित थी। बहुत से वरों में से स्त्री अपने लिए अनुकूल वर चुन लेती थी।*

आजन्म अविवाहित लड़कियों को समाज नहीं चाहता था। इसका कारण आर्थिक ही नहीं, वरन् नैतिक भी था। कदाचित् नैतिक चाल-चलन भ्रष्ट न होने की तीव्र आकांक्षा ही ने बाल-विवाह की प्रथा चला दी।

बाल-विवाह का एक कारण और था। युवतीत्व प्राप्त कर लेने पर स्त्री अनुकूल वर चाहती थी तथा उसकी यह आकांक्षा पूर्ण न होने पर वह अविवाहित ही रह जाती थी। स्त्रियों का आजन्म अविवाहित रहना अच्छी दृष्टि से न देखा जाता था। इस कारण स्त्रियों को आजन्म अविवाहित रहने से रोकने के लिए बाल-विवाह की प्रथा चल पड़ी। परन्तु ऋग्वेद-काल में युवतीत्व प्राप्त करने के पूर्व कोई स्त्री विवाह न करती थी। सूर्य की पुत्री सूर्या सोम को उसी अवस्था में दी गई, जब कि वह युवती हो गई और पति की कामना करने लगी। 'पतिम् कामयामानां पर्याप्त यौवनां इति .....'—ऋग्वेद १०,८५,९। घोषा ने यौवन-काल व्यतीत होने पर विवाह किया था।

प्रोफ़ेसर मैकडॉनल और कीथ की भाषा में स्त्री के कौटुम्बिक स्थान का दिग्दर्शन बड़ा सुन्दर है।

उसका सारांश यह है कि विवाहिता स्त्री का गृह में सम्मानपूर्ण स्थान था, अपने पति के गृह की वह स्वामिनी होती थी। अपने श्वसुर, देवरों और पति की अविवाहित बहिनों के ऊपर उसका आधिपत्य रहता था। यह आधिपत्य उसका उसी दशा में होता था, जब कि माता-पिता की अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण ज्येष्ठ पुत्र गृह-स्वामी हो गया हो और जब कि पति के भाई-बहिन अविवाहित हों।

विधवा-विवाह

ऋग्वेद में विधवा-विवाह की प्रथा भी प्रचलित पाई जाती है। सन्तानोत्पत्ति के हेतु निपुत्री विधवा का संसर्ग मृतपति के लघु-भ्राता के साथ होने की प्रथा का उल्लेख है।† तथा निम्नलिखित श्लोक से भी इस प्रथा के अस्तित्व का पता चलता है।

* ऋग्वेद १०, २७, १२।

† ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ४०, मन्त्र २

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव ॥

—ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १८, मन्त्र ८

यही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक अ० ६, १, १४ में भी आया है। इसका भाष्य सायण ने किया है, जिसका भाषार्थ इस प्रकार है—"हे नारी, तू इस मृत-पति के पास लेटी है। इस पति के समीप से उठ। जीवित पुरुषों का विचार कर। आ और तू हाथ पकड़ने वाले, पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले इस पति को जायाभाव (स्त्री भाव) से अच्छी तरह प्राप्त हो।" सायण ने मन्त्र के "हस्तग्राभस्य" का अर्थ पाणिग्राहवतः और "दधिषो" की टीका पुनर्विवाहेच्छोः पत्युः शब्दों से करके शङ्का ही निवारण कर दी है।

उपर्युक्त मन्त्र से यह भी स्पष्ट है कि ऋग्वेद-काल में सती-दाह की प्रथा का निषेध था। क्योंकि इस मन्त्र में स्त्री को मृत-पति की मृत्यु-शय्या से उठ कर गृह में जाने का आदेश किया गया है। हमारे इस कथन का भाव ही बाबू अविनाशचन्द्र दास ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वेदिक कल्चर' में लिखा है।

आपके कहने का सारांश यह है कि सती-दाह की घृणित प्रथा अति प्राचीन काल की जङ्गली जातियों में थी तथा ऋग्वेद-काल में यह दुष्ट प्रथा लुप्तप्राय हो चुकी थी।

—वृन्दावनदास, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

❀ ❀ ❀

तीर्थों के पण्डे

गत भाद्र मास की 'गङ्गा' में डॉक्टर रामकृष्ण शर्मा, जी० पी० सी० ने 'तीर्थों के पण्डे' शीर्षक एक लेख छपाया है, जिसमें आप लिखते हैं :—

"बीसवीं सदी के अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों की आँखों में हमारे तीर्थस्थानों का कुछ मूल्य नहीं रह गया है। इस समय कुछ ऐसी परिपाटी चल पड़ी है कि लड़के स्कूल तथा कॉलेज के दरवाज़े खटखटाते ही अपने धार्मिक रीति-रस्मों के विरुद्ध तर्क-वितर्क करने में ख़ूब दिलचस्पी लेने लगते हैं।"

डॉक्टर साहब के "अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों" पर किए गए ये आक्षेप कहाँ तक न्याय-सङ्गत हैं, इन्हीं बातों का विचार हम इस लेख में करेंगे।

हमारी समझ में अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों को तीर्थस्थानों के विरुद्ध बताना उनके साथ घोर अन्याय करना है। वे अपने तीर्थस्थानों में उतनी ही श्रद्धा-भक्ति रखते हैं, जितना कि एक धर्मप्रेमी रख सकता है। उसका स्पष्ट सबूत तो यही है कि वे अपने तीर्थस्थानों को प्राचीन काल की ही तरह पवित्र देखना चाहते हैं। तीर्थस्थानों में आजकल जो अन्याय और दुराचार हो रहे हैं, उसका पर्दाफ़ाश करके, जनता की आँखें खोलते हैं और वहाँ की बुराइयों को हटाने का प्रयत्न करते हैं। अङ्गरेज़ीदाँ सज्जन तीर्थस्थानों के विरुद्ध नहीं, बल्कि उनके पुजारियों, मठाधीशों, महन्तों और पण्डों की चरित्रहीनता के विरुद्ध हैं। अङ्गरेज़ीदाँ इस बात के विरुद्ध हैं कि हमारे तीर्थस्थानों की लाखों रुपए की सार्वजनिक सम्पत्ति का उपभोग, उनके पुजारी और पण्डे उसे अपनी मौरूसी जागीर समझ कर करें और सिर्फ़ अपने ऐश-आराम में उस सम्पत्ति का व्यय करें। इन पुजारियों के चरित्र कितने गन्दे और घृणित होते हैं, इसके लिए यहाँ प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। इन लोगों के काले कारनामे आए-दिन पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं, जिनको पढ़ कर हिन्दुओं को लज्जा से मस्तक अवनत कर लेना पड़ता है। इन लोगों के चरित्रों को देख कर यदि इन्हें पाप की साक्षात् प्रतिमूर्तियाँ कहा जाय, तो भी अत्युक्ति न होगी। कौन सा पाप है, जो ये लोग नहीं करते। व्यभिचार, रण्डीबाज़ी, जुआ, बेईमानी, विश्वासघात, मद्य-सेवन और यात्रियों पर अत्याचार—कुछ भी तो इन्होंने नहीं छोड़ा है और इतना होने पर भी अपने को धर्मगुरु और स्वर्ग के ठीकेदार समझे बैठे हैं एवं जनता से अपने पैर पुजवाते हैं। इनके चरित्रों को देख कर ही महात्मा गाँधी ने कहा है कि आजकल के अधिकांश देवालयों की अवस्था वेश्यालयों से भी बदतर है। ऐसे भ्रष्ट-चरित्र लोगों के अधिकार में रहने से हमारे तीर्थस्थानों की जैसी दुर्गति हो रही है, वह जनता से छिपी नहीं है। इस हालत में यदि 'अङ्गरेज़ीदाँ सज्जन' तीर्थस्थानों के एवम् उनके पण्डे-पुजारियों के विरुद्ध हों, तो इसमें उनका कोई दोष नहीं है। दोष

उन अत्याचारियों का है, जो ऐसे जघन्य पाप करके भी तीर्थस्थानों के सर्वेसर्वा बने बैठे हैं। दोष उस निर्बल और अकर्मण्य हिन्दू-समाज का है, जो अपने धर्माचार्यों की ये काली करतूतें देख कर भी मौन है और उनके विरुद्ध ज़बान तक हिलाने का साहस नहीं करता। बल्कि जो इनके विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं, उनको धर्म-द्रोही और आर्य-समाजी आदि बतला कर उनकी उपेक्षा करता है।

इस सम्बन्ध में अपने एक मित्र की आँखों देखी घटना का उल्लेख कर देना अप्रासाङ्गिक न होगा।

घटना नाथद्वारा की है। जैसा कि प्रायः प्रत्येक बड़े तीर्थस्थान पर देखा जाता है, यहाँ भी ग़रीब और अमीर के लिए, दर्शन के अलग-अलग स्थान नियत हैं। ग़रीब लोग एक चौक में खड़े रह कर दूर ही से दर्शन करने पाते हैं और अमीर लोग मन्दिर के बिलकुल समीप पहुँचा दिए जाते हैं। उस दिन मन्दिर में कोई उत्सव था। दर्शनार्थियों की ख़ासी भीड़ थी। दर्शन के लिए लोग एक पर एक ढह रहे थे। सबल निर्बलों को ढकेल कर सामने बढ़ते थे, पर पण्डों और पुलिस के डण्डे खाकर पीछे हट जाते थे। अमीरों के रास्ते में भीड़ कम थी। उनमें कुछ गुजराती धनिक अपनी स्त्रियों सहित थे। एक सिन्धी महाशय भी थे। सिन्धी महाशय के साथ उनकी स्त्री और एक अतीव सुन्दरी पञ्चदश वर्षीया विधवा थी। इन्हीं के पास मेरे मित्र महाशय भी खड़े थे। इतने ही में एक हट्टा-कट्टा पण्डा वहाँ आया। उसने इन लोगों की ओर देख कर कहा—आप इस तरह कब तक खड़े रहेंगे। एक बार ही सब जाकर दर्शन करें, यह तो असम्भव है। आप एक-एक करके जा सकेंगे। लाइए, मैं पहले स्त्रियों को दर्शन करा दूँ। यह कह कर उस पण्डे ने झपट कर उस तरुणी को अपनी बाँहों में पकड़ लिया और उसे लेकर अँधेरी गली में आगे बढ़ गया। पण्डे ने उस तरुणी को अपनी बाँहों में लेकर क्या किया, यह मेरे मित्र ने साफ़ देखा। इस घटना से उन्हें इतना सन्ताप और घृणा हुई कि बेचारे बिना दर्शन किए ही अपने डेरे पर वापस लौट आए।

यह तो एक सामान्य घटना है। इससे भी कई गुणा अधिक लज्जाजनक घटनाएँ हम पत्रों में पढ़ा करते हैं। अतः यदि ऐसे तीर्थस्थानों का मूल्य अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों की आँखों में कम है, तो मैं नहीं समझता कि यह उनके लिए कोई लज्जा अथवा पश्चात्ताप की बात है।

धार्मिक रीति-रस्मों के विरुद्ध तर्क-वितर्क करना भी अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों के लिए लाञ्छनप्रद नहीं हो सकता और न इसके लिए हम उनको धर्मद्वेषी समझ सकते हैं। प्रायः अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों को ही हमने धर्म का अधिक साथ देते देखा है। जब कभी हिन्दू-धर्म पर सङ्कट उपस्थित होता है, तब उसकी रक्षा के निमित्त हमने अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों को एवं उस वर्ग को आगे बढ़ते देखा है, जिसको हिन्दू-समाज नीची निगाह से देखता है। धर्म पर जब आघात होता है, उस समय अपने को सच्चे धर्मात्मा समझने वाले महाशय प्रायः छिपते ही नज़र आते हैं। अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों को धर्म का आडम्बर दिखाना नहीं आता। वे अपना विश्वास मन में ही रखते हैं। ऐसे धार्मिक रीति-रस्म, जिनसे धर्म का गौरव बढ़ता है, कभी उपेक्षणीय नहीं है और अङ्गरेज़ीदाँ सज्जन कभी इनके विरुद्ध नहीं जाते। हिन्दू-धर्म के प्रसिद्ध सोलह संस्कारों पर, सनातनियों की आँखों में खटकने वाला आर्य-समाज जितना अधिक ज़ोर देता है, उतना शायद सनातनी भी नहीं देते। हाँ, अङ्गरेज़ीदाँ ऐसे रीति-रस्मों के विरुद्ध अवश्य तर्क करते हैं, जिनकी इस समय कोई भी उपयोगिता सिद्ध नहीं होती और जिनका कुछ अर्थ ही नहीं होता। जो बिलकुल निरर्थक और अनावश्यक हैं, उनको त्यागने के लिए अथवा उनमें समयानुसार परिवर्तन करने के लिए यदि अङ्गरेज़ीदाँ तर्क उपस्थित करते हैं, तो कोई बुरा काम नहीं करते। जो रीति-रस्म समाज के लाभ के लिए ही बनाए जाते हैं, उनसे यदि अब हानि हो रही हो और वे समाज को अधःपतन के गर्त में डाल रहे हों, तो उनका परित्याग न करके उनको सिर्फ़ इसीलिए पाला जाय, क्योंकि उन्हें हमारे बाप-दादे करते आए हैं, तो यह हमारी मूर्खता का ही लक्षण होगा। सम्भव है कि जिस समय उन रीति-रस्मों का आरम्भ किया गया हो, उस समय वे लाभप्रद रहे हों, परन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ-साथ उनसे होने वाली हानियाँ देख कर भी हम उनमें परिवर्तन न करें और लकीर के फ़क़ीर ही बने रहें, तो यह हमारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है?

डॉक्टर साहब लिखते हैं—"मैं भी कॉलेज की हवा खा चुका था। मुझे भी तीर्थों के पास फटकने में एतराज़ था। मैं तीर्थों के पण्डों को बहुत नीची निगाह से देखता था।"

डॉक्टर साहब की यह नीची निगाह पण्डों के प्रति कैसे ऊँची निगाह बन गई और वे कैसे आपके श्रद्धाभाजन बन गए, इसका कारण भी बड़ा विचित्र है। और वह यह है कि डॉक्टर साहब को काशी की यात्रा में किसी पण्डे ने अपने घर में टिकाया और तीन दिन तक आपको ख़ूब आराम पहुँचाया।

पर चूँकि डॉक्टर साहब को एक पण्डे ने तीन दिन तक घर पर टिका कर आराम पहुँचाया, सिर्फ़ इसी वजह से अन्य लोग भी पण्डों के भक्त बन जायँ, और उन्हें तीर्थों के लिए आवश्यक समझने लग जायँ, यह तो सम्भव नहीं मालूम होता। तीर्थस्थानों के लिए पण्डे आवश्यक हैं, यह तो शायद हम मञ्ज़ूर कर लें, क्योंकि नए स्थानों की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए एक मार्ग-दर्शक की आवश्यकता रहती है। परन्तु अङ्गरेज़ीदाँ सज्जनों का पण्डों के विरुद्ध होने के और भी कारण हैं। उनको चरित्रहीन जानते हुए भी और यह मालूम होते हुए भी कि वे प्रायः निरक्षर भट्टाचार्य ही होते हैं, दुर्गुणों की खान और धर्म के तत्वों से नितान्त अनभिज्ञ होते हैं, यदि हम उन्हें धर्मगुरु समझें, उनके पैर पूजें और उनको इच्छित दान द्वारा सन्तुष्ट करने में ही स्वर्ग की प्राप्ति समझें, तो यह हमारी बेवक़ूफ़ी ही होगी।

पण्डे यदि यात्रियों को अपने यहाँ टिकाते और उन्हें आराम पहुँचाते हैं, तो यह कौन सी अनोखी बात हो गई। यदि वे इतना भी न करें, तो उनकी दूकानदारी कैसे चले? चालाक दूकानदार यदि अपने ग्राहकों को मिष्ट भाषण और आदर-मान से सन्तुष्ट न करके उनके साथ कटुतापूर्ण व्यवहार करे तो फिर उसके यहाँ दुबारा जायगा ही कौन? आश्चर्य है कि डॉक्टर साहब शिक्षित होकर भी इस मामूली तत्व को नहीं समझ सके।

डॉक्टर साहब लिखते हैं—"इन पण्डों के यहाँ न कोई निर्धारित पारिश्रमिक है और न ज़ोर-ज़बरदस्ती; अपनी श्रद्धा से चाहे जो कुछ दीजिए।"

पण्डे लोग इतने बेवक़ूफ़ नहीं कि अपने पारिश्रमिक को निर्धारित करके अपनी आय को सीमाबद्ध कर लें। यदि वे ऐसा करें तो फिर कहना ही क्या है? पर ऐसा करके वे अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार लेंगे। ध्यान रहे कि वे जो कुछ यात्रियों से लेते हैं, वह पारिश्रमिक समझ कर नहीं, बल्कि दान के रूप में लेते हैं, और यह समझ कर लेते हैं कि उन्हें जितना अधिक दिया जायगा, दाता को उतना ही अधिक पुण्य होगा। इसी बहाने ये रईसों से हज़ारों-लाखों की सम्पदा वसूल कर लेते हैं। पारिश्रमिक निर्धारित करने से वे इतना तीन जन्म में भी नहीं पा सकते। रही ज़ोर-ज़बरदस्ती की बात, सो यदि इसका अनुभव डॉक्टर साहब को नहीं हुआ तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इधर जब से पण्डों के विरुद्ध आन्दोलन चला है, तब से वे भी कुछ सतर्क हो गए हैं और पढ़े-लिखे यात्रियों से उनका व्यवहार सभ्यतापूर्ण एवम् ज़ोर-ज़बरदस्ती का नहीं होता, उनके ज़ोर-ज़बरदस्ती के शिकार तो धर्म-भक्त भोले-भाले अशिक्षित देहाती होते हैं और होते हैं वे धनाढ्य और अन्धभक्त मारवाड़ी, गुजराती और भाटिए, जो धर्मभीरुता और अशिक्षा के कारण इनको येन-केन-प्रकारेण द्रव्य-दान से सन्तुष्ट करने में अपने धर्मपालन की पराकाष्ठा और स्वर्ग की प्राप्ति समझते हैं। जब ऐसे धर्मप्राण प्राणी इनके चङ्गुल में आ फँसते हैं, उस समय इनकी लच्छेदार मन लुभाने वाली बातें सुनने लायक़ होती हैं और यदि कभी ऐसे धर्मज्ञों के साथ कोई नवयुवती अथवा तरुणी विधवा हो, तो उस समय इनके जौहर प्रकट होते हैं और मौक़ा पाने पर ये लोग कैसे-कैसे अनर्थ कर डालते हैं, इसका प्रत्यक्ष अनुभव भुक्तभोगी ही कर सकता है।

जो पण्डे सम्पन्न हैं, जो अपने उदार यजमानों के दान से लखपती और रईस बने हुए हैं, उनके चरित्र का तो पूछना ही क्या है। उनके दर्शन मामूली यजमानों को तो दुर्लभ ही होते हैं। उनके नौकर-चाकर ही सारा काम करते हैं। धार्मिक-कृत्य कराने वाले भी ऐसे अल्प वेतन वाले नौकर ही होते हैं, जो संस्कृत श्लोक का शुद्ध उच्चारण भी नहीं कर सकते। मुख्य पण्डा महाशय तो अपने आमोद-प्रमोद और राग-रङ्ग में ही मस्त रहते हैं, उन्हें सैर-सपाटे, नाच-रङ्ग और अपनी बार-बनिता से ही बहुत कम फ़ुर्सत मिलती है। उनका आगमन तो सिर्फ़ उसी समय होता है, जब कोई बहुत बड़ा रईस यजमान अथवा कोई राजा-रानी पधारते हैं।

हमारा कथन यह नहीं है कि तीर्थों में अच्छे पण्डे हैं ही नहीं। हैं, परन्तु बहुत ही कम। फ़ीसदी तीन-चार पण्डे ही ऐसे निकलेंगे, जिनको अपने धर्म और कर्तव्य का ख़याल हो और सच्चरित्र हों। शेष सब पण्डों के नाम को कलङ्कित करने वाले ही मिलेंगे। ऐसी स्थिति में यदि अङ्गरेज़ीदाँ सज्जन पण्डों को नीची निगाह से देखते हैं, तो कोई पाप नहीं करते, प्रत्युत अच्छा ही करते हैं।

अन्त में हमें यह देख कर किञ्चित सन्तोष है कि डॉक्टर साहब ने भी यह स्वीकार किया है कि पण्डों में सुधार की आवश्यकता है और यह कि उन्हें सच्चरित्र बनना चाहिए। हम इसके लिए डॉक्टर साहब के कृतज्ञ हैं।

—शिवनारायण अग्रवाल

भारतीय महिलाएँ और फ़ैशन

आजकल हमारे देश की महिलाएँ भी अपनी विलायती बहिनों की देखी-देखा दिन पर दिन अपने को 'फ़ैशनेबिल' बनाने की चेष्टा करती हैं। वे अब अपने पुराने पहनावे को पसन्द नहीं करतीं; बल्कि नई-नई चटकीली-भड़कीली पोशाकें पसन्द करती हैं। ओढ़नी तथा साड़ी अब उन्हें नहीं रुचती। ऊँची एड़ी का जूता, विलायती स्त्रियों की तरह बाल तथा पमेटम, पाउडर, पिन—कुछ भी वे छोड़ना नहीं चाहतीं। यहाँ तक कि अब वे उनकी रहन-सहन और चाल-ढाल की भी नक़ल करने लगी हैं। मैं किसी के अच्छे गुणों की नक़ल करने की विरोधिनी नहीं हूँ, परन्तु आँखें बन्द करके अच्छाई और बुराई का विचार किए बिना ही नक़ल करना तो बड़ी ख़राब बात है, क्योंकि इस प्रकार की नक़ल से हमारी प्राचीन संस्कृति का ही सत्यानाश नहीं होता, वरन् इसके पीछे देश का करोड़ों रुपया व्यर्थ में विदेशों को चला जाता है। विदेशी लोग रोज़-रोज़ नए-नए ढङ्ग और रङ्ग के फ़ैशनेबुल कपड़े तथा अन्य प्रकार की पोशाकें बना कर भारत को लूट-लूट कर भूखा और मोहताज बनाना चाहते हैं। बड़े घरों की स्त्रियों की पोशाकें तो विलायती महिलाओं के वस्त्रों से भी कहीं अधिक महँगी हो गई हैं। आज देश के सामने यह एक बड़ा प्रश्न है, जिसके कारण व्यापारी, ज़मींदार और नौकरीपेशा आदि सभी लोग परेशान हैं। क्योंकि उनकी गाढ़ी कमाई का बहुत बड़ा हिस्सा केवल उनकी स्त्रियों की सजावट में ही ख़र्च हो जाता है। वे लोग अपने बच्चों को अच्छी तरह शिक्षा देने के लिए तथा अन्य आवश्यक बातों के लिए काफ़ी धन नहीं बचा पाते। इसका फल यह होता है कि न तो बच्चे अच्छी तरह पढ़ाए-लिखाए जा सकते हैं और न उनका स्वास्थ्य ही ठीक रक्खा जा सकता है। इससे भारत के भविष्य पर भारी असर पड़ता है! बहुत सी साधारण स्थिति की स्त्रियाँ भी फ़ैशन में अमीरों की होड़ करती हैं और काफ़ी आमदनी न होते हुए भी अपने स्वामियों से यहाँ तक ज़िद करती हैं कि घर को कलह की कोठरी बना लेती हैं। वे जितना अपने ओढ़ने-पहनने का ख़याल रखती हैं, उतना अपने प्यारे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और तन्दुरुस्ती का ध्यान नहीं रखतीं। उनकी यह सजावट बाहरी लोगों को दिखाने को होती है। घर में तो फटे-पुराने, मैले-कुचैले कपड़े पहने रहती हैं, पर बाहर जब मेले या तमाशे देखने के लिए निकलती हैं या रेल में बैठ कर कहीं जाती हैं, तब बढ़िया से बढ़िया सेरों ज़ेवर लाद कर और बड़ी बारीक और बढ़िया चटकीली साड़ियाँ आदि पहन कर निकलती हैं। इस तरह का पहनाव कभी-कभी भारतीय स्त्रियों को भारी सङ्कट में डाल देता है। इस पोशाकी होड़ की जगह यदि इस देश की महिलाएँ उन विलायती बहिनों की होड़ साफ़-सुथरा रहने तथा शिक्षित, कार्य-परायण बनने में करें तो कहना ही क्या है। इस नक़ली सौन्दर्य से सिवाय नुक़सान के कोई लाभ नहीं। यदि वे अपने देश की भलाई चाहती हैं, अपने प्यारे बच्चों को स्वस्थ और शिक्षित देखना चाहती हैं, तो यह चटकीली और भड़कीली पोशाकें छोड़ दें और सादा और सस्ता पहनावा पहनें। अगर हो सके तो अपने हाथ से शुद्ध खद्दर तैयार करें। उसके बने हुए कपड़े ख़ुद पहनें और बाल-बच्चों को पहनावें, इससे उन्हीं को लाभ है। पैसा बचेगा, आय भी ठीक हो जायगी। जो पैसा बचेगा वह घर के दूसरे कार्य में लगा सकेंगी। उनके इस ढङ्ग से उनके घर के पुरुषों पर भी बिना असर पड़े रह नहीं सकता।

देखते-देखते सन् २२ से लेकर अब तक भारतीय स्त्रियों ने मैदान में निकल कर फ़ैशन की धज्जियाँ ऐसी

उड़ाईं कि विदेशी स्त्रियाँ दङ्ग रह गईं। अब तो विदेशों में भारतीय स्त्रियों की बहादुरी की चर्चा स्त्री और पुरुषों में बराबर चल रही है, बहुतेरी विदेशी बहिनें अपना सारा लिबास छोड़ कर साड़ियों का उपयोग करने लगी हैं। मगर भारतीय महिलाओं को इतने ही से चुप न हो जाना चाहिए। यह ज़माना क्रान्ति का है, ऐसा ज़माना बार-बार नहीं आता। ऐसे ही अवसरों पर हर देश अपने-अपने देश में नए-नए सुधारों का प्रचार आसानी से कर सकता है। प्यारी बहिनो, अब चुपचाप बैठने का ज़माना नहीं है। आओ, कार्यक्षेत्र में उतर आओ। फ़ैशन को छोड़ो। इसमें क्या धरा है। इसी ने अब तक हमारे देश को बर्बाद किया है।

आशा है, हमारी बहिनें हमारी इस सीधी-सादी प्रार्थना पर ध्यान देकर अपने देश का कल्याण करेंगी। क्योंकि हमारा देश इस समय बड़े सङ्कट में है। उसे इस सङ्कट से उबारने में अपने पुरुष भाइयों का साथ देना हमारा धर्म है।

—प्रभुदेवी पाँड़े

卐 卐 卐

अभिनयमय है परिवर्तन !

[श्री० 'सन्तोषी']

अभिनयमय है परिवर्तन।

प्रकृति-नटी ने गात सजा कर,
जलमय जगती पर आ-आकर,
हरित-हरित आँगन को पाकर,
दिखलाया अस्थिर नर्तन।
अभिनयमय है परिवर्तन ॥

रञ्जित रवि की रश्मि-राशि कल,
पीती पुष्पों का मुक्तादल,
धुल जाते हैं पल्लव कोमल,
दिखता उनमें परिवर्तन।
अभिनयमय है परिवर्तन ॥

❀

निर्झर का निनाद मृदु छलछल,
निर्झरिणी का करना कलकल,
अवनी-तल पर छाया जल-जल,
गीला है उसका कन-कन।
अभिनयमय है परिवर्तन ॥

सघन-घनों को नभ में पाकर,
नर्तन-रत हैं शिखी धरा पर,
निशिबाला झलमल मुसका कर,
ले जाती है मेरा मन।
अभिनयमय है परिवर्तन ॥

चञ्चल चपला नभ में आकर,
मेघावलियों से मुसका कर,
राशि-राशि आभा बिखरा कर,
दे जाती क्षण भर दर्शन।
अभिनयमय है परिवर्तन ॥

कहानी

[श्री० वीरेश्वरसिंह जी, बी० ए०]

मुझे जैसे किसी ने मेज़ की ओर खींच-सा लिया, कुर्सी स्वयं मेरे नीचे और क़लम पालतू बुलबुल की तरह हाथ में आ रही। आज मेरा हृदय कह रहा था कि मैं निकल कर रहूँगा। बात बेपर्दा होना चाहती थी। तबीयत मचल-सी रही थी, और मचली हुई तबीयत के लिए लाल होठों के रस तथा काली स्याही के सिवा तीसरी दवा इस दुनिया में नहीं है। मैंने दावात का घूँघट उलट दिया; वह भी भरी हुई थी।

बाज़ार लग रहा था। अँधेरा होते ही मनुष्य की छिपी कामनाओं के समान दूकानें जगमगा उठी थीं। लोग दिलों में उमङ्ग और जेबों में रुपए भरे घूम रहे थे। मोल-भाव हो रहे थे। कोई ख़रीद रहा था, कोई बेच रहा था। कोई ठगता था, कोई ठगा जाता था। सुरेश ने सुबह जग कर देखा कि जो रेशमी साड़ी उसने रात को बहुत चमकती हुई देख कर ख़रीदी थी, वह वैसी नहीं है और अब उसका लौटना भी कठिन है। वह एक साँस खींच कर रह गया!

यहाँ मैंने ख़ुश होकर क़लम दावात में डुबो दी। सच बात तो यह है कि इस रँगीली दुनिया में जो जीता रह सकता है, वह कहानी भी लिख सकता है। दुनिया तो स्वयं एक बोलती हुई कहानी है, और जीवन एक थका बटोही। इसे ऊँघने मत दो, इसके आँख और कान खुले रहें। कहानियाँ तो स्वयं टूटी माला के मोती के समान इसके सामने नाच उठेंगी।

जहाँ लुट जाने वाले फूल हैं, और लूट कर चल देने वाले भौंरे; सावन-भादों की घटाएँ हैं, और खुली खिल-खिलाती चाँदनी रातें; जहाँ कभी दिन बड़ा होता है कभी रात, उस दुनिया में मसाले की क्या कमी? बूढ़े लोग लाख खीझें, किन्तु जब तक दुनिया में जवानी आती-जाती रहेगी, और जब तक यहाँ स्त्री-पुरुष नाम की दो बलाएँ जीती-जागती रहेंगी, तब तक यहाँ आँखें चार होती ही रहेंगी, बिजलियाँ टूटती ही रहेंगी, और रोज़ नए क़िस्से होते ही रहेंगे।

पर तो भी नए दर्ज़ी के लिए सुई में तागा डालना बहुत आसान नहीं है। मैं कुछ लिखने तो बैठ गया, पर लिखूँ क्या? यदि बिल्ली-चूहे की बात छेड़ता हूँ, तो बात मेरे वश की न रहेगी। कहीं बिल्ली बिगड़ उठी और चूहे पर टूट पड़ी, तब तो सारा क़िस्सा ही तमाम हो जाएगा। ध्यान आया कि बहुत दिन हुए रूपनगर में एक राजा राज्य करता था। पर वह इतना बूढ़ा हो गया है कि मुझे सन्देह था कि कहानी की बेढब मञ्ज़िल जीते जी तय कर लेगा या नहीं। इतने ही में मैं चौंक पड़ा। मैंने सुना, जैसे कोई दो व्यक्ति बातें कर रहे हों। खिड़की से झाँक कर देखा, चाँदनी खिलखिला रही थी। धीमी-धीमी हवा बह रही थी, जैसे वह डरती हो कि कहीं किसी सुन्दरी का वस्त्र अस्त-व्यस्त न हो जाय। पेड़ ऊँघ से रहे थे, और कभी-कभी करवटें सी बदल रहे थे। दिशाएँ काना-फूसी कर रही थीं। मालूम होता था, दूध के समुद्र में सभी वस्तुएँ घुली-मिली जा रही हैं। बाग़ में चलते-चलते एक युवक ने अपने साथ की युवती की कमर में हाथ डाल दिया और कहा—लीला, इसी बाग़ में हम तुम पहले-पहल मिले थे। याद है? पर उस दिन तो बात दूसरी थी। तुम डरती थीं, मैं हिचकता था, पर आज की तो बात ही और है, × × × लीला? × × ×

लीला चुप थी! वह कुछ पूछ भी नहीं रही थी। पुरानी बातों को फिर से दुहराने की कोई ऐसी ज़रूरत भी न थी। किन्तु कभी-कभी ऐसा समय आता है, जब हमारा हृदय अपने को खोल कर रख देने के लिए विकल हो उठता है। हम बोलते हैं, केवल अपनी आवाज़ सुनने के लिए। हमें अपनी ही स्वर-ध्वनि में सुख मिलता है। पुरानी बातों को जो मनुष्य ज..ता

भी होता है, उसके सामने दुहराने में हमें एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलता है। हम जैसे दिखलाना चाहते हैं कि—"देखो, तुम्हारी किताब और हमारी किताब के पन्ने कैसे मिलते-जुलते हैं।" जिस घर में हम पहले रह चुके हैं, उसमें जाकर उसकी एक-एक कोठरी खोल कर हम देखते हैं, आँगन में खड़े होकर पुरानी स्मृतियों की एक साँस भरते हैं और कहते हैं—"देखो तो, वह वही घर है, अब कैसा लगता है!"

वीरेन्द्र (युवक का यही नाम था) इस समय ऐसी ही मानसिक अवस्था में था। वह कहने लगा—लीला, उस दिन तुम स्त्री-स्वतन्त्रता तथा हिन्दू-समाज के वैवाहिक विधान पर इतना अच्छा बोलीं कि मैं मुग्ध हो गया। मैं तुम्हारी ओर एकटक देख रहा था। तुम्हारी सुन्दरता मुझे खींच रही थी तथा तुम्हारे विचार मेरी आशा की पीठ ठोंक रहे थे। इतने ही में किसी ने मुझे गुदगुदा सा दिया। मैंने देखा, मैं अपनी कल्पना से खेलने में उलझा हुआ था। दिल की उम्मीद कह रही थी, घबराओ नहीं और विचार कह रहा था, मुश्किल है, यह कैसे हो सकता है?

मैंने तुम्हें उस दिन इतना देखा और इस तरह देखा कि तुम मुझे पहचान गईं। फिर लीला, मैं तुमसे किसी बहाने बोला और तुम्हें जाने कैसे एक दिन थोड़ा सा चूम भी लिया। मैंने उसी दिन पहले-पहल अच्छी तरह से समझा कि मेरा साँवला रङ्ग तुम्हें ख़राब नहीं लगता। मैंने इलाहाबाद छोड़ कर देहरादून के कॉलेज में नाम लिखाया था, वह सफल हुआ। लीला ? × × ×

लीला ने कहा—कहो।

"जब देहरादून से वापस आना पड़ा, तब × × × उफ़! वह दर्द मैं कभी न भूलूँगा। मैंने समझा, मेरी क़िस्मत फूट गई। फिर पाँच वर्ष बाद जब मेरे गाँव से मेरी शादी तय होने की ख़बर आई, तब मैं क्या जानता था कि यह मेरी लीला ही है, जो मुझे मिल रही है। वीरेन्द्र ने लीला को दोनों बाँहों में कस कर लिपटा लिया और × × ×।"

किन्तु मैंने यहाँ पर क़लम उठा ली। वीरेन्द्र को मैंने आगे न बढ़ने दिया। क्या यह सब इतना आसान है, जितना कि दिखलाई देता है? क्या जिन तितलियों को हम उड़ते-फिरते देख कर ख़ुश होते हैं, यदि उन्हीं के पङ्खों से बाँध दिए जायँ तो हम वास्तव में प्रसन्न होंगे? क्या भोली, पवित्र, छबीली और स्थिर कलिकाएँ, उड़-उड़ कर रस लेने वाले चञ्चल भौंरों के साथ ख़ुश रह सकेंगी, यदि वे यह जान जायँ कि अब हम इनसे सदा के लिए बँध गईं? शायद मेरी कहानी ग़लत हो रही थी। यदि वस्तु दूसरे की है तो वह जितनी ही खुल कर हमारी आँखों के नीचे चमके, हमें उतनी ही ख़ुशी होती है। पर अपनी चीज़ ज़रा भी हाथ से बाहर जाते देख कर हम तिलमिला उठते हैं। मनुष्य की यह प्रकृति है। वह अपनी छत ऊँची बनाता है, जिसमें तबीयत ऊबने पर दूसरों के घरों में झाँक सके। किन्तु यदि दूसरे की छत ऊँची उठ गई, तो वह कुढ़ जाता है। मेरी आँखें एकाएक अपने मित्र विजय की मेज़ पर रक्खी हुई फ़ोटो पर ठहर गईं। उसका वह वाक्य मेरे कानों में गूँज उठा—"भाई, अब बोलो क्या करूँ, मैं तो कहीं का न रहा!" वह हाँफ-सा रहा था। गोरा, अच्छे बदन का, अमीर का लड़का नई-नई शादी के बाद ही ऐसा टूट जाय, मैं तो घबरा उठा। "आख़िर बात क्या है, विजय!"—मैंने पूछा। बहुत पूछने और ढाढ़स बँधाने पर उसने शुरू किया—"क्या कहूँ, मैं समझता था कि हिन्दू-समाज के सब बन्धन मूर्खतापूर्ण हैं। इसके नियमों को बनाते समय मनोविज्ञान की सहायता नहीं ली गई। स्त्री-पुरुष कैसा कटा हुआ, अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं। इसीलिए तो हम लोगों का पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाता। अङ्गरेज़ों को देखो, इन्हीं सब बातों से तो वे हवाई जहाज़ उड़ाते हैं और राज्य करते हैं।"

मैं ज़रा मुस्करा पड़ा, पर विजय कहता गया—"सच बात है। मैं कबूतरों को पङ्ख और गर्दन फुला कर, "गुटरगूँ" कर, प्रेमालाप करते देखता तो सोचता कि हिन्दुस्तानियों से अच्छे तो यही हैं। क्या हर्ज है, यदि विवाह के पहले भी लड़के-लड़कियाँ आपस में मिलती-जुलती रहें और एक-दूसरे को जान जायँ। मैं कुढ़ता था कि आख़िर ये बूढ़े अपनी मुन्नी और चम्पा को कब तक सन्दूक़ में बन्द किए रहेंगे।

"१९२९ की गर्मी की छुट्टियों में मैं हरद्वार गया। हर की पैड़ी हरद्वार का कलेजा है। उसे निकाल डालो तो हरद्वार की जान निकल जाय। उससे अच्छी और कोई जगह न देख कर मैं टहलने के लिए रोज़ शाम को वहीं

जाने लगा। वहाँ की रौनक़, लोगों का जमघट और स्त्रियों का स्वतन्त्र विचरण देख कर मैं ख़ुश हो गया। मैंने कहा, यह है जगह, जहाँ ज़िन्दगी कट जाय। यहाँ कुछ जान मालूम पड़ती है। मैं बहुत ख़ुश था। मेरा दिल बढ़ा हुआ था। मैं सभी से हँस कर पुराने जान-पहचान वाले की तरह बातें करता था। इसीलिए जब उस दिन चटपटे वाले के पास दूसरा गिलास न निकला, तो मैंने अपना गिलास ख़ाली करके उस नवयुवती से कहा, आप यह गिलास ले सकती हैं, पर मैं इसमें पी चुका हूँ, ज़रा जूठा है। वह सूरत मेरे दिल में कई दिनों पहले ही समा चुकी थी। उसके लाल होठों ने और पैनी-तिरछी आँखों ने मेरे दिल में जो घाव किए थे, उन्हें मैंने कितनी ही रातों को चुपके-चुपके चूसा था। उफ़! कितने मीठे और नशीले थे वे! हाँ, तो जब उसने हाथ बढ़ाते हुए कहा कि कोई हर्ज नहीं, आप ही का तो जूठा है, तो मैं खिल पड़ा। वाह, भलमनसाहत की हद हो गई। अब मिलाओ इसे किसी घर की गड़ी हुई चक्की से! ××× दोनों एक-दूसरे को दिल ही दिल तो जानते ही थे। एक पतली सी झिल्ली थी। अब वह भी टूट गई। हरद्वार मुझे बड़ा अच्छा मालूम होने लगा।

"जब हैज़ा फैलते देख पिता जी ने चलने की तैयारी कर दी, तो मैं मन ही मन बहुत बिगड़ा। ख़ैर ××× कुछ भी हो, भाई, मैंने कभी यह न सोचा कि यदि यही लड़की मेरे सिर मढ़ दी जाय, तो मैं इतना न उछल सकूँगा।"

☛ बैठे हुए १—प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, २—प्रयाग विश्वविद्यालय के गल्प-सम्मेलन के सभापति—श्री० कौशिक जी ३—श्री० सहगल जी। (खड़े हुए)—विश्वविद्यालय के हिन्दी-परिषद के मन्त्री तथा इस कहानी के लेखक श्री० ठाकुर वीरेश्वरसिंह जी, जिन्हें प्रथम पुरस्कार मिला था। (सामने श्री० सहगल जी के दोनों बच्चे चि० स्नेहलता तथा नरेन्द्र 'रायसाहब')।

मेरे हृदय में सन्देह चौंक पड़ा। मैंने कहा—तो क्या, विजय, तुम्हारी शादी इसी से ×××

विजय ने कहा—हाँ, इसी से हुई है। उस रात को जब मैंने उसे देखा तो मेरी सारी ख़ुशियाँ और उम्मीदें बारूद सी उड़ गईं। मुझे जैसे किसी ने थप्पड़ मार दिया हो। वह कुछ मुस्कराई, पर मैं वहाँ खड़ा ही न रह सका। मैं गर्दन नीची करके वहाँ से चला आया।

मेरा जी धड़क उठा। मैंने कहा—विजय, आश्चर्य है, जो तुम सुखी होने के बजाय और अपने भाग्य की सराहना न करके, इतना शोक कर रहे हो।

विजय ने कहा—क्या करूँ भाई, जानता सब हूँ, पर न जानें क्या दिल को काट-सा रहा है। मैं सोचता हूँ, यह वही स्त्री है, जिस तक किसी की भी पहुँच हो सकती थी।

"विजय!"—मैंने ज़ोर देकर कहा—"वह भी क्या इसी तरह नहीं सोच सकती? तुम्हारा क्या अधिकार है कि उसे इस तरह लाञ्छित करो। ज़रा अपनी ओर देखो, उसकी ओर देखो, और देखो अपने कर्तव्य को।"

विजय ने साँस लेकर कहा—सब समझता हूँ। तुम्हारा तर्क ठीक है, पर न जाने क्यों हृदय उसे उगल

देता है। वह उसे ग्रहण ही नहीं करता। न जाने क्या दिल में मसोस रहा है। सिर धक्के से इतना चकरा रहा है कि मुझे कुछ सूझता ही नहीं।

मैंने एक लम्बी सी साँस खींची और कहा—विजय, अफ़सोस × × × !

मेरी लिखी हुई कहानी के पन्ने सामने पड़े हुए थे। मैंने उन्हें उठाया और फाड़ डाला। सरला, जो उसी कमरे में बैठी हुई अपनी साड़ी में कामदानी का काम कर रही थी, बोल उठी—क्यों, लिख कर फिर फाड़ क्यों डाला?

मैंने कहा—कुछ नहीं, मैंने नायक को, नायिका के पास जाने से ज़रा रोक दिया, बस वह बिगड़ खड़ा हुआ।

"तुम बड़े वैसे हो, क्यों रोक दिया बेचारे को?" कह कर सरला मुस्करा पड़ी। किन्तु आदमी अपने को कैसा धोखा देता है, यह विचार मेरे हृदय में बड़े ज़ोरों से कसक रहा था। वह जिन नवीन सुधारों में अपनी एड़ी-चोटी का पसीना एक करके हाँफ उठता है, अफ़सोस, उसके पीछे एक सूक्ष्म अहं, दिल-बहलाव का एक बारीक भाव छिपा रहता है। पड़ोसियों को जतलाने के लिए वह दिमाग़ की कड़ाही में ऐसी-ऐसी पूरियाँ छानता है, ऐसे-ऐसे महँकते हुए पकवान बनाता है, जिन्हें वह स्वयं हज़म नहीं कर सकता।

विधवा

[श्री० कपिलदेव नारायण सिंह, "सुहृद"]

जीवन के इस शून्य सदन में, जलता है यौवन-प्रदीप।
हँसती तारा एकान्त-गगन में !
जीवन के इस शून्य सदन में !!

पल्लव रहा शुष्क-तरु पर हिल,
मरु में फूल चमकता झिलमिल।
ऊषा की मुसकान नहीं यह,
सन्ध्या विहँस रही उपवन में !
जीवन के इस शून्य सदन में !!

※

उजड़े घर, निर्जन खँड़हर में
कञ्चन थाल सजा निज कर में
रूप-आरती सजा खड़ी,
किस सुन्दर के स्वागत चितवन में !
जीवन के इस शून्य सदन में !!

सूखी सी सरिता के तट पर
देवि ! खड़ी सूने पनघट पर
अपने प्रिय दर्शन अतीत की,
कविता बाँच रही हो मन में !
जीवन के इस शून्य सदन में !!

※

नवयौवन की चिता बना कर
आशा-कलियों को स्वाहा कर
भग्न-मनोरथ की समाधि पर,
तपस्विनी बैठी निर्जन में !
जीवन के इस शून्य सदन में !!

[कुमारी शकुन्तला देवी गुप्ता, बी० ए०, हिन्दी-प्रभाकर]
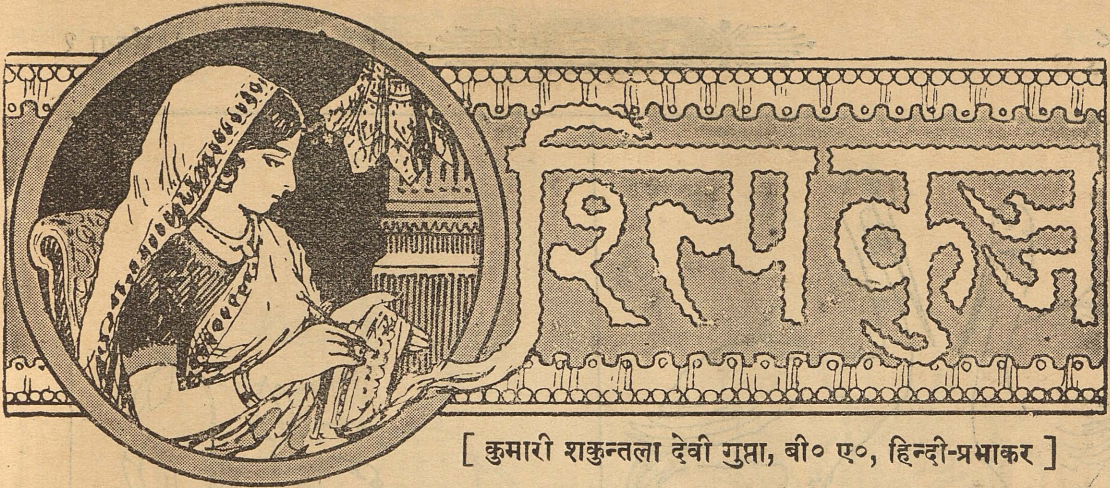
छोटे बचों का जूता

जूता बनाने के लिए १ दाँत का क्रोशिया और बारीक ऊन ३½ औन्स चाहिए।

इसके बनाने की विधि यह है कि १० इञ्च लम्बी चेन बना कर दोनों सिरे जोड़ लो, फिर प्रत्येक चेन में १ तेहरा बनाते जाओ, जब तक कि इसकी लम्बाई १० इञ्च न हो जाय। अब पैर बनाने के लिए सारा चक्र नहीं बनाना होगा, बल्कि आधा चक्र बार-बार बुनना होगा, जब तक कि २ इञ्च न
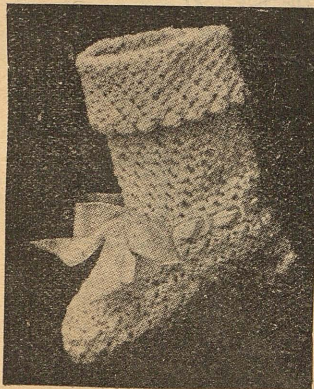
हो जाय। फिर इसके चारों ओर १½ इञ्च बुन कर पैर को दोहरा करके जोड़ दो। ऐसा करने से इसकी एड़ी और पञ्जा स्वयं ही बन जायगा, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। फिर ऊपर से दो इञ्च मोड़ दो और पैर के पास १ इञ्च चौड़ा रिबन डाल दो। दूसरा भी इसी प्रकार से बनेगा।

बच्चे की टोपी

यद्यपि टोपी बनाने के बहुत तरीक़े हैं, परन्तु यह विधि सबसे आसान और जल्दी बनने वाली है। इसके लिए बारीक और नर्म ऊन चाहिए, जिससे बच्चे को चुभे नहीं।
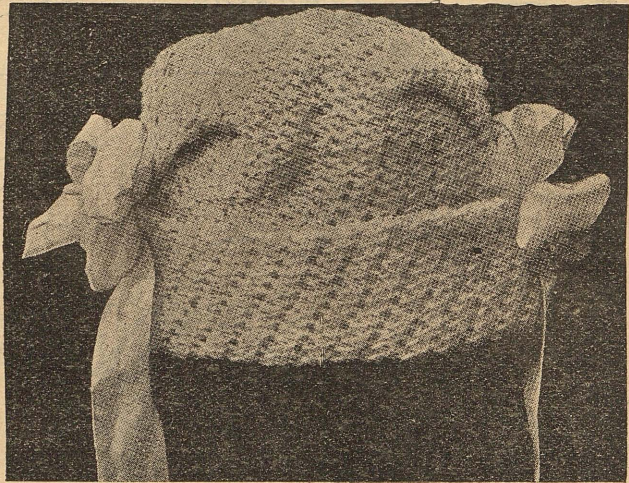
आरम्भ में क्रोशिए से १८ इञ्च लम्बी चेन बना कर, दोनों सिरे जोड़ लो, फिर प्रत्येक चेन में क्रोशिए पर बिना तागा लिए बुनते जाओ, जब तक कि १७ इञ्च लम्बा न बन जाय। फिर ऊपर का भाग जोड़ दो। नीचे की ओर से ३ इञ्च मोड़ दो, फिर ऊपर का सिरा उस मोड़े हुए के ऊपर जोड़ दो। इसी प्रकार दूसरा सिरा भी जोड़ दो, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। उन दोनों सिरों पर रेशमी रिबन से फूल बना कर लगा दो। यह बड़ी सुन्दर टोपी शीघ्र ही बन जाती है। यदि यह नाप बड़ा हो, तो छोटा भी बन सकता है।*

* 'शिल्प-कुञ्ज' नामक पुस्तक का एक पृष्ठ।

'शिल्प-कुञ्ज' नामक पुस्तक के कुछ सुन्दर नमूने [चित्रकार—श्री० एच० बागची
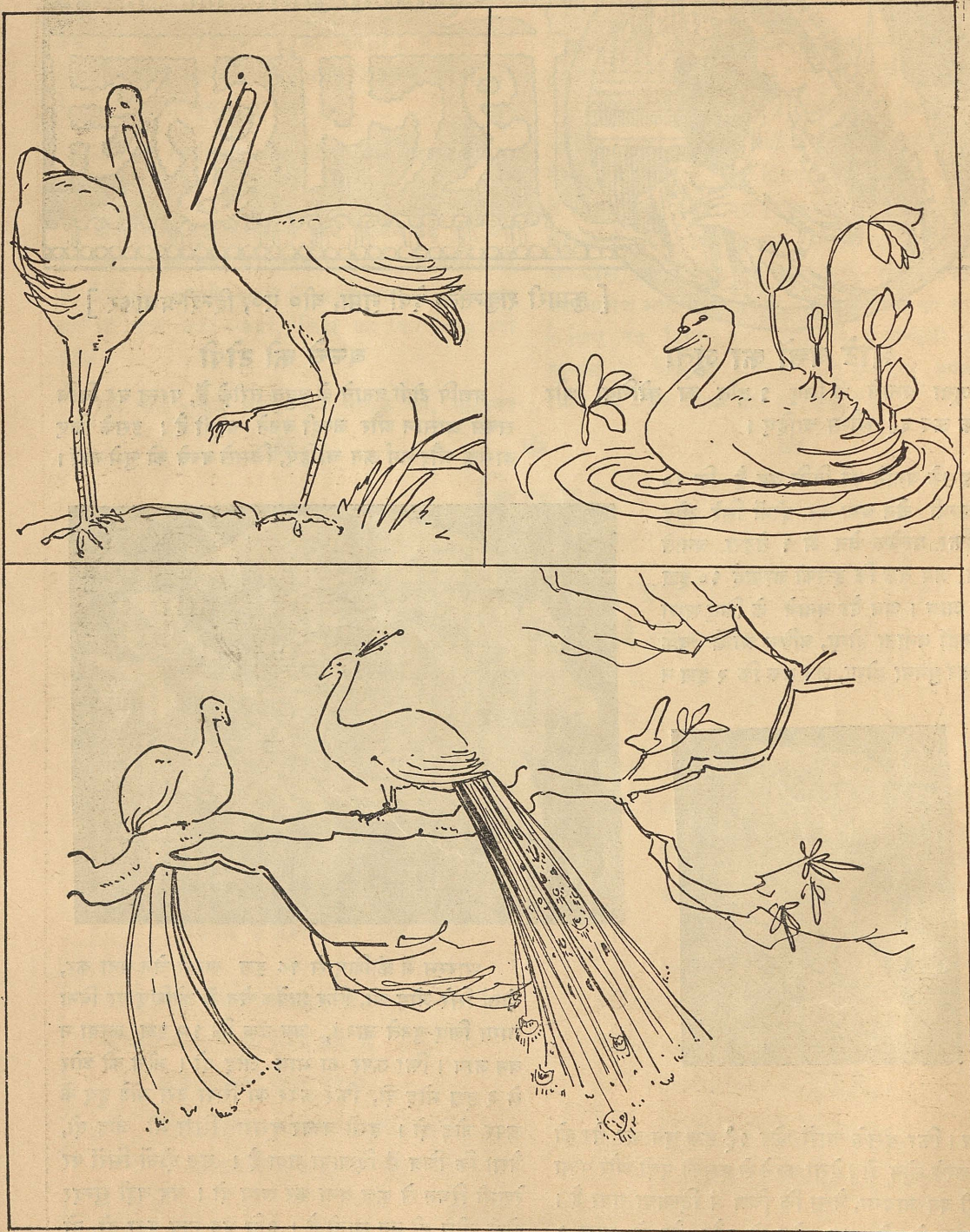
'शिल्प-कुञ्ज' नामक पुस्तक के कुछ सुन्दर नमूने [चित्रकार— श्री० एच० बागची

नमक की झील

नमक की झील (Salt Lake) में २३ प्रतिशत नमक होने के कारण वहाँ का पानी कभी बर्फ़ में परिवर्तित नहीं होता था, परन्तु पिछले वर्ष ऐसा हो गया। जाड़ों में इस झील की सतह पर २ फ़र्लाङ्ग लम्बा और १ इञ्च मोटा बर्फ़ जम गई थी। इसका कारण यह था कि अधिक समय तक ठहरने वाली कड़ी सर्दी के कारण नमक का अधिक भाग नीचे बैठ गया था और ऊपर के पानी का वज़न कम हो जाने के कारण उस पर बर्फ़ जम गई।

❀

हृदय की गति का फ़िल्म

जब से फ़िल्म बनाने का प्रचार हुआ है, तब से वैज्ञानिक इसका प्रयोग अपनी खोजों में भी करने लगे हैं। फ़िल्मों द्वारा कई प्रकार की वैज्ञानिक बातें जनता को तथा विद्यार्थियों को सरलता से बताई तथा दिखाई जा सकती हैं। कई फ़िल्म कम्पनियाँ केवल इसी प्रकार के फ़िल्म बनाने के लिए स्थापित की गई हैं। अब वैज्ञानिक हृदय की गति का फ़िल्म बना रहे हैं, जिससे यह पता चल सकता है कि अमुक हृदय नीरोग है या रोगी, और यदि रोगी है तो उसे क्या रोग है। इससे हृदय के रोगों का निदान करने में डॉक्टरों को बड़ी सहायता मिलेगी।

❀

एक विचित्र दियासलाई

विलायत के एक वैज्ञानिक ने एक इस प्रकार की दियासलाई का आविष्कार किया है, जिसकी एक तीली कई हज़ार बार जलाई जा सकती है। यह तीली एक मसाले से स्पर्श करते ही जल उठती है और दूसरे मसाले से स्पर्श करते ही बुझ जाती है। इस आश्चर्यजनक दियासलाई का अधिकार ख़रीदने के लिए कई व्यापारी उस वैज्ञानिक को ख़ासी रक़में देने का लोभ दे रहे हैं।

❀

सबसे भारी मछली

बङ्गाल में एक ऐसी मछली पाई गई है, जो लगभग ८ फ़ीट लम्बी और पाँच फ़ीट चौड़ी है। उसका वज़न आठ मन है। इतनी भारी मछली पहले ही पहल वहाँ पर पकड़ी गई है।

❀

फ़्लाइङ्ग स्कॉट्समैन

एडिनबरा से लन्दन तक और लन्दन से एडिनबरा तक एक एक्सप्रेस गाड़ी नित्य चलती है, इसका नाम 'फ़्लाइङ्ग स्कॉट्समैन' है। यह गाड़ी बिना कहीं ठहरे एक साथ लगभग ४०० मील की यात्रा करती है। संसार में इस प्रकार बिना ठहरे इतनी दूर तक जाने वाली और कोई गाड़ी नहीं है।

❀

परमाणु के विषय में नई खोज

अब तक वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि संसार के सारे पदार्थ भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणुओं (Atoms) से मिल कर बने हैं। उनके कथनानुसार परमाणु पदार्थ की छोटी से छोटी माप थी, परमाणु के टुकड़े नहीं किए जा सकते थे। अर्थात् जल को हम दो प्रकार के परमाणुओं में बाँट सकते थे—प्राणवायु (Oxygen) तथा अद्रवायु (Hydrogen), परन्तु अब वैज्ञानिकों ने अपनी अमूल्य खोजों द्वारा अद्रवायु को भी टुकड़ों में विभाजित कर दिया है। परन्तु इसके लिए विशेष प्रकार के यन्त्रों की आवश्यकता होती है। यदि परमाणु का विभाजन सरल हो जाय, तो उससे निकली हुई शक्ति इतनी होगी, जितनी २०० अश्व-शक्ति के मोटर को २ वर्ष तक चलाने के लिए काफ़ी होगी। डॉक्टर टॉमस जॉन्स्टन का कथन है कि पृथ्वी को जितनी उष्णता की आवश्यकता होती है, वह सभी सूर्य से नहीं आती ; उसमें से बहुत सी उन परमाणुओं में से भी आती है, जो पृथ्वी के भीतर ही विभाजित होते रहते हैं। अभी तक इस विषय में वादविवाद हो रहा है।

❃

रेडियो द्वारा चिकित्सा

हमारे यहाँ प्रसिद्ध है कि आयुर्वेद-विद्या-विशारद पूर्व समय में हाथ से एक डोरा बाँध कर ही नाड़ी की परीक्षा कर लिया करते थे। कहा नहीं जा सकता कि यह कहाँ तक ठीक है। परन्तु अब यह सम्भव हो गया है कि बीमार को बिना देखे ही तथा कुछ मिनटों में ही एक सहस्रों मील स्थित रोगी की चिकित्सा की जा सकती है। कैनेडा के एक डॉक्टर ने इस पद्धति का आविष्कार किया है। जो खोज करने वाले छोटे-छोटे जहाज़ों पर चढ़ कर समुद्र में विचरण करते हैं अथवा वे जो उत्तरीय प्रान्तों के रहने वाले हैं, उन्हें डॉक्टरी सहायता मिलना कठिन हो जाता था। अब उस डॉक्टर ने रेडियो के द्वारा उनकी चिकित्सा करना आरम्भ कर दिया है। उसने प्रत्येक ऐसे जहाज़ पर उदाहरण के लिए चिकित्सा का सभी समान रख दिया है, तथा अपनी कुछ सूचनाएँ भी उन्हें दे दी हैं। जब वह बीमार की दशा का पूरा वर्णन रेडियो द्वारा सुनता है, तो रेडियो से ही उन्हें बीमार की चिकित्सा का सम्पूर्ण उपाय बता देता है और वे ऐसा ही कर लेते हैं। इस प्रकार अनेक प्राणियों की जानें बचा ली जाती हैं।

❃

गाएँ तथा सङ्गीत

इङ्गलैण्ड के एक कृषक के पास अनेक गाएँ हैं। कुछ दिनों से वे बहुत उदास रहा करती थीं। एक बार उनके स्वामी ने देखा कि गाएँ पास के घर से आई हुई सङ्गीत की ध्वनि को बड़े मनोयोग से सुन रही थीं और उनके चेहरों पर हर्ष के भाव थे। उनके स्वामी ने अपने घर के वायरलेस से एक गोशाला का भी सम्बन्ध कर दिया और अब गायों को ख़ूब सङ्गीत सुनाई देता है। फलस्वरूप वे सदा प्रसन्न रहती हैं और दूध भी अधिक देती हैं।

❃

हवाई जहाज़ का एक नया प्रयोग

जब आकाश में बादल नहीं होते, तब कुहरा पड़ता है और यह खेती को नष्ट करता है। जब आकाश में बादल होते हैं, तब कुहरा नहीं पड़ता। इसका अर्थ है कि बादल एक प्रकार से पर्दे का काम करते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने खेती की कुहरे से रक्षा करने का एक मनोरञ्जक साधन सोचा है। हवाई जहाज़ों द्वारा खेतों के ऊपर चारों ओर धुआँ फेंका जाता है, जो कुहरा नहीं पड़ने देता। इस प्रकार हवाई-जहाज़ों द्वारा कृत्रिम बादलों का काम लिया जा सकता है।

❃

कुछ म्यूनिसिपैलिटियों की बातें

न्यूयॉर्क में ५ सेन्ट ट्राम का किराया लगता है, जिस प्रकार बम्बई में एक आना। एवर्डीन को प्रति वर्ष बर्फ़ सड़कों पर से हटवाने में ३,०००) व्यय करने पड़ते हैं। अमेरिका के बफ़ेलो नगर में पुलिस को जो पेन्शन मिलती है, उसका अधिकांश भाग 'कुत्तों के कर' से प्राप्त होता है।

पिट्सबर्ग की म्यूनिसिपैलिटी के पास लगभग ३० अरब की सम्पत्ति है, यद्यपि नगर की आबादी केवल ६,६१,००० ही है। वहाँ टैक्सों से लगभग ७॥ करोड़ रुपए वार्षिक की आय होती है। अस्पताल आदि के लिए वहाँ ७५ लाख वार्षिक व्यय होता है। स्वास्थ्य-विभाग का व्यय २२ लाख है। पुलिस का व्यय १ करोड़ वार्षिक है। अजायबघर, पार्क आदि में २१ लाख प्रतिवर्ष व्यय किया जाता है। मेयर का वार्षिक वेतन ३०,०००), इञ्जिनियर का ३०,०००), गवर्नमेण्ट वकील का २४,०००), ख़ज़ाञ्ची का २४,०००) तथा पब्लिक हेल्थ ऑफ़िसर का २१,०००) है। म्यूनिसिपैलिटी के सदस्यों को भी क़ानून भङ्ग करने के अपराध में जुर्माना देना होता है।

❀

न्यूयॉर्क के आकाशचुम्बी भवन

धीरे-धीरे न्यूयॉर्क में आकाशचुम्बी भवनों की संख्या बढ़ रही है। प्रति वर्ष इन नए भवनों के लोहे के ढाँचे चारों ओर दिखाई देते हैं।

इनमें से हाल ही में बनने वाला भवन है, 'मनहट्टन भवन', जो मनहट्टन कम्पनी के बैङ्क ने बनवाया है। इसकी ऊँचाई ८२३ फ़ीट है। यह याद रखने योग्य बात है कि वुलवर्थ बिल्डिङ्ग की ऊँचाई ७९२ फ़ीट है तथा क्रिसलर बिल्डिङ्ग की ८०८ फ़ीट। इसके बनाने में लगभग ७ करोड़ रुपयों का व्यय कूता गया था और इसके लिए ३२,००० वर्ग फ़ीट भूमि की आवश्यकता पड़ी थी।

आकाशचुम्बी भवन वे भवन कहलाते हैं, जिनमें २० मञ्ज़िलों से अधिक होती हैं। इस प्रकार के भवन न्यूयॉर्क में २०० से भी अधिक हैं। कुछ तो बनावट-सजावट में विस्मयकारक हैं। ग्राण्ड सेन्ट्रल बिल्डिङ्ग की मीनार तो स्वर्ण-जटित है और भारतीय मन्दिरों की भाँति दिखाई देती है। इनमें रहने वालों की संख्या इतनी बड़ी होती है कि इन्हें एक प्रकार से पूरे नगर समझना चाहिए। मञ्ज़िलों का तो कहना ही नहीं, चैनिन बिल्डिङ्ग में ५६ तथा क्रिसलर बिल्डिङ्ग में ६७ मञ्ज़िलें हैं। इन भवनों के ऊपर जाने के लिए लिफ़्ट लगे होते हैं। इनमें अन्य सभी प्रकार की सुविधाएँ होती हैं। कुछ के ऊपर तो पार्क भी होते हैं।

शिकागो नगर में इस समय संसार की सब से ऊँची इमारत बन रही है। इसका नाम होगा 'एपेरेलमार्ट', इसकी ऊँचाई होगी ८८० फ़ीट। इस प्रकार आकाशचुम्बी भवनों वाला प्रथम नगर शिकागो न्यूयॉर्क से बाज़ी मार ले जायगा। परन्तु न्यूयार्क यह कब सहन कर सकता है? वहाँ एक भारी भवन 'लारकिङ्ग भवन' के नाम से बनाया जायगा, यह स्कीम तैयार हो रही है। इसमें ११० मञ्ज़िलें होंगी, तथा इसकी ऊँचाई १,२०० फ़ीट होगी। क्या इसका बनना सम्भव हो सकेगा? न्यूयॉर्क के लिए, वास्तव में, कुछ भी असम्भव नहीं है।

⁕ ⁕ ⁕

मौन व्यथा

[कुमारी "नलिनी"]

कैसे व्यथा सुनाऊँ वाणी, वीणा में झङ्कार नहीं!
हृदय-वेदना दर्शाने को आँसू का भण्डार नहीं!
करुण कहानी कहने को हैं अब सकरुण अनुराग नहीं।
हृद्तन्त्री पर उच्छ्वासों का अब वह मुखरित राग नहीं!

सुख-मञ्जूषा में आहों का अब असीम निधि-भार नहीं!
लोचन में आरक्तमयी ऊषा का वह आकार नहीं!
व्यथिता की वेदना श्रवण करने को करुणागार नहीं!
अब इस दारुण मौन व्यथा का कुछ भी है विस्तार नहीं!

श्री० शेख़ इफ़्तिख़ार रसूल, बार-ऐट-लॉ

आप लन्दन से बैरिस्टरी पास करके फ़्रान्स की एक फ़िल्म कम्पनी में बड़ी सफलतापूर्वक एक्टर का काम करने लगे हैं। यूरोप में आप अपनी कला के लिए बहुत प्रख्यात हो चुके हैं। आपने भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में सिनेमा-सम्बन्धी कई विचारपूर्ण लेख भी लिखे हैं।
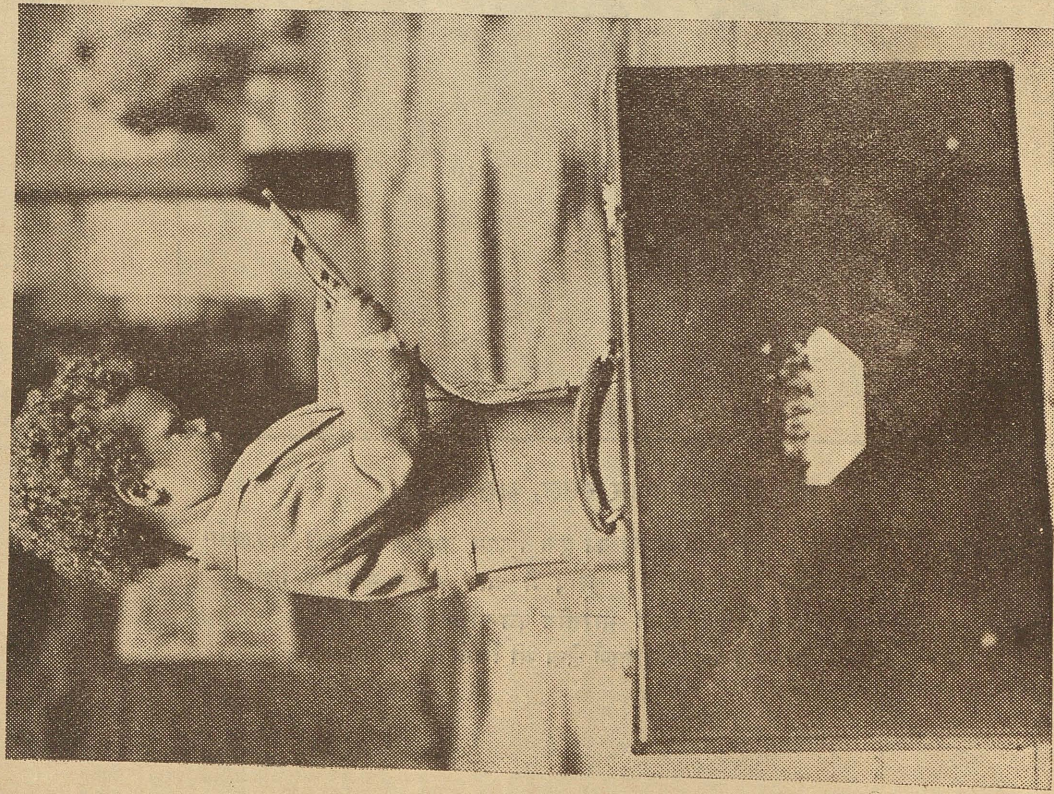
समाचार-पत्र-प्रेमी

यह बाल-यात्री लन्दन के पैडिङ्गटन स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा करता हुआ अख़बार पढ़ने में तल्लीन है। एक हमारा देश है, जहाँ बूढ़े भी अख़बार को हाथ लगाना समय को बर्बाद करना समझते हैं।
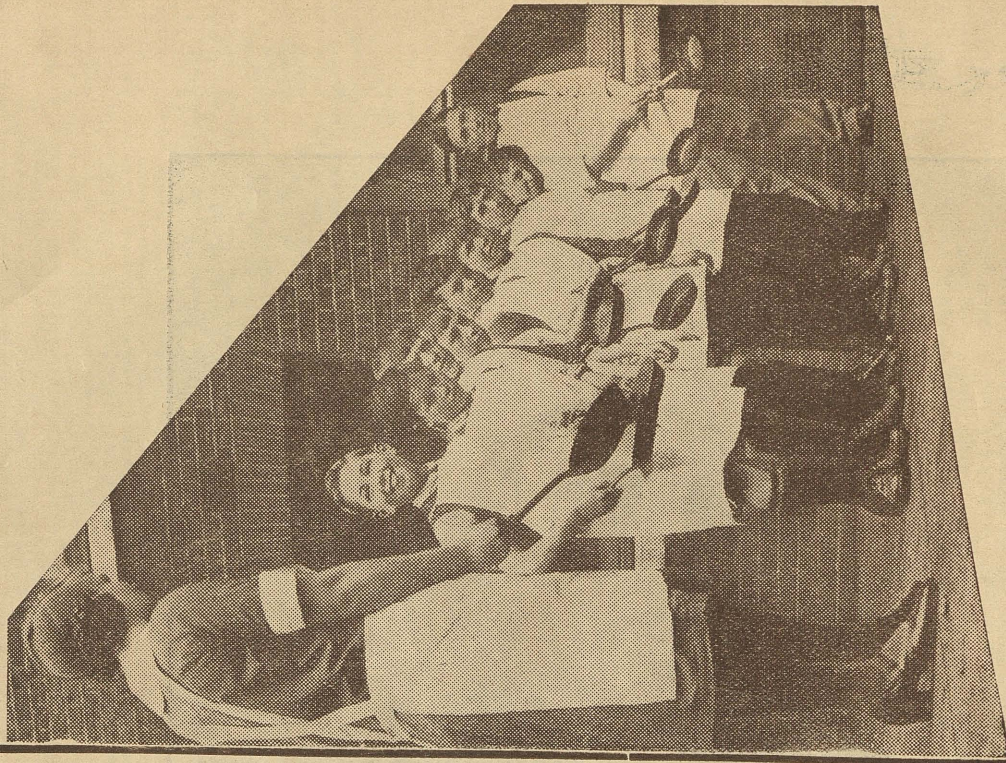
लड़कों को गृह-कार्यों की शिक्षा

लन्दन के कितने ही स्कूलों में लड़कियों की तरह लड़कों को भी गृह-कार्यों की शिक्षा दी जाने लगी है। 'चाँद' के इस चित्र में पाठक देखेंगे कि लड़के 'केक' बनाना सीख रहे हैं। जो लोग स्त्रियों को ही 'चौका-चूल्हे' की अधिकारिणी समझते हैं, उनको सावधान हो जाना चाहिए!
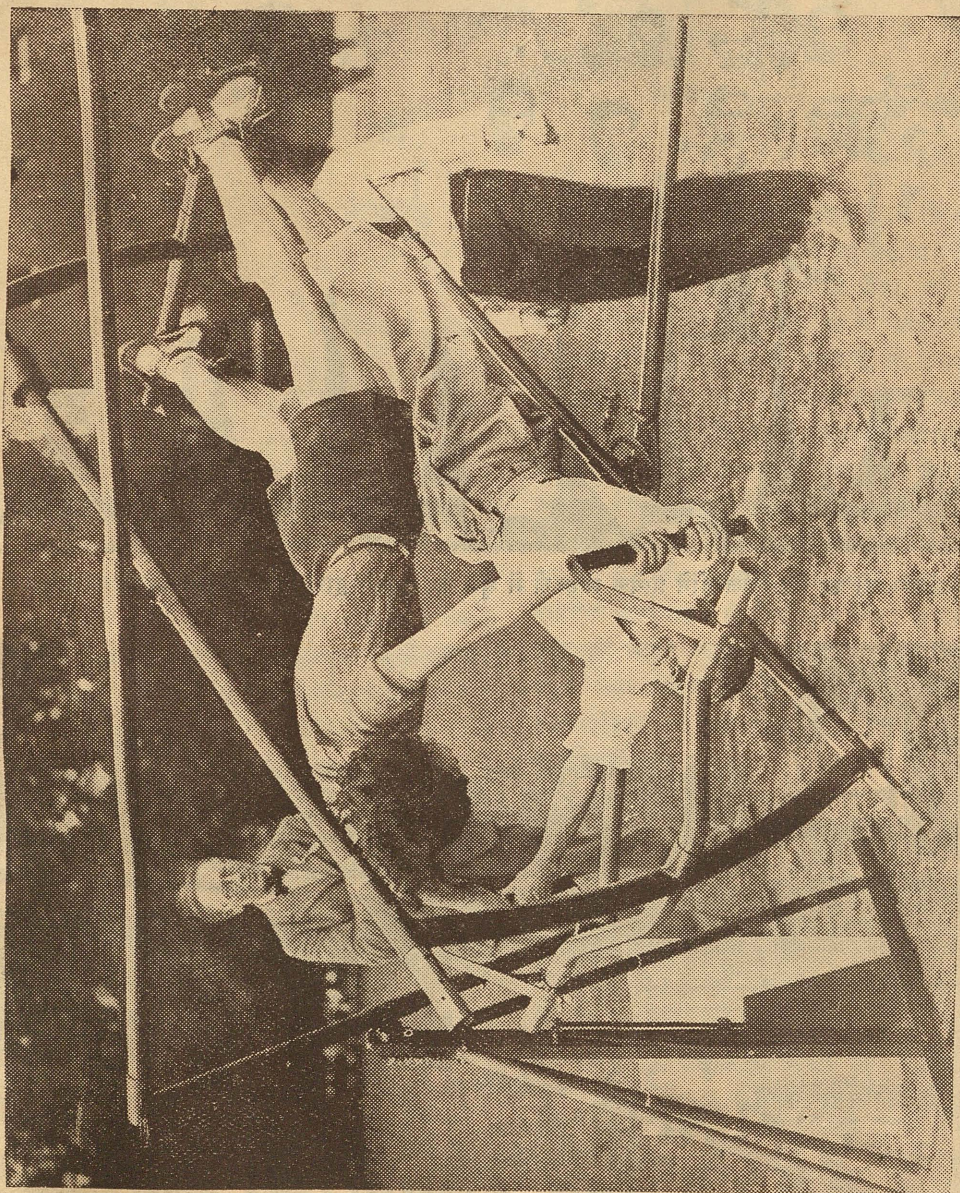
सभ्यता की महिमा

यूरोपियन स्त्रियाँ शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि के लिए बेहद ख़र्च करती हैं और कष्ट भी सहती हैं। इस चित्र में एक महिला शरीर को पतला बनाने के लिए एक नए ढङ्ग के यन्त्र से जमनास्टिक कर रही है। पाक परवरदिगार शीघ्र ही इन्हें दुर्बल कर दें, हमारी यही कर-बद्ध प्रार्थना है।
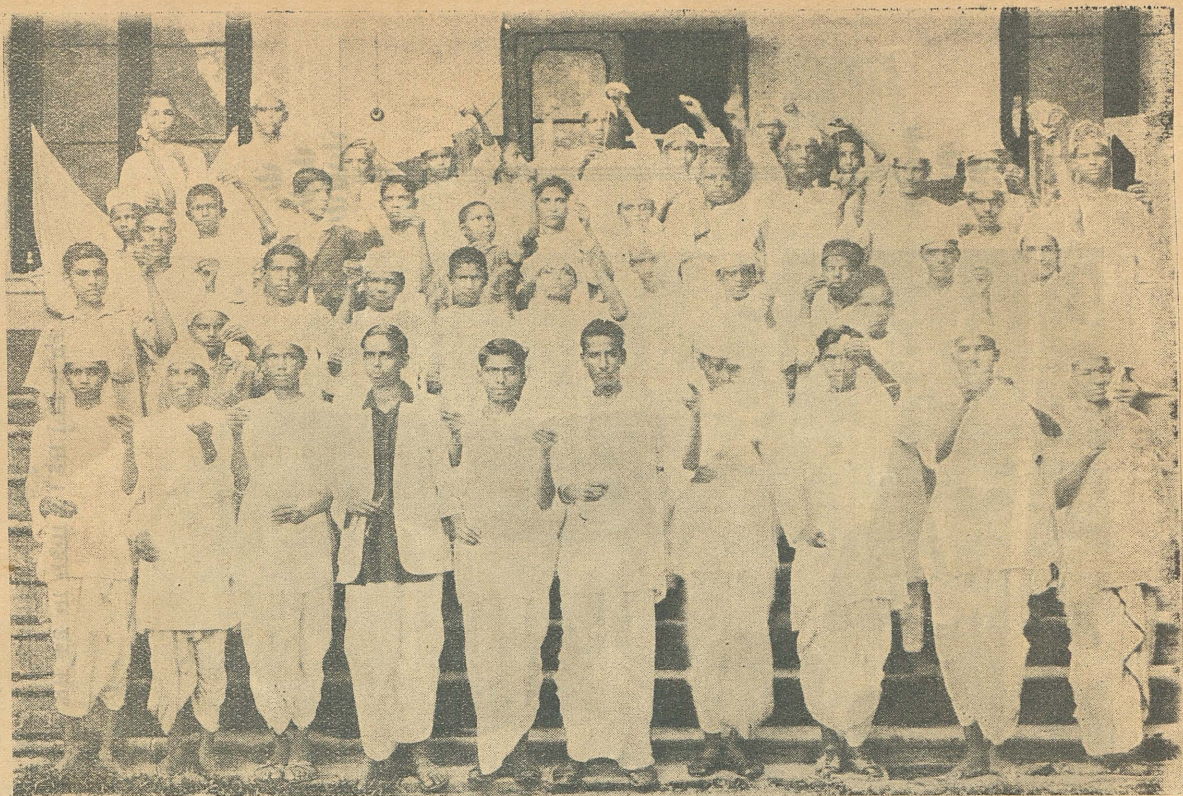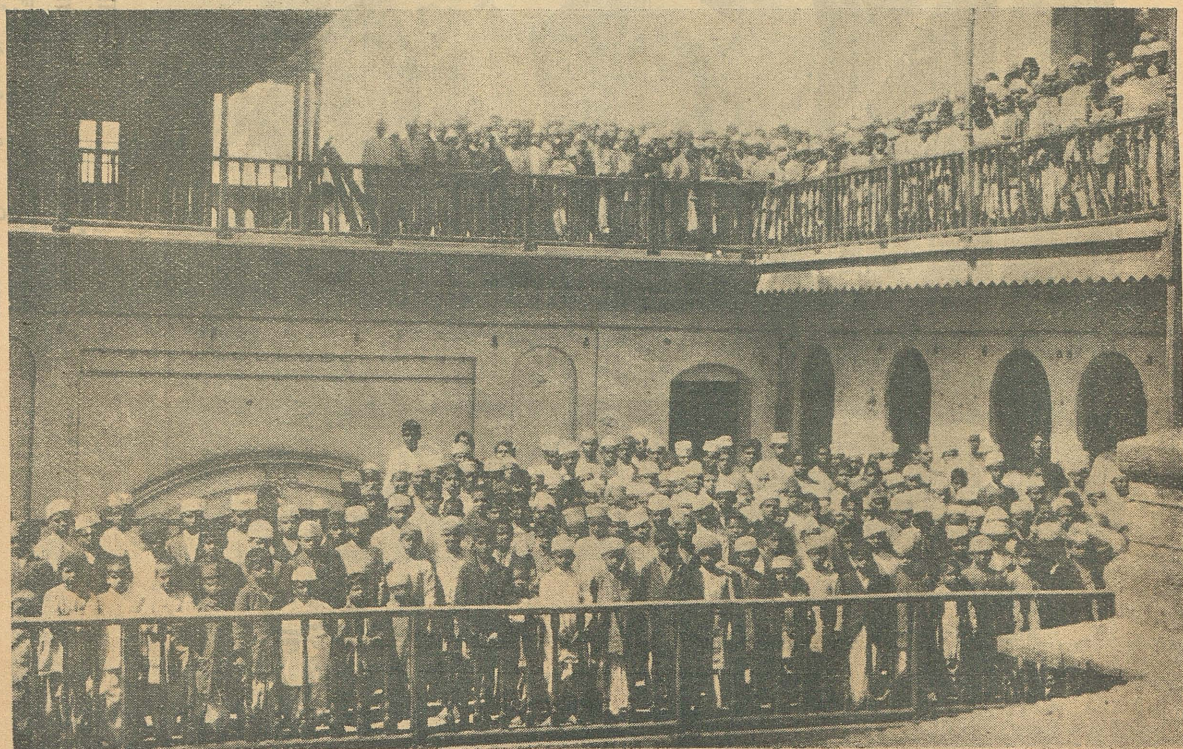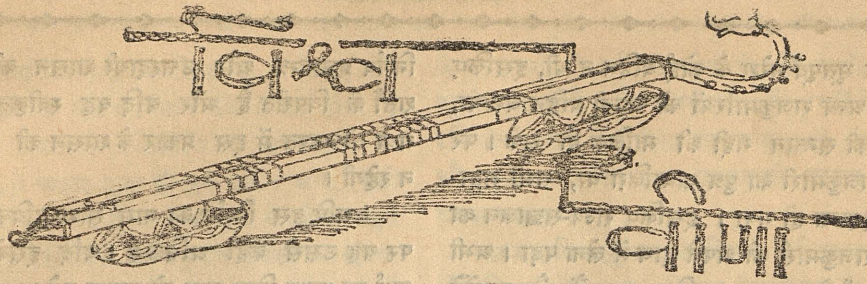
नायरों की विवाह-प्रथा

श्री० वी० ई० चैको ने 'इण्डियन' नामक मासिक पत्र में 'मालाबार की सामाजिक प्रथाएँ' शीर्षक एक मनोरञ्जक लेख प्रकाशित कराया है। उसका एक अंश, जिसमें नायर जाति की विवाह-प्रथा का विवरण है, यहाँ दिया जाता है :—

मालाबार की जन-संख्या में एक बड़ा भाग नायरों का है और यह जाति हिन्दुओं में बड़ा उच्च स्थान रखती है। यद्यपि ऊपर से देखने में यह मध्यम श्रेणी की एक ही संयुक्त जाति है, पर दरअसल वह अनेक श्रेणियों और फ़िर्कों में बँटी है, जिनमें से प्रत्येक की छुटाई-बड़ाई नियत है। प्रत्येक उपजाति अपनी लड़की का अपनी से ऊँची श्रेणी में विवाह करना चाहती है और सबसे ऊँची उपजाति अपनी लड़कियों का विवाह अपनी से भी ऊँची जाति अर्थात् ब्राह्मणों के साथ करना चाहती है। इन लोगों के विवाहों में किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता और वे सुभीते के ख़्याल से किसी भी समय ख़ुशी से अथवा कुछ समय पूर्व सूचना देकर ख़त्म किए जा सकते हैं। इस प्रथा के फल-स्वरूप कितने ही दोष उत्पन्न होते हैं, जिनको अब नायर जाति के बुद्धिमान व्यक्ति भली प्रकार समझ गए हैं, और उनके सुधार के लिए हाल में एक 'नायर विवाह और उत्तराधिकार बिल' तैयार किया गया है। सम्भवतः हिन्दुओं के गान्धर्व-विवाह के आदर्श को लक्ष्य में रख कर नायर रमणियाँ अपने पति का निर्वाचन स्वयम् करती हैं और उसे अपनी माँ के घर में बुला कर रखती तथा उसका भरण-पोषण करती हैं। जब उनकी ख़ुशी होती है तो वे भी पति के घर जाती हैं और उसके साथ रहती तथा खाती-पीती हैं। पति की सम्पत्ति पर उनका किसी तरह का दावा नहीं होता और जो कुछ थोड़ा सा रुपया ऊपरी ख़र्च या ज़ेवर वग़ैरह के लिए उनको दिया जाता है, उसी की वे अधिकारिणी होती हैं। जब पति का देहान्त हो जाता है, तो वे उसके घर को अन्तिम नमस्कार करके अपनी माँ के यहाँ चली आती हैं और उसी की सम्पत्ति की वे उत्तराधिकारिणी होती हैं। ऐसे विवाह के फल-स्वरूप जो सन्तानें उत्पन्न होती हैं वे अपनी माता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होती हैं। इनमें से लड़कियाँ तो विवाह करके माँ के साथ रहने लगती हैं, और लड़कों को कहीं भी प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करके रहने के लिए छोड़ दिया जाता है। इसके फल से नायर जाति के युवक कुटुम्ब के मामलों में बहुत कम ध्यान देते हैं और उनको किसी प्रकार के उत्तरदायित्व का प्रायः ज्ञान नहीं होता। यह प्रथा किसी ज़माने में बहुत उपयोगी थी, पर अब अव्यवहार्य होती जाती है, और इसलिए इसमें सुधार की चेष्टा की जा रही है। ट्रावनकोर और कोचीन के राजघरानों में इस प्रथा के अनुसार गद्दी का मालिक भाञ्जा होता है। वहाँ के शासक न तो अपनी जाति में शादी कर सकते हैं और न विवाहित पत्नी द्वारा उत्पन्न सन्तान गद्दी की मालिक हो सकती है। उनका उत्तराधिकार उनकी बहिन की सब से बड़ी सन्तान को, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, प्राप्त है। जब किसी शासक के अपनी सगी बहिन नहीं होती तो वह किसी अन्य परिवार की लड़की को बहिन बना लेते हैं और जब तक उस बहिन की सन्तान बालिग़ नहीं होती, तब तक वह स्वयम् राज्य-कार्य सञ्चालन करती है। इसके साथ ही वहाँ यह भी नियम है कि पुत्र के बजाय भाञ्जा ही मृत व्यक्ति का क्रिया-कर्म और श्राद्ध आदि सम्पन्न कर सकता है। ट्रावनकोर के आधुनिक इतिहास में इस नियम का प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद

है। वहाँ के भूतपूर्व नरेश के कोई बहिन न थी, इसलिए उन्होंने दो अन्य राजकुमारियों को अपनी बहिन बनाया, जिससे उनकी सन्तान गद्दी की मालिक हो सके। पर जब छोटी राजकुमारी का पुत्र नाबालिग़ था, तभी महाराज का देहान्त हो गया। इसलिए राज्य-सञ्चालन का भार बड़ी राजकुमारी को अपने हाथ में लेना पड़ा। अभी गत वर्ष वहाँ के शासक बालिग़ हुए हैं और उन्होंने अपनी चाची से शासनाधिकार प्राप्त किया है।

❀ ❀ ❀

साम्प्रदायिक निर्णय

'चाँद' के सितम्बर मास के अङ्क में हम साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में एक विस्तृत नोट प्रकाशित कर चुके हैं, जिससे विदित होता है कि भारत के सभी श्रेणियों के नेता उसे हानिकारक समझते हैं। नीचे हम 'मॉडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री० रामानन्द चटर्जी के आलोचनापूर्ण लेख का, जो उनके पत्र की सितम्बर की संख्या में प्रकाशित हुआ है, कुछ अंश देते हैं, जिससे पाठक इस ज़हरीली स्कीम का भेद और अच्छी तरह समझ सकेंगे।

प्रजातन्त्र और उत्तरदायी शासन का एक मुख्य चिन्ह यह है कि जिस दल का आज अल्पमत है, कल अपने विरोधियों को अपनी सम्मति के अनुकूल बना कर अथवा अन्य कारण से उसका बहुमत हो सकता है। इस तरीक़े से प्रत्येक दल को इस बात का मौक़ा मिल सकता है कि वह अपनी बुद्धिमत्ता, योग्यता और सेवा-भाव का उपयोग राष्ट्रीय हित के लिए कर सके। शासक-दल के व्यक्तियों के बदलते रहने से शासन-कर्ता बहुमत को राष्ट्र के प्रति अपने वास्तविक उत्तरदायित्व का ध्यान रहता है और वह मनमाना, बेक़ायदा अथवा भ्रष्ट कार्य करने से बचता रहता है। पर यदि किसी शासन-विधान द्वारा किसी एक जाति को सदा के लिए शासनकर्ता बहुमत बना दिया जाय, अथवा उसे विदेशी शासकों के हाथ में स्थायी शासन करने वाला औज़ार बना दिया जाय, तो उपरोक्त लाभ नष्ट हो जाते हैं। साम्प्रदायिक निर्णय प्रजातन्त्र और उत्तरदायी शासन की इन मुख्य शर्तों के विपरीत है और यदि वह स्वीकृत कर लिया गया तो भारत में इस प्रकार के शासन की कोई आशा न रहेगी।

यद्यपि इस निर्णय का नाम साम्प्रदायिक निर्णय है, पर यह उससे कहीं अधिक है। यदि इसके वास्तविक अर्थ पर ध्यान दिया जाय तो इसका उद्देश्य इतना ही था कि वह व्यवस्थापक सभाओं में विभिन्न जातियों के प्रतिनिधियों का हिस्सा नियत कर देता। पर इसमें इसके सिवाय अन्य बातों का भी निर्णय किया गया है। स्त्रियों का कोई ख़ास सम्प्रदाय नहीं है। इसी प्रकार यूरोपियन, ऐङ्गलो-इण्डियन, ज़मींदार, यूनीवर्सिटी, मज़दूर आदि की भी कोई प्रथक् जाति नहीं है। पर निर्णय में इन सब दलों के प्रतिनिधियों की संख्या भी नियत कर दी गई है। यह शायद इसलिए किया गया है कि जिससे विभिन्न सम्प्रदायों की स्थिति नौकरशाही की इच्छानुसार उसके हित के अनुकूल बनी रहे। निर्णय में यह भी कहा गया है कि कम से कम कुछ प्रान्तों में दूसरी व्यवस्थापक सभा भी रहेगी। इस बात से भी साम्प्रदायिक निर्णय का कोई सम्बन्ध न था। इसका आशय यही हो सकता है कि इन विशेष अधिकार-सम्पन्न लोगों को प्रजातन्त्र के पक्षपातियों का प्रतिद्वन्दी बना कर खड़ा किया जाय।

ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल भारत को जो नया शासन-विधान देने का प्रस्ताव कर रहा है, वह ऐसा है कि उसे कोई भी स्वाधीन या स्वाधीनता के लिए झगड़ने वाला राष्ट्र स्वीकार नहीं कर सकता। इसका उद्देश्य वोटरों और सर्वसाधारण में इस प्रकार फूट डाल देना है, जिससे सब प्रकार का सामुदायिक या राष्ट्रीय आन्दोलन असम्भव हो जाय। इस प्रकार के संयुक्त आन्दोलन के बिना न तो स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है, न उसकी रक्षा की जा सकती है। इस निर्णय का मूलतत्त्व यही जान पड़ता है कि स्त्रियों को पुरुषों के, एक मज़हब को दूसरे मज़हब के, एक जाति को दूसरी जाति के, एक श्रेणी को दूसरी श्रेणी के, एक स्वार्थ को दूसरे स्वार्थ के विरुद्ध खड़ा कर दिया जाय। इस निर्णय में कोई न्याययुक्त सिद्धान्त नहीं है और यह परस्पर विरोधी है। यह राष्ट्रीयता का विनाशक है।

यह योजना प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध है। प्रजातन्त्र शासन में एक अनिवार्य नियम यह होता है कि जो लोग जनता के प्रतिनिधि बन कर शासन का सञ्चालन करें, वे जनता द्वारा ही चुने जायँ। अगर किसी देश में कितने ही भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लोग बसते हों, तो उनके प्रतिनिधियों का अनुपात उनकी जन-संख्या के अनुसार होना ही सम्भव है।

वर्तमान योजना के अनुसार मुसलमान केवल मुसलमान उम्मेदवारों, ईसाई केवल ईसाई उम्मेदवारों और हिन्दू केवल हिन्दू उम्मेदवारों के लिए वोट दे सकते हैं। यदि किसी स्थान में किसी मुसलमान वोटर की सम्मति में कोई हिन्दू, ईसाई, अथवा कोई अन्य ग़ैर-मुस्लिम उम्मेदवार सबसे अधिक योग्य और निष्पक्ष है, तो उसे उस उम्मेदवार के लिए वोट देने से क्यों रोका जाय? और उक्त ग़ैर-मुस्लिम उम्मेदवार उस मुस्लिम वोटर की सम्मति से क्यों वञ्चित रहे? इसी प्रकार यदि कोई हिन्दू वोटर किसी मुसलमान या ग़ैर-हिन्दू उम्मेदवार को वोट देना चाहे तो उसे इसकी अनुमति किसलिए न दी जाय? भारत के अल्पकालीन प्रतिनिधि सत्तात्मक संस्थाओं के इतिहास में कितने ही हिन्दुओं ने मुसलमान और ईसाई उम्मेदवारों, कितने ही ईसाइयों ने ग़ैर-ईसाई उम्मेदवारों और कितने ही मुसलमानों ने हिन्दू और ईसाई उम्मेदवारों के लिए वोट दिया और उसका नतीजा अच्छा ही निकला। कट्टर सम्प्रदायवादी लोग तो कट्टर हिन्दुओं, कट्टर मुसलमानों या कट्टर ईसाइयों को ही चुना जाना पसन्द करते हैं, पर राष्ट्र के कल्याण की दृष्टि से यही आवश्यकीय है कि उसके व्यवस्थापक और शासक धर्मान्ध लोगों के बजाय ऐसे व्यक्ति हों, जो विभिन्न सम्प्रदायों और जातियों के हित-सम्बन्धी प्रश्नों को उदार दृष्टि से देख सकें।

संयुक्त चुनाव की प्रथा के प्रचलित होने की अवस्था में किसी प्रान्तीय कौन्सिल के अधिक-संख्यक सदस्य चाहे किसी भी मज़हब, जाति अथवा श्रेणी के हों, उनके सम्बन्ध में यही कहा जायगा कि सब सम्प्रदायों के लोगों ने उनके चुने जाने में सहायता दी है। इस प्रकार वे सदस्य भी सब जातियों के लोगों के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करेंगे और सबका हित-साधन करने की चेष्टा करेंगे। पर साम्प्रदायिक चुनाव की प्रथा के अनुसार सदस्यगण केवल अपनी ही जाति के लोगों के प्रति अपने को उत्तरदायी समझते हैं और साधारणतः वे उन्हीं के हित को दृष्टिगोचर रखते हैं। ऐसा शासन बड़ा ही अनुपयुक्त है और उसे स्वराज्य अथवा उत्तरदायी शासन नहीं कहा जा सकता।

साम्प्रदायिक चुनाव की, जिसमें विभिन्न दलों के लिए सीटें नियत हों, स्वयम् मिस्टर मैकडॉनल्ड ने निन्दा की है। गत वर्ष राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था :—

"अगर प्रत्येक चुनाव-क्षेत्र को किसी एक जाति या श्रेणी के लिए सुरक्षित कर दिया जाय, तो उस अवस्था में ऐसे राजनीतिक सङ्गठन के विकास की कोई गुञ्जायश न रहेगी, जिसमें समस्त सम्प्रदायों, समस्त धर्मों, समस्त श्रेणियों और समस्त अवस्थाओं का समावेश हो सके। यह एक ऐसी समस्या है, जिसका सुलझाना हमारे लिए आवश्यक है। क्योंकि अगर भारत में शक्तिशाली राजनीतिक जीवन उत्पन्न करना है, तो वहाँ पर ऐसे राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के लिए स्थान होना चाहिए, जिनका आधार भारत का हित हो, न कि जिनका आधार कोई ऐसा छोटा क्षेत्र हो, जो समस्त भारत से कम हो। यह भी प्रस्ताव किया गया है कि साम्प्रदायिक चुनाव-क्षेत्रों और साम्प्रदायिक वोटर-लिस्ट के बजाय सार्वजनिक चुनाव-क्षेत्र और वोटर-लिस्ट का ही निर्माण किया जाय, पर प्रत्येक सम्प्रदाय के सदस्यों की संख्या नियत कर दी जाय। यह प्रस्ताव देखने में अधिक आकर्षक और प्रजातन्त्र के अनुकूल जान पड़ता है, पर यह वास्तव में प्रथम प्रस्ताव से मिलता हुआ है। × × × इन मनोरञ्जक श्रेणी के लोगों (साम्प्रदायिक चुनाव के पक्षपातियों) को यह समझा सकना बड़ा ही कठिन है कि अगर तुम एक जाति को उसके अनुपात से अधिक सीटें देते हो, तो वे सीटें आसमान से नहीं आ जायँगी। उन्हें तुमको किसी दूसरी जाति से लेना पड़ेगा। जब उस जाति वालों को इसका पता लगेगा, तो अवश्य ही वे विचलित होंगे और समझेंगे कि उनके अधिकार की हत्या की गई।"

मि० मैकडॉनल्ड के इन उद्गारों और उनके द्वारा प्रस्तुत वर्तमान निर्णय का मिलान करने से ही सत्यवादी लोग उनको झूठा और परस्पर-विरोधी आदि समझेंगे। पर उनका ऐसा ख़याल करना ग़लती है। उनको एक ही

समय में विभिन्न गैलरियों के दर्शकों के सम्मुख विभिन्न प्रकार का पार्ट अदा करना था। इस परस्पर-विरोधिता के लिए उनके सामने बड़ा अच्छा उदाहरण था। माण्टेगु-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट में भी यद्यपि पृथक् निर्वाचन के विरोध में दलीलें दी गई थीं, पर निर्णय उसके पक्ष में किया गया।

मि० मैकडॉनल्ड ने अपने बयान के आरम्भ में ही यह आशङ्का प्रकट की है कि प्रत्येक सम्प्रदाय केवल अपनी सम्पूर्ण माँगों की दृष्टि से इस निर्णय की निन्दा करेगा। इन शब्दों से आलोचकगण भुलावे में पड़ सकते हैं। इस बात को सर्वथा छोड़ते हुए कि यह निर्णय न्याय-पूर्ण है अथवा अन्यायपूर्ण, अथवा इसमें अमुक जाति का पक्षपात किया गया है, यह सिद्ध किया जा चुका है कि यह बड़ा ही हानिकारक है। रह गई विभिन्न जातियों की माँगों की बात, उस सम्बन्ध में जनता को यह बतला देना आवश्यक है कि हिन्दू जाति ने, समष्टि रूप से कभी यह माँग पेश नहीं की थी कि उसे किसी प्रकार का विशेष अधिकार दिया जाय अथवा उसके साथ कोई विशेष व्यवहार किया जाय। हिन्दू-महासभा की वर्किङ्ग कमिटी ने मार्च १९३१ में शासन-सुधारों के सम्बन्ध में जो बयान प्रकाशित किया था, उसमें कहा गया है—"हिन्दू-महासभा यह बतला देना चाहती है कि उसने सदा से और अविचलित भाव से साम्प्रदायिक मामलों में पूर्णतया राष्ट्रीयता की नीति से काम लिया है।" इस सम्बन्ध में भारतवर्ष अथवा किसी एक प्रान्त के हिन्दुओं ने केवल तभी विरोध किया है, जब कि उन्होंने राष्ट्रीय और प्रजातन्त्र के आदर्शों को नाश होते देखा है और जब उनके अधिकारों का अपहरण करके अन्य जातियों को लाभ पहुँचाने की योजना की गई है। इस समय भी हिन्दुओं की दृष्टि से निर्णय का विरोध इसलिए नहीं किया जा रहा है कि उनको कोई विशेष अधिकार नहीं दिया गया। वरन् वे उसका विरोध इसलिए करते हैं कि विशेषकर अङ्गरेज़ शासकों और सौदागरों के हित के लिए और इसके सिवाय उन लोगों के हित के लिए, जोकि अङ्गरेज़ों के हाथ में औज़ार बने हुए हैं, उनके और समस्त भारत के हित का बलिदान कर दिया गया है।

❀ ❀ ❀

स्कूलों में कामशास्त्र की शिक्षा

विचारशील लोगों में कितने ही समय से यह विवाद चल रहा है कि कम उम्र के लड़के-लड़कियों को कामशास्त्र और सन्तान-निग्रह की शिक्षा दी जाय या नहीं। बङ्गाल में कुछ लेखकों ने सम्मति दी है कि इस विषय को मैट्रिकुलेशन के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित कर लेना चाहिए। दूसरे लेखकों ने इसका विरोध किया है। नीचे हम 'लिबर्टी' में प्रकाशित एक लेखक की सम्मति का सारांश देते हैं, जिससे पाठकों को इस महत्वपूर्ण विषय के सम्बन्ध में कितनी ही बातों का पता लगेगा :—

मैट्रिकुलेशन में लड़कों को कामशास्त्र की शिक्षा देना ऐसी बात है, जिससे इनकार किया ही नहीं जा सकता। जीवन के सम्बन्ध में एक दृष्टिकोण निश्चित करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को स्त्री-पुरुष विषयक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यकीय है। मनोविज्ञान के ज्ञाताओं का मत है कि इस विषय का सम्बन्ध हमारे जीवन से अन्य सब विषयों की अपेक्षा अधिक गहरा है। वे यहाँ तक कहते हैं कि हमारे प्रत्येक कार्य की तह में इस भाव का अस्तित्व रहता है। यही जीवन के समस्त कार्यों की सञ्चालन करने वाली शक्ति है।

मनोविज्ञान वालों की बात छोड़ देने पर भी इतना हम सब जानते हैं कि इस विषय के ज्ञान का अभाव सांसारिक जीवन में प्रवेश करने पर बहुत खटकता है। लड़के-लड़कियों को कामशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान अनुभवहीन लोगों से प्राप्त होता है और उसका प्रभाव हानिकारक होता है। चूँकि शिक्षक और पिता उनको इस विषय में कुछ भी नहीं बतलाते, इसलिए एक दिन अचानक वे इसे दूसरे लोगों से प्राप्त करते हैं, जिनकी दृष्टि में यह एक गन्दे मज़ाक़ के समान होता है। भोले-भाले लड़कों को बतलाया जाता है कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अश्लील है, और इसलिए जब उनको पता लगता है कि उनके माता-पिता भी इस तरह का कार्य करते हैं, तो उनके हृदय में विद्रोह का भाव उत्पन्न होता

है। उपरोक्त नीति का प्रभाव लड़कियों पर इस प्रकार का पड़ता है, जिससे वे आगे चल कर इस विषय को अश्लील और गुप्त समझने लगती हैं और इसके कारण दाम्पत्य-सुख अनेकांश में नष्ट हो जाता है।

इस बुराई को दूर करने का उपाय यही है कि शिक्षक स्वयम् स्वच्छ और हानिरहित ढङ्ग से बच्चों को इस विषय की शिक्षा दें। ऐसा होने से वे इस भ्रम से बच जायँगे कि कामशास्त्र अश्लील विषय है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध अश्लील नहीं है और न उसे हौवा समझ कर उससे दूर भागने की आवश्यकता है। इस विषय की चर्चा खुले तौर पर करनी चाहिए और समझना चाहिए कि जीवन में इसका महत्व क्या है। केवल मनुष्य-जीवन में ही नहीं, वरन् संसार में पाए जाने वाले सब प्रकार के जीवन में इसकी स्थिति पर प्रकाश डालना चाहिए। इसके लिए लड़कों को जीव-विज्ञान और वृक्ष-विज्ञान आदि की शिक्षा देना आवश्यक है।

मैं समझता हूँ कि इससे लड़कों की पढ़ाई का भार बढ़ जायगा, पर कामशास्त्र सम्बन्धी अज्ञान से जो भयङ्कर हानियाँ होती हैं, उसे देखते हुए यह अनिवार्य है। उनको जनन-विज्ञान विशेष रूप से समझाना चाहिए। उनको बतलाना चाहिए कि किस प्रकार तमाम पौधों और पशुओं में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध है और किस प्रकार वे अपने वंश की वृद्धि करते हैं। जब अन्य समस्त जीवधारियों में यह कार्य अश्लील नहीं माना जाता, तो मनुष्य में ही इसे अश्लील क्यों ख़्याल किया जाय? यह एक प्राकृतिक नियम है, जिसकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकता। अपने अज्ञान और अन्ध-विश्वास से हम इस सम्बन्ध को दुर्गुण समझने लगते हैं। इस प्रकार की स्पष्ट बातचीत और प्रयोगशाला में दिखलाए जाने वाले वृक्षों और अन्य प्राणियों के परीक्षण बालकों के तमाम अन्ध-विश्वासों को, जो आजकल सर्वत्र फैले हुए हैं, दूर कर देंगे।

इसके पश्चात् सन्तान-निग्रह का प्रश्न है। इसे लोग भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं। एक एम० ए० महाशय की सम्मति है कि अगर स्त्रियों को अपनी इच्छानुसार सन्तान करने की विधि प्राप्त हो जायगी तो वे मर्दों पर हुकूमत करने लगेंगी। इसी एक बात से प्रकट होता है कि इस विषय में लोगों में कैसे-कैसे मूर्खतापूर्ण विचार फैले हैं।

सन्तान-निग्रह अत्यन्त आवश्यक विषय है। यह आर्थिक, शारीरिक और मानसिक सभी दृष्टियों से ज़रूरी है। यह सभी जानते हैं कि कितने ही माता-पिता बहुत अधिक सन्तानों के कारण बहुत कष्ट सहते रहते हैं, और उनके बच्चे यथोचित पौष्टिक भोजन और शिक्षा के अभाव से अविकसित दशा में रह जाते हैं। इससे सन्तान-निग्रह की आवश्यकता में तो सन्देह रह ही नहीं जाता। अब केवल हमको यह विचार करना है कि इस विषय की शिक्षा स्कूलों में दी जानी चाहिए या नहीं। लड़कों को इस विषय की उपयोगिता समझाने में किसी तरह का भय नहीं है। उनको बतलाना चाहिए कि वयस्क होने पर उनको इसके अनुसार कार्य करना पड़ेगा। उनको यह भी समझाना चाहिए कि इसका प्रभाव उन पर और समाज पर कैसा पड़ेगा, और बहुत से कमज़ोर तथा अविकसित बच्चे उत्पन्न करने की अपेक्षा थोड़े से पूर्ण स्वस्थ तथा शक्तिशाली बच्चे उत्पन्न करना कितना महत्वपूर्ण है।

सन्तान-निग्रह की विधि स्कूलों में बतलाने की कोई ज़रूरत नहीं है। इस कार्य के लिए प्रत्येक मुहल्ले और गाँवों में प्रयोगशालाएँ होनी चाहिएँ, जहाँ से बड़ी उम्र के होने पर वे आवश्यक बातें जान सकेंगे।

❀ ❀ ❀

जर्मनी में शिशु-पालन

गर्भवती माताओं और शिशुओं की रक्षा की तरफ़ जर्मनी में अति प्राचीन काल से ध्यान रक्खा जाता है। अब से सैकड़ों वर्ष पहले वहाँ परित्यक्त बच्चों के पालनार्थ शिशु-गृहों की स्थापना की गई थी। सत्रहवीं शताब्दी में वहाँ इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कितने ही अनाथ-गृहों की स्थापना की गई। गर्भवती माताओं के सुभीते के लिए भी वहाँ तेरहवीं शताब्दी में 'प्रसूति-गृह' स्थापित किए गए थे। इस समय तो उसने इस विषय में अभूतपूर्व उन्नति की है, जिसकी तुलना अन्य किसी भी देश में मिल सकनी कठिन है। नीचे हम 'मॉडर्न रिव्यू' में प्रकाशित एक लेख के आधार पर इस उपयोगी विषय का किञ्चित दिग्दर्शन कराते हैं :—

गर्भवती माताओं के कल्याणार्थ जर्मनी में एक 'मुटर-बेण्टुङ्गसटैले' नाम की संस्था है, जिसकी शाखाएँ प्रत्येक शहर और गाँव में पाई जाती हैं। इनमें सिर्फ़ एक बीमारों की जाँच करने का टेबिल, एक तोलने का यन्त्र, और कुछ साधारण चीज़ें रहती हैं। एक डॉक्टर और एक नर्स वहाँ हफ़्ते में एक दिन कुछ घण्टों के लिए आते हैं। वे तमाम गर्भवती माताओं की जाँच करते हैं और जाँच का फल भविष्य के उपयोग के लिए एक कार्ड पर लिख कर रख लेते हैं। इस प्रकार की जाँच प्रायः गर्भ के दूसरे, तीसरे और आठवें मास में होती है। इन कार्यालयों में किसी तरह का इलाज नहीं किया जाता। यदि आवश्यक समझा जाता है, तो रोगिणी को पत्र देकर किसी उपयुक्त अस्पताल में भेज दिया जाता है। बुलाने पर नर्सें घर में देखने को जाती हैं। इस संस्था की तरफ़ से समय-समय पर मातृत्व और गृह की स्वच्छता के सम्बन्ध में प्रदर्शनियाँ तथा व्याख्यान भी हुआ करते हैं। स्कूलों में भी इन विषयों की शिक्षा लड़कियों को अनिवार्य रूप से दी जाती है। यह संस्था माताओं की आर्थिक और क़ानूनी मदद भी करती है।

गर्भवती स्त्रियों की चिकित्सा तथा बच्चा पैदा कराने के लिए जर्मनी में १५६ सरकारी तथा १२२ निजी अस्पताल हैं, जिनमें क्रमशः ७,५७१ और १,६३७ मरीज़ रह सकते हैं। सन् १९२८ में १,४२,३६९ माताओं ने इन संस्थाओं से लाभ उठाया था।

कारख़ानों में स्त्रियों से कोई ख़तरनाक काम नहीं कराया जाता। रात के ८ बजे से सुबह के ६ बजे तक उनसे काम नहीं लिया जा सकता। बच्चा होने के समय उनको १२ हफ़्ते की छुट्टी पूरी तनख़्वाह के साथ दी जाती है। जब वे काम पर लौटती हैं तो बच्चे को दूध पिलाने के लिए हर रोज़ आध घण्टे की छुट्टी पाती हैं। अगर सन्तानोत्पत्ति के कारण बीमार हो जाने से उनको ३ महीने से अधिक काम से ग़ैरहाज़िर रहना पड़े तो उसके लिए पूरी तनख़्वाह दी जाती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तमाम महिला-कार्यकर्ताओं का बीमा कराया जाता है।

शिशुओं के कल्याण के लिए जर्मनी में एक पृथक् संस्था है, जिसके हज़ारों केन्द्र देश भर में फैले हुए हैं। इनमें भी किसी तरह का इलाज नहीं किया जाता, वरन् केवल बच्चों की शारीरिक और मानसिक दशा की जाँच की जाती है और उनके सुधार के लिए लाभदायक सम्मति दी जाती है। वहाँ पर क़रीब तीन सौ ऐसे शिशु-गृह हैं, जिनमें आवश्यकता पड़ने पर माताएँ अपने बच्चों को कुछ घण्टों के लिए छोड़ जाती हैं। इसकी अनुमति उसी अवस्था में मिलती है, जब कि माता को कहीं बाहर या नौकरी पर जाना हो, अथवा आर्थिक दशा ऐसी हो जिससे बच्चों का उचित लालन-पालन न किया जा सके।

माताओं तथा बच्चों के लिए इस प्रकार के जो अस्पताल तथा गृह स्थापित किए गए हैं, उनकी गणना 'बोर्डिङ्ग हाउसों' में की जाती है। पर अब जर्मनी में बच्चों को बोर्डिङ्ग हाउस में रखने की प्रथा को रोकने की चेष्टा की जा रही है, और उसके बजाय आवश्यकता पड़ने पर बच्चे को किसी अन्य गृहस्थ के घर में रखने की प्रथा पर ज़ोर दिया जाता है। इसलिए बच्चों को शिशु-गृहों में तभी तक रक्खा जाता है, जब तक उनकी परवरिश का भार कोई गृहस्थ नहीं ले लेता। ऐसा तभी किया जाता है, जब कि माता-पिता की शारीरिक अथवा आर्थिक अवस्था के कारण ऐसा करना बालकों के लिए कल्याण-जनक हो। उदाहरणार्थ अगर माता-पिता को तपेदिक़ या अन्य कोई संक्रामक बीमारी हो, तो बच्चे को उनके पास से हटा देना ही कल्याणजनक समझा जाता है। अथवा यदि वे शराबी हों, तो भी बच्चे उनके पास सकुशल नहीं रह सकते। बीमारी की दशा में बच्चों को पूर्ण स्वस्थ होने तक अस्पताल में रक्खा जाता है। अगर यह जान पड़े कि बीमारी का कारण घर या कुटुम्ब वालों की कुव्यवस्था है तो अस्पताल के अधिकारी उनके रहने के लिए किसी संस्था या गृहस्थ व्यक्ति को तलाश कर देते हैं, जिससे उनको फिर उसी सङ्कट में न पड़ना पड़े। सन् १९२३ में ऐसे अस्पतालों की संख्या ६०० थी। इनका व्यय राज्य, म्युनिसिपैलिटियों और सार्वजनिक संस्थाओं की तरफ़ से दिया जाता है। इन उपायों के फल से बच्चों की मृत्यु-संख्या में आश्चर्यजनक कमी हुई है। सन् १९०० में १०० जीवित उत्पन्न होने वाले बच्चों में से २०.७ मर जाते थे। यह संख्या सन् १९२२ में १३ और १९२८ में ८.९ रह गई।
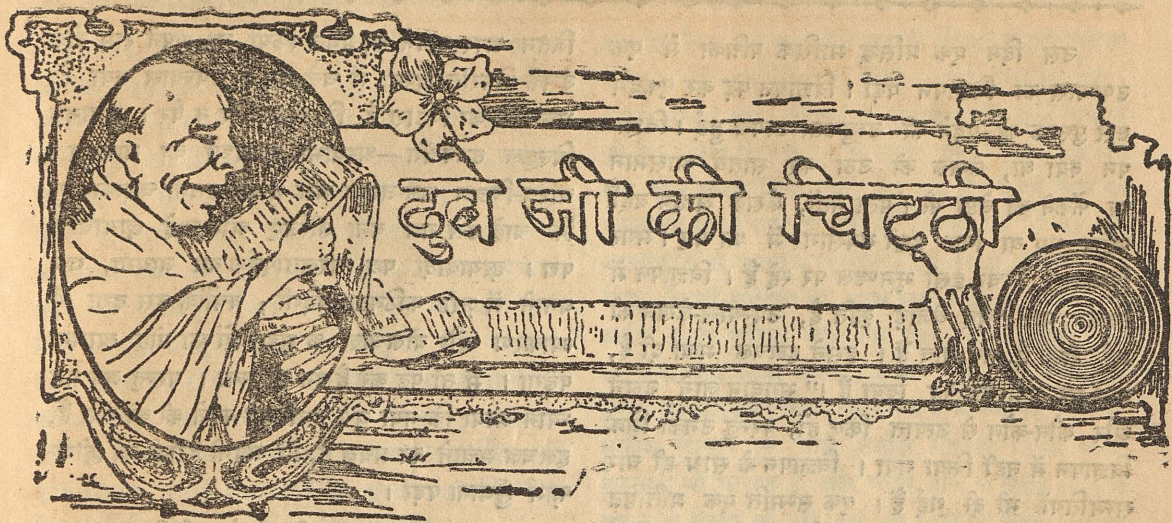
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल हिन्दी-साहित्य में ऐसी धाँधली मची हुई है कि जिसे देख कर अपने राम का जी मतला उठता है। लेखकों और कवियों की बाढ़ इस बुरी तरह से आई हुई है कि बेचारे गली-गली मारे फिरते हैं। आख़िर बेचारे करें क्या? भगवान ने जब उन्हें लेखक और कवि बना कर संसार में भेजा है, तो वे और करें ही क्या? किसी न किसी प्रकार जीवन का भोग तो भोगना ही पड़ेगा। अतएव वे बिल्कुल मजबूर हैं।

लेखकों में जिसे ज़रा भी क़लम पकड़ने का शऊर आया, बस पहले वह गल्प और उपन्यास पर ही हाथ साफ़ करता है। क्योंकि इससे सरल और कोई नुसख़ा भी तो नहीं है। किसी विषय-विशेष पर लेख लिखने के लिए तो अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। और अध्ययन से उनकी छत्तीस है। अध्ययन ही करना होता तो लेखक और कवि ही क्यों बनते। विशेषतः उपन्यास और कहानी-लेखन के मैदान में जो कूदते हैं, वे इसी अध्ययन से प्राण बचाने के लिए ही कूदते हैं। अध्ययन न करना पड़े और लेखक और कवि बन जायँ। कितना अच्छा नुसख़ा है। अतएव झट क़लम उठाया और एक गप्पाष्टक जो हाँकी तो वह तुरन्त गल्प बन गई। वल्लाह क्या कमाल है। ऐसा कमाल किसी दूसरे विषय में कहाँ हो सकता है। अगर गप्पाष्टक छोटी रही तो गल्प और जल्दी अन्त ढूँढ़े न मिलने के कारण बढ़ती चली गई तो उपन्यास बन गई। दोनों हाथ लड्डू हैं। जब एक बार क़लम चलना आरम्भ हो गई तो फिर वह कुछ न कुछ करके ही रुकेगी। उसे यदि लेखक महाशय स्वयम् रोकना चाहें तो उन बेचारों के वश की बात नहीं। भावों का उद्रेक है, क़लम की रवानी है। इन दोनों को रोकना उतना ही हानिकर है, जितना कि ज़ुकाम को रोकना। जिस प्रकार ज़ुकाम रुकने से बहुत बड़ा रोग खड़ा हो जाने की सम्भावना रहती है, उसी प्रकार क़लम को रोकने से महाअनिष्ट होने का डर रहता है। इसलिए उसे चलने ही दो, कमबख़्त कहीं न कहीं तो जाकर रुकेगी ही। जहाँ रुकी नहीं कि पुस्तक तैयार है। जब तक रुकती नहीं तभी तक ख़ैरियत है। अब रही तुक की बात, सो जनाब छायावाद की कृपा से कवि लोग तो इससे मुक्ति पा गए। रह गए लेखक, सो उन्होंने बेतुकेपन का हुलिया बदल कर उसे शैली का रूप दे दिया। यदि किसी ने आपत्ति की कि यह तो कुछ समझ में नहीं आता, अजीब ढङ्ग से लिखा है, तो बस लेखक महोदय अथवा उनके प्रकाशक ने फ़तवा दे डाला कि "जनाब, यह उनकी अपनी शैली है और बिल्कुल नई शैली है।"

अच्छा! शैली है? तब तो ख़ूब है। इस पर तो कुछ कहने का अधिकार ही नहीं रह जाता। तुक मिले या न मिले, मगर एक नई शैली तो तवल्लुद हो गई।

उस दिन एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका में एक उपन्यास का विज्ञापन पढ़ा। विज्ञापन पढ़ कर एकदम उस पुस्तक को पढ़ने की उत्सुकता उत्पन्न हुई। विज्ञापन क्या था, लेखक को उठा कर सातवें आसमान पर फेंकने की चेष्टा थी। पता नहीं, लेखक साहब वहाँ पहुँच गए या फिर इसी भवसागर में आ गए। मगर फ़िलहाल विचर इसी भूमण्डल पर रहे हैं। विज्ञापन में लिखा था—"यह बेजोड़ कृति है, उपन्यास-लेखन की नई शैली है, नए भाव हैं। इसने हलचल मचा दी है, नया युग उपस्थित कर दिया है।" भगवान जाने उसने और कौन-कौन से उत्पात किए हों, परन्तु उनका ज़िक्र विज्ञापन में नहीं किया गया। विज्ञापन के साथ ही चार सम्मतियाँ भी दी गई हैं। एक सम्मति एक प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका के सम्पादक की है। दूसरी एक प्रसिद्ध लेखक की। तीसरी एक महिला की। चौथी एक और व्यक्ति की, जिन्होंने कदाचित् अपने जीवन में पहले-पहल उस उपन्यास पर ही सम्मति लिखी है। सबने एक स्वर से उपन्यास की प्रशंसा की है और लेखक की स्तुति। ख़ैर, औरों की बात जाने दीजिए। उन्हें तो उपन्यास की एक प्रति मिल जाने तथा सम्मति छप जाने से ही तुष्टि हो गई होगी; क्योंकि ऐसे लोगों की कमी नहीं कि जिनसे आप, यदि उनकी सम्मति छापने का वादा कीजिए तो, चाहे जो लिखवा लीजिए। परन्तु अपने राम को प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका के सम्पादक पर अवश्य आश्चर्य है। उन्होंने या तो पुस्तक बिना पढ़े ही समालोचना लिख दी, या प्रकाशक अथवा लेखक की मुरव्वत में आ गए। यह भी सम्भव है कि डर गए हों; क्योंकि ऐसे माई के लाल भी हैं कि यदि आप उनकी कृति में दोष निकालने का साहस करें तो वह आपकी सात पीढ़ियों का श्राद्ध कर डालें। यदि उपरोक्त कारणों में से किसी एक कारण से सम्पादक ने पुस्तक की प्रशंसा कर दी, तब तो वह दया के पात्र हैं और यदि उन्होंने पुस्तक पढ़ कर अपनी समझ में ठीक समालोचना की है तो अपने राम की राय में अब उन्हें पेन्शन ले लेना चाहिए। बहुत दिनों सम्पादकी कर चुके, अब शेष जीवन तमाखू-चूने में दोहरा मिला कर खाते हुए हरिभजन में व्यतीत करें। सम्पादक जी, उसी विज्ञापन को पढ़ कर अपनी उत्सुकता न दबा सकने के कारण मैंने वह उपन्यास पढ़ा। सच मानिए, प्रकाशक ने लेखक को जितना ऊपर उठाने का प्रयत्न किया था, अपने राम ठीक उसके विपरीत दिशा में चले गए। उपन्यास क्या है, भानमती का पिटारा है, जिसका सिर न पैर। कथानक बिलकुल ऊटपटाँग—अस्वाभाविकताओं का भाण्डार। चरित्र-चित्रण ऊल-जलूल और भाषा इतनी चमत्कारपूर्ण कि चाहे उसे गद्य बना लीजिए और चाहे छायावादी पद्य। छायावादी पद्य सरलतापूर्वक बन जायगा, गद्य बनाने में ज़रा कठिनता पड़ेगी; क्योंकि उस दशा में व्याकरण और बोलचाल के मुहाविरों का मोह त्यागना पड़ेगा। मैं तो पढ़ कर हैरान हो गया। परन्तु जब यह ध्यान आया कि नया युग उपस्थित करने की कोशिश है, हलचल मचाने का प्रयत्न है, तो अपनी हैरानी को क्लोरोफ़ार्म सुँघाना पड़ा।

प्रकाशक महोदय एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित प्रकाशक हैं। लेखक महोदय जी पद्य लिखने में यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। अपने राम पर दोनों महानुभाव कृपा तथा स्नेह रखते हैं, परन्तु अप्रिय सत्य कहने में अपने राम बहुत बदनाम हैं और लज्जा की महतारी को यदि अपने राम से कोई शिकायत है तो यही है। अपने राम या तो बिलकुल चुप्पी साध लेते हैं कि हटाओ कौन झगड़े में पड़े—अपने से क्या मतलब; या फिर टका सी बात कहते हैं, चाहे किसी को बुरी लगे या भली। सो जनाब यदि रुपए में चार-छः आने भर झूठ होता, तब तो अपने राम चुप्पी साध जाते, क्योंकि व्यापार-रोज़गार में इतना झूठ क्षम्य है। परन्तु रुपए में बारह आने झूठ! यह तो आँखों में धूल झोंकना है, कानों में शहतीर घुसेड़ना है।

लेखक महोदय का ज्ञान भी बहुत बढ़ा-चढ़ा है। जिन बातों का ज्ञान मूर्ख स्त्रियों तक को रहता है, उन बातों को भी आपने इतना अधिक ठीक लिखा है कि उस पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। इतना सूक्ष्म वर्णन करने का प्रयत्न किया है कि बातें करने में दाढ़ी के कितने बाल हिल रहे थे, यह तक लिखा है, परन्तु वह सही इतना है कि यदि दाढ़ी वाले को पता लग जाय तो वह लेखक पर मानहानि का दावा कर दे।

सम्पादक जी, यह दशा है। एक दफ़ा किसी विषय में नाम निकल जाना चाहिए, बस फिर आपका दिमाग़ अमर ऐयार की ज़म्बील हो गया, उसमें से जो चाहे निकाल लीजिए। यदि आपने कविता लिखने में नाम

कमा लिया है तो फिर क्या कहना है, आप चाहे जो लिखिए सब आला दर्जे का ही निकलेगा। आख़िर दिमाग़ तो वही है। और सबसे बड़ी बात यह है कि टिकिट ज़रा जल्दी बिक जाते हैं। जिस प्रकार चार हाथ-पैरों का या दुमदार आदमी देखने के लिए आदमी टूट पड़ते हैं, उसी प्रकार किसी प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक का प्रथम काव्य अथवा प्रसिद्ध कवि का प्रथम उपन्यास पढ़ने को पाठक टूट पड़ते हैं। क्योंकि नई बात होती है। लोग सोचते हैं कवि तो बड़े अच्छे हैं, देखें उपन्यास कैसा लिखा है। प्रकाशक की लम्बी-चौड़ी प्रशंसाएँ पढ़ कर उत्सुकता और भी बढ़ जाती है। चलिए एक संस्करण तो यों निकल गया और दूसरे संस्करण के लिए यही सार्टीफ़िकट काफ़ी होता है कि पुस्तक इतनी जल्दी बिक गई कि दूसरा संस्करण छापना पड़ा।

जब बेजोड़ और नया युग उपस्थित करने वाली और भूमण्डल को उलट-पलट देने वाली पुस्तकें इतनी अधिक निकलेंगी, तो इस संसार का ईश्वर ही रक्षक है। साधारण श्रेणी के लेखकों के लिए तो कहीं ठिकाना नहीं रह गया। उन्हें संन्यास लेकर वन में तप करने चले जाना चाहिए।

यह तो एक पुस्तक की बात हुई। अब दूसरी पुस्तक की बात सुनिए। यह एक नाटक है और यह भी एक नई सृष्टि है। इसके सम्बन्ध में एक विद्वान, जिनके नाम के पीछे आठ अक्षरों की दुम लगी हुई है, लिखते हैं :—
"भाषा और रङ्ग-मञ्च की दृष्टि से खेलने के लिए (यह नाटक) बहुत ही ठीक है। नाटकीय कला की दृष्टि से ये सुन्दर कहे जा सकते हैं। (लेखक ने कुछ और नाटक भी लिखे हैं, उनको मिला कर कह रहे हैं) × × × हिन्दी में यह बिलकुल नई सृष्टि है। × × × (इसमें) अनन्त की झलक दिखाई गई है। × × × नाटक की यह शैली हिन्दी नाटक के विकास के लिए आवश्यक सामग्री है।"

जिस व्यक्ति के नाम के पीछे आठ अक्षरों की पूँछ लगी हो, उसके कथन को असत्य मानना अथवा उसमें कुछ ग़लती निकालना बड़ी गुस्ताख़ी की बात है। परन्तु अपने राम से तो बिना कहे रहा भी नहीं जाता, मजबूरी यही है। अपने राम को तो उसमें अनन्त की झलक मिली नहीं। पता नहीं वह किस पृष्ठ में छिपी हुई है। अपने राम को जो कुछ देखने को मिला वह यह कि वह नाटक ही नहीं है। एक ऊटपटाँग कहानी लिख कर उसे 'प्रवेश' 'प्रस्थान' से सुसज्जित कर दिया—बस नाटक हो गया। इसमें सन्देह नहीं, लेखक ने एक बात की सृष्टि अवश्य की है। नाटक लिखना इतना सरल बना दिया है कि अब सब लोग नाटक लिख सकते हैं। यदि लेखक की शैली का अनुकरण किया गया तो मुझे तो विश्वास है कि यह देश नाटककारों से इतना भर जायगा कि उनको कम करने के लिए हिन्दी-साहित्य के शुभचिन्तकों को कोई वैसा ही प्रयोग करना पड़ेगा, जैसा कि मलेरिया के मच्छर कम करने के लिए किया जाता है। डी० एल० राय ने शेक्स-पियर का अनुकरण किया तब इतना नाम कमाया, हालाँकि नाटक लिखने की उन्हें तमीज़ नहीं थी। यह अपने राम की भी धारणा है और अपने राम के पहले ही उक्त नाटक के लेखक की हो चुकी थी। यद्यपि अपने राम को इस बात का सख़्त अफ़सोस है कि अपने राम से इस मामले में लेखक बाज़ी मार ले गया, मगर ख़ैर एक साथी तो मिला, यह कुछ कम सन्तोष की बात नहीं है।

हाँ, तो लेखक की नई शैली के अनुसार नाटक लिखने के लिए केवल निम्न लिखी बातें आवश्यक रह गई हैं और सब कठिनाइयाँ दूर हो गईं। एक तो यह कि लिखिए कहानी या उपन्यास और वह केवल दृश्यों का वर्णन तथा 'प्रवेश' 'प्रस्थान' जोड़ देने से नाटक बन जाय! कहिए, है न कमाल?

दूसरी बात स्वाभाविकता का ध्यान रखिए। स्वाभाविकता का ध्यान रखने से इतने लाभ होंगे—कथानक चाहे जैसा ऊटपटाँग रखिए, मानव-जीवन का वह कोई न कोई पहलू होगा ही; बस मामला फ़तह है। चरित्र-चित्रण चाहे जैसा हो। गन्दे से गन्दा चरित्र-चित्रण रखिए—वह भी जायज़ है; क्योंकि कला इसी का नाम है। हाँ, इस बात का ध्यान रहे कि चरित्र में पवित्रता, आदर्शवाद अथवा सदाचार की झलक न आने पावे, जहाँ इनके चापर चरण आए नहीं कि कला ने अपना बोरिया-बँधना सँभाला। कला उसी का नाम है कि जिसमें सुगन्ध चाहे हो या न हो, परन्तु दुर्गन्ध अवश्य हो। बिना दुर्गन्ध के कला का अस्तित्व नहीं टिक सकता। क्योंकि जीवन में भी तो चारों ओर गन्दगी है और जीवन का सच्चा चित्र उतारना यही कला है। तूली से काल्पनिक चित्र बनाने वाला, चाहे वह कमबख़्त कितना ही सुन्दर

चित्र बनावे, कलाकार नहीं हो सकता। असली कलाकार तो फोटोग्राफ़र है, जो हूबहू जैसा का तैसा नक़शा खींच देता है। किसी चेचकरू आदमी का चित्र बनाते हुए उसके चेचक के दाग़ उड़ा कर उसे सुन्दर बनाने में कौन सी कला है? यह तो कला की हत्या है। कला तो इस बात में है कि चेचक के दाग़ पहले की अपेक्षा अधिक गहरे और स्पष्ट दिखाई पड़ें। कहिए सम्पादक जी, कितना सहल नुसख़ा है? न कहिएगा। तीसरी बात यह कि नाटक में गाने हों या न हों, परन्तु फिर भी वह नाटक ही बना रहेगा। नाटक के लिए गाने आवश्यक नहीं हैं। क्यों? इसलिए कि सब कोई थोड़ा ही गाते हैं। नाटक में केवल वही पात्र गा सकता है, जिसकी जन्म-कुण्डली में गवैया होने का योग पड़ा हो। और यह बात केवल नाटक का लेखक ही जान सकता है कि कौन पात्र गाने का शौक़ीन है, कौन नहीं। यदि नाटक में गाना नहीं है तो पाठक को—(दर्शक को नहीं, क्योंकि ऐसा नाटक देखने कोई जायगा या नहीं, इसमें सन्देह है। हाँ, मुफ़्त खेला जाय तो शायद कुछ लोग, जिन्हें उन्निद्रता की शिकायत रहती है, पहुँच जायँ)—हाँ तो पाठक को समझ लेना चाहिए कि इसके सब पात्र गाने-बजाने के जानी दुश्मन हैं, किसी ने नाम भी ले दिया तो मार बैठेंगे। तीसरी सहूलियत इस शैली में यह है कि बार-बार पर्दे गिराने-उठाने का झगड़ा नहीं। सारा नाटक एक ही दृश्य में समाप्त हो जावे तो बड़ी उत्तम बात है। सीन-सीनरी के झगड़े से बचे। आजकल किसी नाटक को खेलने में सब से बड़ी दिक़्क़त सीन-सीनरी की पड़ती है, सो अब वह भी दूर हो गई। एक पर्दा लटकाया और पूरा नाटक खेल दिया। पर्दा न मिला तो मैदान में क़नात लगा कर ही काम चला लिया। मतलब तो अभिनय-कला दिखाने से है, पर्दे हों चाहे न हों।

चौथी सहूलियत भाषा की है। भाषा चाहे जैसी लिखो, मगर स्वाभाविक हो। उखड़ी-पुखड़ी असम्पूर्ण वाक्यपूर्ण, सीधी-सादी, ग़लत-सही, चाहे जैसी हो, पर हो वैसी ही जैसी लोग स्वभावतः बोला करते हैं। स्वभावतः सुशिक्षितों को छोड़ कर और कदाचित ही कोई शुद्ध तथा सम्बद्ध भाषा बोलता होगा। इसलिए यदि भाषा ग़लत हो तो बड़ी अच्छी बात है, स्वाभाविकता यही है।

उपर्युक्त सब गुण जिस नाटक में हों, वह नाटक सर्वोत्तम है, और सब झोल है। कहिए सम्पादक जी, नाटक-लेखन कितना सरल हो गया। अब तो कदाचित आपका जी भी ललचा उठे। अच्छा है, एक नाटक लिख डालिए और यह शिकायत मिटा डालिए कि हिन्दी में डी० एल० राय से (तोबा—रह-रह कर उसी का नाम याद आ जाता है, जिसे नाटक लिखने की तमीज़ न थी, ख़ैर) अच्छे नाटककार उत्पन्न नहीं होते। एक तो पैदा हो चुका है, दूसरा नम्बर आप ले लीजिए। वरना जल्दी ही "नो वेकेन्सी" का नोटिस निकल जायगा और आप हाथ मल कर रह जायँगे।

भवदीय

—विजयानन्द (दुबे जी)

शकुन

[श्री० आरसीप्रसाद सिंह]

उर को प्रलयङ्करी आग में, किस सुहाग की घड़ियाँ सोतीं !
पीड़ाओं में अरे, कौन से सुख की ये क्रीड़ाएँ होतीं !!
दारुण ज्वाला में भी कैसो, शीतलता का यह आभास !
पुलक-स्पर्श कर गया ग्रीष्म में भो, क्यों मलयानिल का वास ?
बेकलियाँ बन गईं हृदय की, किसके पथ की कोमल कलियाँ ?
किसके स्वागत-हित नभ की जल उठीं आज ये दीपावलियाँ ?

क्षयरोग सम्बन्धी कुछ बातें

आजकल संसार में क्षयरोग का आतङ्क छाया हुआ है। संसार में कुछ ही रोग ऐसे हैं, जिनसे मानव-जीवन का बड़े वेग से नाश होता है। उन घातक रोगों में क्षयरोग का स्थान प्रमुख है। प्लेग और हैज़ा आदि रोग ऐसे हैं, जो सदा मनुष्यों के ऊपर आक्रमण नहीं करते। उनका प्रकोप तो कभी-कभी होता है। परन्तु क्षयरोग सदा हमारे सामने अपना भीषण रूप लिए फिरता है। लाखों नवयुवकों, नवयुवतियों तथा बालकों का नाश इसके द्वारा होता है। इतना होने पर भी यह बड़े दुःख का विषय है कि हमारे पठित, अपठित तथा अर्द्ध-पठित भाई और बहिनों में से अधिकांश इससे किसी न किसी रूप में अनभिज्ञ हैं।

क्षयरोग का कारण कुछ कीटाणु हैं, इन्हें अङ्गरेज़ी में Tubercle bacillus (ट्यूबरकल बसीलस) कहते हैं। ये कीटाणु किसी न किसी प्रकार शरीर के भीतर प्रवेश करके अपना अड्डा जमा लेते हैं और कुछ समय बाद मनुष्य के शरीर पर अपना प्रभाव जमाने लगते हैं। ये कीड़े दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे, जो मानव-शरीर में रोग पैदा करते हैं (Human bacillus) तथा दूसरे वे जो गाय-बैलों में रोग पैदा करते हैं (Bovine bacillus)। गायों वाले कीटाणु भी मनुष्यों में रोग पैदा कर सकते हैं, परन्तु वे शरीर के कुछ भागों में ही रोग पैदा कर सकते हैं। इनका प्रकोप अधिकतर बालकों पर ही होता है, क्योंकि वही गायों का दूध अधिकता से पीते हैं।

ये कीटाणु मनुष्यों को कहाँ से मिलते ह? एक तो उन व्यक्तियों के थूक से, जो क्षयरोग से पीड़ित होते हैं, दूसरे उन गायों के दूध से, जिन्हें क्षयरोग होता है। जो रोगी इधर-उधर थूक देते हैं, उनके थूक में से कीटाणु वायु में फैल जाते हैं और दूसरे व्यक्तियों पर आक्रमण कर देते हैं। थूकना ही नहीं, यदि क्षयरोग से पीड़ित व्यक्ति बिना रूमाल मुख पर लगाए बोलता, हँसता, खाँसता या छींकता है, तो भी उसके भीतर से कीटाणु निकल कर दूसरों पर आक्रमण कर देते हैं।

इन कीटाणुओं के मानव-शरीर पर आक्रमण करने के चार मुख्य मार्ग हैं—(१) एक तो नासिका के द्वारा, जब मनुष्य साँस में इन कीटाणुओं को भीतर ले जाता है; (२) दूसरा मुख में होकर—जब मनुष्य क्षयरोग से पीड़ित गाय का दूध पीता है या अपने थूक को निगल जाता है; (३) माता-पिता द्वारा गर्भ में; (४) चर्म के मार्ग से।

इतना होने पर भी इस बात को न भूलना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति क्षयरोग से पीड़ित नहीं होता, यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के भीतर कुछ कीटाणु अवश्य ही प्रवेश करते हैं। फिर किस प्रकार कुछ व्यक्ति इस रोग के शिकार हो जाते हैं? या तो उन व्यक्तियों में एक साथ बहुत से कीटाणुओं का प्रवेश हो जाता है और शरीर की शक्तियाँ उन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकतीं या शरीर की शक्तियाँ ही हीन होती हैं। इसीलिए यह देखा गया है कि बीमारी से उठे हुए या कमज़ोर व्यक्तियों पर इस रोग का अधिक तथा शीघ्र प्रकोप होता है।

ये कीटाणु शरीर में क्या करते हैं? यदि ये चर्म पर आक्रमण करते हैं, तो रोग पहले चर्म में होता है, फिर

हड्डी में। यदि ये मुख के मार्ग से भीतर प्रवेश पाते हैं, तो आँतों की ख़राबी होती है। यदि श्वास-नलिका के मार्ग से ये भीतर जाते हैं, तो इनका प्रकोप फेफड़ों पर होता है। वास्तव में फेफड़ों के रोग को ही क्षयरोग या तपेदिक़ (Consumption या Phthisis) कहते हैं। जिन व्यक्तियों के फेफड़े पर आक्रमण होता है, उसमें पहले सूजन आती है। उसे श्वास लेने में कष्ट होता है। फिर वह भाग ठोस हो जाता है और श्वास-क्रिया के योग्य हो जाता है। धीरे-धीरे वह भाग गल जाता है और खाँसी पैदा करके उसके साथ कफ या बलगम के रूप में निकलता है। यदि किसी रक्त-नलिका को भी हानि पहुँचती है और उसमें छेद हो जाता है, तो खाँसी के साथ कम या अधिक रक्त भी आता है। जिन रोगियों की दशा ऐसी हो जाती है कि उनके फेफड़े से काफ़ी रक्त निकलता है, तो उनकी दशा निराशाजनक हो जाती है।

हम लोग कैसे जान सकते हैं कि क्षयरोग का प्रकोप अमुक व्यक्ति पर है? बहुत दिनों तक तो रोगी को कोई कष्ट नहीं होता, परन्तु कभी न कभी उसे नीचे लिखी कोई बात अवश्य मालूम होती है :—

१—थोड़ा ज्वर हो आना और काफ़ी दिनों तक यही दशा रहना।

२—कभी-कभी रात को बहुत पसीना आना।

३—थोड़ी तथा काफ़ी दिनों तक रहने वाली खाँसी।

४—शरीर की दुर्बलता।

५—धीरे-धीरे शरीर का वज़न घटना।

६—किसी कार्य में जी न लगना तथा जीवन से निराशा।

७—एक साथ भूख का मर जाना।

८—पेट में दर्द का होना।

९—पतले २-४ दस्त।

१०—छाती में दर्द तथा श्वास लेने में कष्ट।

११—कफ के साथ ख़ून आना।

१२—बार-बार ज़ुकाम का हो जाना।

१३—दम फूलने लगना।

यदि किसी व्यक्ति को इनमें से दो-तीन बातें अपने भीतर मालूम पड़ें, या केवल थोड़ा ज्वर नित्य हो आवे, तो उसे किसी वैद्य, हकीम या डॉक्टर से सलाह अवश्य ले लेनी चाहिए। क्योंकि वे कई प्रकार की परीक्षाएँ करके यह बता सकते हैं कि वह क्षयरोग है या नहीं। यह याद रखना बहुत आवश्यक है कि यदि क्षयरोग का निदान और उसकी चिकित्सा शीघ्र ही हो जाय, तो रोगी के बचने की ९० प्रतिशत आशा है। जितनी ही लापरवाही की जाय और रोग को बढ़ने का अवसर दिया जाय, उतना ही रोग हाथ से निकलता जाता है और अन्त में असाध्य हो जाता है।

जब डॉक्टर या वैद्य की सलाह से यह पता चल जाता है, तो समस्या यह होती है कि किया क्या जाय। इस रोग के सम्बन्ध में दो ही बातें आवश्यक होती हैं—एक तो यह कि घर के अन्य व्यक्तियों को उस रोग से बचाया जाय (Prophylaxis) तथा रोगी की चिकित्सा की जाय। पहला आसान है, दूसरा कठिन है। अभी तक कोई ऐसी औषधि नहीं निकली, जो इस रोग के लिए हुक्मी सिद्ध हुई हो। अधिकतर रोगी के करने ही की बातें हैं। इलाज के लिए वैसे तो, या तो किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान या सैनेटोरियम में जाना चाहिए या किसी श्रेष्ठ चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए। सैनेटोरियम बम्बई, मद्रास, धरमपुर, भुवाली, सनावर आदि कई स्थानों में हैं। वहाँ के अधिकारियों से लिखा-पढ़ी करके दाख़िला के विषय में सब बातें तय की जा सकती हैं। रोगियों को घर के लिए निम्न-लिखित बातों पर अवश्य ही ध्यान देना चाहिए :—

(१) रोगी को अलग कमरे में रहना चाहिए, जहाँ और कोई न सोवे। वह कमरा खुला हुआ हो, जिसमें शुद्ध वायु अधिकता से मिल सके। कमरे के दरवाज़े व खिड़कियाँ खुली रहें। सोते समय मुँह न ढका हो।

(२) रोगी के लिए खाने-पीने के बर्तन अलग हों। उनमें और कोई भोजन न करने पावे। न रोगी को ही किसी अन्य व्यक्ति के बर्तन प्रयोग में लाने चाहिए।

(३) थूकने के लिए एक विशेष बर्तन होना चाहिए। उसमें या तो कोई जन्तु-विनाशक औषधि पड़ी हो या उस थूक को जला दिया जाय। कमरे में इधर-उधर थूकने की आदत बहुत बुरी है और दूसरों में भी रोग को फैलाती है।

(४) भोजन पुष्टिकारक तथा शीघ्र-पाचक हो। घी, दूध, मछली का तेल (Codliver oil) आदि का सेवन

(शेष मैटर १४०वें पृष्ठ के दूसरे कॉलम के नीचे देखिए)
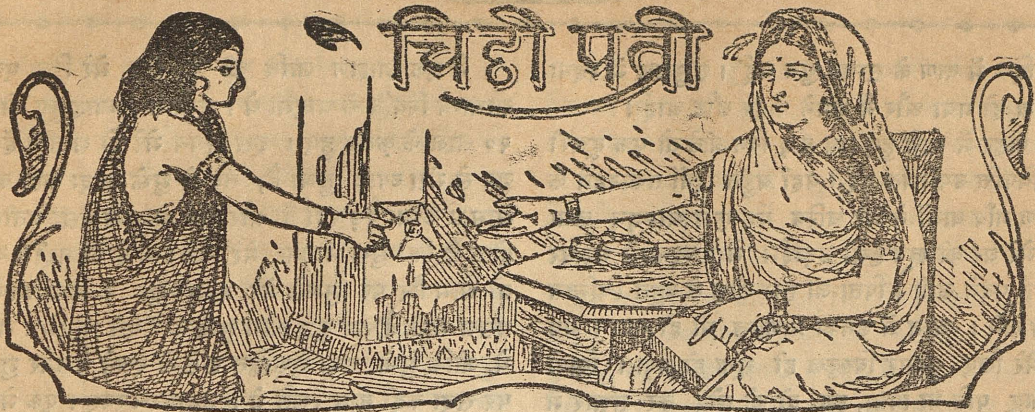
आत्म-कथा

प्रिय सम्पादक जी,

आपको स्त्री-जाति का सच्चा सहायक जान कर ही मुझ जैसी अधम बालिका कुछ लिखने को—अपनी राम-कहानी सुनाने को—अग्रसर हुई है। आप पिता-तुल्य हैं। आपको अपनी राम-कहानी सुनाते लज्जा तथा सङ्कोच के मारे मस्तक नीचा हो जाता है। किन्तु लाचारी है; क्या करूँ, विवश हो अन्त में सुनानी ही पड़ी। सम्पादक जी, मैं सभी तरह से ठुकराई हुई दुखिया हूँ। अब इस भवसागर में सिवा आपके दूसरा अवलम्ब दृष्टिगोचर नहीं होता। आशा है, मेरे साहस को आप धृष्टता नहीं समझेंगे।

मैं ××× ज़िले के ××× नामक ग्राम के भले; किन्तु निर्धन परिवार की एकमात्र कन्या थी। एकलौती कन्या होने के कारण मेरे माता-पिता मेरे विवाह के लिए बड़े इच्छुक थे। पुराने ख़याल के होने के कारण उनकी यही हार्दिक इच्छा थी कि इसका विवाह बचपन में ही किसी अच्छे घर में कर दें और सांसारिक सुख अपनी आँखों देखें। जब मैंने तेरहवें वर्ष में पैर रक्खे, मेरे माता-पिता के भाग्य मानो फूल उठे और मेरा विवाह ××× ग्राम-निवासी श्री० ××× चौधरी से, जो एक अमीर घराने के युवक हैं, हो गया। पिता जी के सिर पर से भार टलने के कारण मैं भी बहुत ख़ुश हुई। थोड़े दिन के बाद मेरी बिदाई हुई और मैं अपनी ससुराल चली आई।

यहाँ पहली ही बार आनन्द का विषाद के रूप में परिणत होने की छाया दृष्टिगत हुई। फिर क्या था? कर्म फूट गया। एक-दो दिन के बाद ही विषाद का भीषण ताण्डव दृष्टिगोचर होने लगा, जिसको सहन नहीं कर सकने के कारण मैं अधीर हो उठी, दिल रोने लगा तथा अबलाओं के प्यारे सङ्गी आँसू मेरे दिल की आग बुझाने लगे। सम्पादक जी, उस रहस्य को प्रकाशित करते लज्जा तो बहुत होती है, किन्तु किया क्या जाय? छिपाने से काम तो नहीं बनता। अतः पुत्री की धृष्टता क्षमा हो, इतनी ही विनती है।

मुझे अपने पीहर में ही उनके चरित्र के विषय में बहुत-कुछ ज्ञात हो गया था। ससुराल आने पर वे बातें बिल्कुल ही सत्य निकलीं। मेरे पतिदेव हमेशा अन्य-मनस्क से रहते थे। जी खोल कर बातें करना तो अलग, मेरे बार-बार बोलने पर भी एक-दो बातें ही उनके श्रीमुख से निकल पाती थीं। इस व्यवहार से मेरा दिल दुखी हो उठा और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि ये किसी के प्रेम-बन्धन में फँस गए हैं। जी भर कर ख़ूब रोई। तत्पश्चात् उनकी प्रेयसी का पता लगाने की चेष्टा की। पता लग गया। अब मैं इनका ध्यान उधर से हटाने की कोशिश करने लगी, पर मेरे खोटे कर्म के बदौलत इसमें मुझे बराबर असफलता ही मिलती गई। एक दिन हार कर मैंने उन्हें विष खाकर मर जाने की धमकी दे डाली। फिर क्या था? वे चीख़ उठे और ऐसे झपटे जैसे मुझे निगल ही जायँगे। मैं तो अवाक् रह गई और मेरी पीठ पर छड़ी दनादन गिरने लगी। दिल तो पहले ही जल गया था, आँसू पहले ही सूख गए थे। रोती तो कैसे? मैं काठ सी बैठ गई। मुझे स्थिर देख कर पतिदेव झुँझला उठे—"विष खाओगी, मरोगी तो मुझे क्या? मैं तो मौज करता ही हूँ और करता ही रहूँगा।" ये बातें

मेरे दिल में वाण के समान चुभ गईं। ससुराल में रहना असह्य हो गया और मैं अपने पीहर लौट आई।

पीहर में रहते हुए जब कुछ दिन बीते तो एक दूसरी ही विपत्ति उपस्थित हुई। यहाँ बहुत दिनों तक रहने के कारण गाँव वालों ने मेरे चरित्र पर झूठा लाञ्छन लगा कर मेरे घर की ख़ूब हँसी उड़ाई। मेरी बदनामी घर-घर सुनाई पड़ने लगी। पिता जी इस शोक से बहुत चिन्तित रहने लगे। अन्त में उनका प्राणान्त भी हो गया। अब तो मेरे लिए संसार बिल्कुल ही सूना हो गया। स्त्रियों के लिए पति या पिता, इन दो को छोड़ कर संसार में और अवलम्ब ही क्या है? भगवान शिव की स्त्री सती ने पति तथा पिता के ठुकराए जाने पर धधकती आग में अपना प्राण-विसर्जन कर दिया था। पर अब तो इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं?

सम्पादक जी, पतिदेव से ठुकराए जाने पर तथा पितृविहीन होकर इन लाञ्छनों को सहने की शक्ति अब मुझमें से सर्वथा लुप्त हो गई है। इस समय मुझे सारा संसार अन्धकारमय दिखाई पड़ता है। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कुछ भी समझ नहीं पड़ता। अतएव मैंने अपनी बिखरी हुई सारी शक्तियों को इकट्ठा कर यह राम-कहानी लिख डाली, जो आपको सादर समर्पित है। आशा है, इसको अपने पत्र में स्थान देंगे तथा मेरे लिए कुछ सरल उपाय भी लिखेंगे, जिससे मेरे दुखी दिल को शान्ति मिले।

आपकी,

—दुःखिनी सुबाला

[इस बहिन की कथा वास्तव में बड़ी ही कारुणिक और दिल को हिला देने वाली है। हमारे ख़्याल में इनके लिए एक ही उपाय है कि ये क़ानून की शरण लें और अपने नालायक़ पति पर अपने भरण-पोषण के लिए अदालत में दावा कर दें। तलाक़-प्रथा के विरोधियों को ज़रा आँखें खोल कर इन पंक्तियों को पढ़ना चाहिए।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

दुःखिनी के उद्गार

श्रीमान सम्पादक जी, नमस्ते! आज मैं आपको अपनी दुख-कहानी लिखने बैठी हूँ। आशा है, आप इसे ठुकराएँगे नहीं।

मैं एक ब्राह्मण जाति की स्त्री हूँ। मेरे पिता एक सामान्य स्थिति के आदमी थे। आज मेरा ब्याह हुए कोई २० साल के क़रीब हुए। इस समय मेरे दो सन्तान हैं। जब से मेरा ब्याह हुआ है, तब से मुझे सदा कष्टों का सामना करना पड़ रहा है और अब तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सुख भोगना मेरे भाग्य में है ही नहीं। यों तो आमतौर पर मुझसे मेरे श्वसुर-गृह के सभी प्राणी प्रसन्न रहते थे, पर कुछ लोग मुझे वहाँ ऐसे भी मिल गए थे, जोकि मुझे सदा सशङ्कित दृष्टि से देखते थे और मुझ पर सदा कड़ी नज़र रखते थे। उदाहरण स्वरूप एक मेरी रिश्ते की ननद थीं, जो मुझे और मेरे पति को इतनी बुरी-बुरी गालियाँ दिन भर अकारण ही दिया करती थीं कि उनका एक सभ्य आदमी के मुख से निकलना भी लज्जा-जनक है। इसके अतिरिक्त मेरी चचिया सास सदा मुझ पर अपने श्वसुर से गुप्त-प्रेम करने का लाञ्छन लगाती थीं और यह मुझे ख़ून के घूँट पीकर सुनना पड़ता था।

पर जब से मेरे पतिदेव मुझे लेकर अलग रहने लगे, तब से तो मानो मुझ पर कष्टों का पहाड़ टूट पड़ा। मेरे पतिदेव बहुत आलसी हैं और यही मेरे सारे कष्टों की जड़ है। मुझे छोटी-छोटी चीज़ों के लिए भी दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है और यदि कभी किसी वस्तु की घर में कमी हुई, तो उसका दोष मुझ पर ही मढ़ा जाता है। मैं उनसे किसी वस्तु को लाने के लिए कहते-कहते हार जाती हूँ, पर वे उसका लाना तो दूर रहा, अपनी जगह से हिलते तक नहीं और फिर भी सदा मुझको ही इसके लिए दोष दिया करते हैं। मैंने उन्हें इस आलस्य के लिए कितने ही बार फटकारा भी, पर उन पर कुछ असर ही नहीं पड़ता। कोई काम गृहस्थी का करने को तैयार नहीं और यदि मैंने अपने किसी सम्बन्धी से कोई काम करा लिया, तो इसके लिए भी मुझे सदा कोसने को तैयार रहते हैं।

जब उन्हें क्रोध आ जाता है, तो वे गालियाँ बकते-बकते बाहर दरवाज़े पर खड़े हो जाते हैं, जिससे कि रास्ता चलते लोग भी उसे सुना करते हैं। यदि मैं उनसे भीतर आ जाने को कहती हूँ, तो वे और भी ज़ोर से चिल्लाने लगते हैं। इसके अतिरिक्त वे मुझ पर अपना रुपया चुराने का कलङ्क लगाते हैं, पर यदि मैं उनसे रुपया अपने पास रखने को कहती हूँ तो यह भी वे मञ्ज़ूर नहीं

करते। इतना सब होते हुए भी वे क्षण भर में ही मेरे चरणों पर गिरने लगते हैं और मेरी आरज़ू-मिन्नतें करने लगते हैं, जिससे मुझे बड़ी लज्जा मालूम पड़ती है। एक समय उन्होंने मेरी माता के सामने ही मेरे चरण छू लिए, उस समय मुझे इतनी लज्जा मालूम हुई कि अगर पृथ्वी फट गई होती तो मैं उसमें समा जाती। यदि वे कभी क्रोध में आकर चिल्लाने लगते हैं, तो मैं चुप हो जाती हूँ और उनकी किसी बात का उत्तर नहीं देती, इस पर वे मुझे "तुम्हारी ऐसी बहुत सी औरत देखी है। बहुत त्रियाचरित्र न दिखाया करो, ऐसे नख़रों से काम नहीं चलेगा" इत्यादि कहने लगते हैं।

मेरे पतिदेव अति विषयी हैं। वे मेरी सगी बहिनों से तथा अन्य सगे-सम्बन्धियों से गन्दे-गन्दे मज़ाक़ किया करते हैं और यह सब मेरे सामने ही। मैंने उन्हें कितनी ही बार समझाया कि अकेले में तुम चाहे जिससे अपनी जैसी नीचता दिखलाओ, पर मेरे सामने अपने मुख से गन्दे शब्द न निकालो। पर उनके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। उनके इस व्यवहार के कारण मैंने समाज में उठना-बैठना तक बन्द कर दिया है और अकेले पड़े-पड़े हो किसी तरह अपने ज़िन्दगी के दिन गिन रही हूँ। पर वे वेश्याओं के यहाँ नहीं जाते, अतः आप शायद कहें, कि तब तो कोई बड़ी बात नहीं है। पर सम्पादक जी, मुझे पूरा विश्वास है कि यदि समाज का भय उनके दिल से निकल जाय, तो वे नीच से नीच कर्म करने पर उतारू हो जावेंगे। मुझे सदा इस बात का भय लगा रहता है कि किस दिन वे किस बुरे मार्ग पर जा लगेंगे। यदि मैं उन्हें इसके लिए कुछ अधिक कह-सुन दूँ, तो वे यहाँ तक कहने लगते हैं कि "तुम्हें मेरे सब कर्मों को देखना होगा, तुम्हें मेरे कामों में दख़ल देने का कोई अधिकार नहीं है। यदि तुम्हारा मन हो तो तुम भी करो।"

वे यह नीच कर्म अपने बालकों के सामने ही किया करते हैं, जिससे कि उन अबोध जीवों के चरित्र पर इसका असर पड़ता है। मैं तो जब महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ती हूँ, तो यही सोचती हूँ कि क्या मेरे बालक भी ऐसे ही नहीं हो सकते, पर यहाँ तो जब बालकों के पिता ही उनके चरित्र पर कुठाराघात करने पर उतारू हैं तो फिर महावीर और लक्ष्मण आज कहाँ से पैदा हों। मैं शरीर से बहुत कमज़ोर हूँ, अतः अब अपने पति की काम-पिपासा शान्त करने में असमर्थ हूँ, पर वे तो सदा काम से पीड़ित रहते हैं। अतः वे इसके लिए ज़बरदस्ती करने पर भी उतारू हो जाते हैं। मुझे उनसे बचने के लिए किन-किन घृणित उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है, × × × इसको लिखने में मेरी लेखनी असमर्थ है।

इन सब बातों के अतिरिक्त, मेरे पतिदेव सदा मुझे सब अनर्थों की जड़ बतलाया करते हैं। अगर उनकी नौकरी छूट गई तो वह मेरे भाग्य से, देश में कुछ खलबली मच गई तो मेरे भाग्य से, यदि उन्हें किसी व्याधि ने सताया तो मेरे भाग्य से, यदि वे भोजन अधिक कर गए तो वह भी मेरे ही दोष के कारण, परन्तु यदि उनकी नौकरी में तरक़्क़ी हुई तो वह उनके भाग्य से और यदि उन्हें कोई ओहदा मिल गया तो वह उनके भाग्य से। सारांश यह है कि सारे सुख उन्हें उनके भाग्य से प्राप्त होते हैं और दुख मेरे भाग्य से। यह हैं आजकल के एक पढ़े-लिखे-नामधारी पुरुष के विचार, जो कि अपने को एम० ए० पास बतलाते हैं। पर जिस समय वे कामोत्तेजित रहते हैं, उस समय तो "तुम मेरे घर की लक्ष्मी हो, मुझे तुम्हारे ही भाग्य से सब सुख प्राप्त होता है, और तुम्हारी तो घर के बड़े-बूढ़े सब बड़ी तारीफ़ करते हैं" इत्यादि बकने लगते हैं।

मेरी शादी हुए आज बीस साल हो गए, पर मैं उनकी इन दुरङ्गी बातों का अर्थ न लगा सकी। मैं आज तक यह न समझ सकी कि वे क्या करने से सुखी रहते हैं और किस बात से दुखी हो जाते हैं; वे मुझसे ख़ुश रहते हैं अथवा नाराज़, यह मैं आज तक न जान सकी। मैं तो साम, दाम, दण्ड, भेद सब उपाय कर चुकी, पर मैं उनको ख़ुश न कर सकी। अतः सम्पादक जी, आप ही कोई उपाय बतलाइए, जिससे कि मेरे पतिदेव मुझसे प्रसन्न रहें और मेरे भी कष्टों का अन्त हो जाय।

आपकी,

—एक हृदयपीड़िता

[देवी जी, ये सारी ख़राबियाँ आपके 'शरीर से कमज़ोर' होने ही की उपज हैं, जैसा कि आपने स्वयं स्वीकार किया है। एक बच्चा उत्पन्न होने के बाद स्त्री की काम-पिपासा में, औसत के लेहाज़ से,

सालों की "छुट्टी" हो जाती है, पर पुरुषों के लिए यह बात सम्भव नहीं है। इन बातों का आपने यौवनावस्था में कुछ भी ख़याल नहीं किया, यह उसी का अवश्यम्भावी परिणाम है। इस विषय पर एक विस्तृत नोट हम 'चाँद' के किसी आगामी अङ्क में लिखेंगे, इस समय तो धैर्य धारण करके आपको "स्त्री-सुलभ सहनशीलता" से ही काम लेना होगा।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

पति की बेकारी

श्रीमान सम्पादक जी, नमस्ते !

मेरे पति को बेकार हुए डेढ़ साल हो गए। इस डेढ़ साल में हमने जो मुसीबतें उठाई हैं, उसे वही समझ सकता है, जिसे दिल है। मेरे पति ने सैकड़ों जगहों की ख़ाक छान डाली, परन्तु कोई ३०-३५ रुपए की भी जगह नहीं मिली। संसार में बहुत से राजा-रईस हैं, जो हज़ारों रुपए खेल-तमाशे में फूँक देते हैं, परन्तु असहायों की सहायता उनसे भी नहीं बन पड़ती। मेरे पति इन्ट्रेन्स तथा ओवरसीयरी पास हैं, परन्तु उनकी उम्र २५ वर्ष से ज़्यादा हो गई है, इसलिए उन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। मेरी विनीत प्रार्थना है कि अगर आपके कार्यालय में कोई जगह ख़ाली हो, तो उन्हें देकर हमारी सहायता कीजिए। अथवा मेरा पत्र 'चाँद' में छाप दीजिए। कदाचित् किसी को अपनी इस दुःखिनी बहिन पर दया आ जावे। मगर मेरा नाम-पता गुप्त रखिएगा।

—एक दुःखिनी

[अफ़सोस है कि हम इस दुःखिनी बहिन की कोई सहायता नहीं कर सके। परन्तु हमें आशा है कि 'चाँद' के लाखों पाठकों में से कोई इनके पति को कोई काम दिला कर इनकी सहायता करेगा। जो सज्जन इस सम्बन्ध में कुछ करना चाहें, हमसे उनके पतिदेव का पूरा पता मँगा लें।

—स० 'चाँद']

एक विधवा का सत्साहस

श्रीमान सम्पादक जी,

सादर नमस्ते! 'चाँद' के 'चिट्ठी-पत्री' स्तम्भ में बहिनों की दर्दगाथा पर आपकी दी हुई सम्मति के अनुसार मैंने भी अपना पुनर्विवाह, समाज के कमीने हमलों की परवाह न करके, एक सुधारक और साहसी युवक के साथ जाति-बन्धन को तिलाञ्जलि देकर कर लिया है।

मैं सोलह वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थी और जो कुछ अत्याचार विधवाओं पर आए-दिन हुआ करते हैं, उन्हें मैंने बड़े धैर्य के साथ सहन किया था। मैं एक गाँव की रहने वाली हूँ, मुझे मालूम न था कि अब देश में ऐसे सत्साहसी युवक भी पैदा हो गए हैं, जो जाति-बन्धन की कठिन ज़ञ्जीर को तोड़ कर विधवाओं की रक्षा के लिए तैयार हैं। आपकी सलाह से मेरे दिल में साहस का सञ्चार हुआ और मैंने अपने लिए एक उपयुक्त आश्रय-स्थल ढूँढ़ लिया। इसलिए मैं अपनी उन दुःखिनी विधवा बहिनों को भी सलाह देती हूँ कि वे समाज के वृथा भय की परवाह न करके, अपने लिए योग्य रक्षक चुन लें, जिससे गुप्त-व्यभिचार और भ्रूणहत्या आदि के पापों से बच सकें। आपकी नेक सलाह के लिए मैं आपके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करती हूँ।

विनीता,
—शान्ती देवी
धर्मपत्नी श्री० अनन्तराम जी गुप्त, विनाहट, आगरा

[इस बहिन के सत्साहस के लिए बधाई है। उन्हें चाहिए कि अन्यान्य दुःखिनी विधवाओं को भी अपने उदाहरण का अनुसरण करने की सलाह दें। सत्साहसी युवकों को भी इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

—स० 'चाँद']

बाहर और भीतर
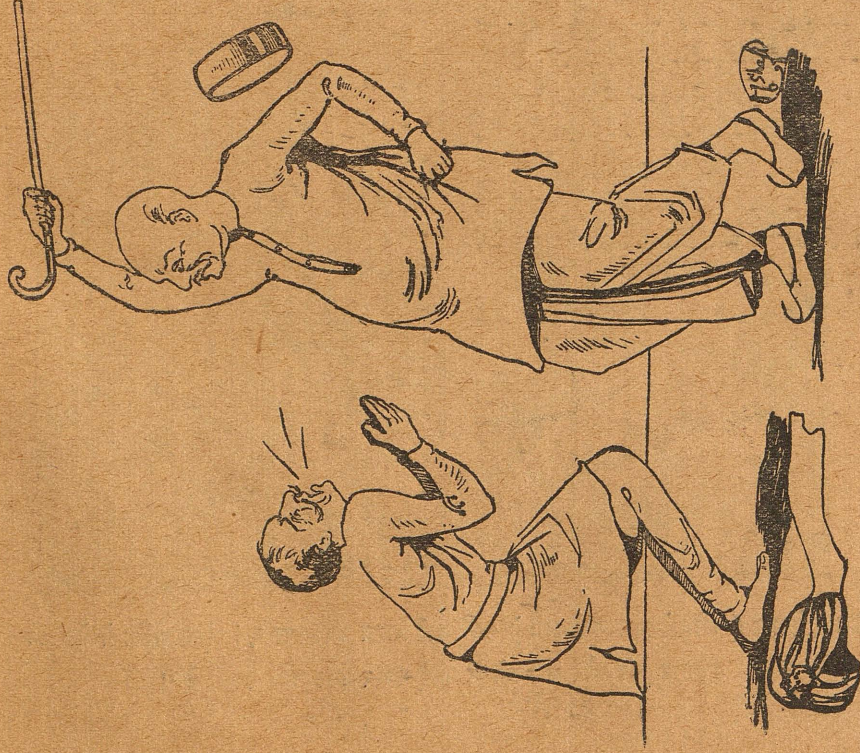
"अन्धा कहीं का ! देख के नहीं चलता ? मारूँ छड़ी कि खोपड़ी तड़क जाय, ऐं.........!"
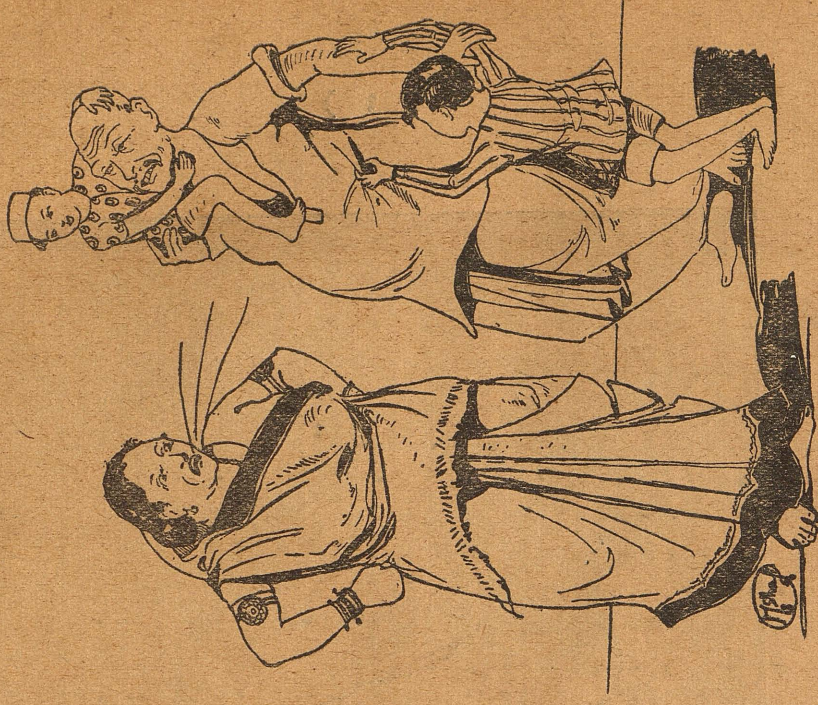
"हें-हें ! तुम जो कहती हो, वही तो मैं करता हूँ। फिर भी नाराज़ होती हो ! लो, बड़े लल्ला को भी लिए जाता हूँ।"

(१)

हमारे देवता (श्रीगणेशाय नमोनमः)—जिनकी अन्ध-उपासना एवं अन्ध-भक्ति ने देश को रसातल की ओर घसीटने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी है !!

(२)
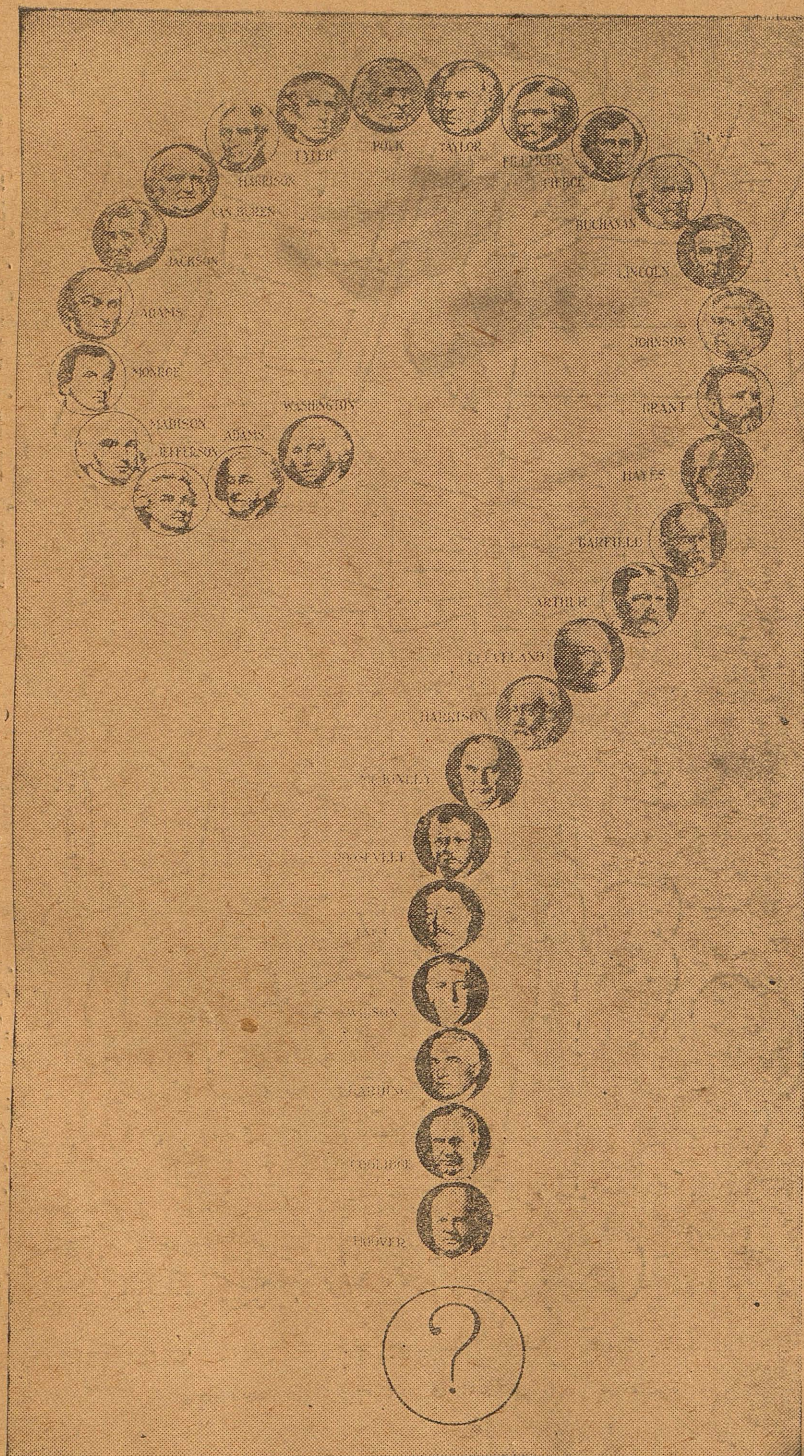
अमेरिका के देवता (वाशिङ्गटन से लेकर प्रेज़िडेण्ट हूवर तक) जिनकी परोक्ष दूरदर्शिता ने अमेरिकन राष्ट्र को संसार का सिरमौर बना दिया है !!
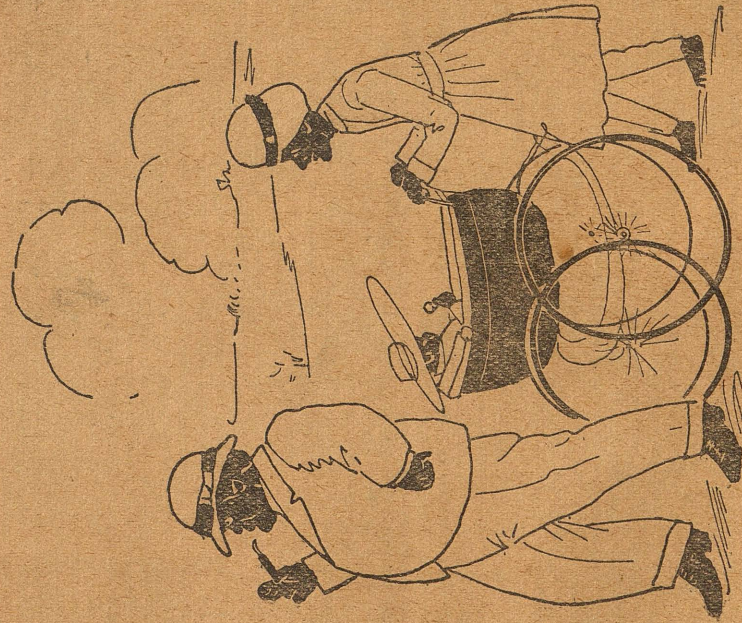
आँख खोल कर देखो, दोनों का मुँह तो है एक समान !
पर अछूत की मुद्रा देखो, देखो ईसाई की शान !!
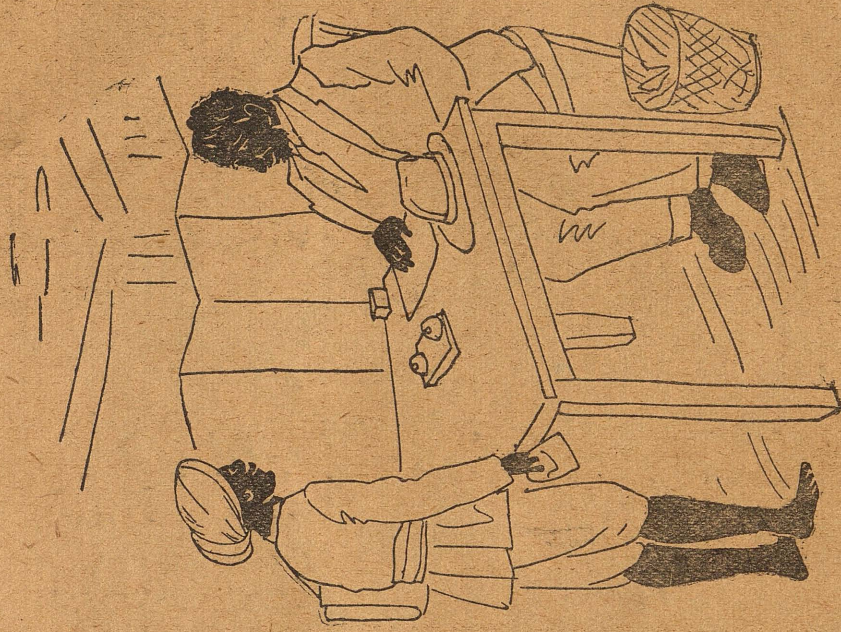
एक रङ्ग है, एक रक्त है; एक जाति थे, फिर भी आज—
चपरासी है एक; दूसरा बन साहब, करता है राज !
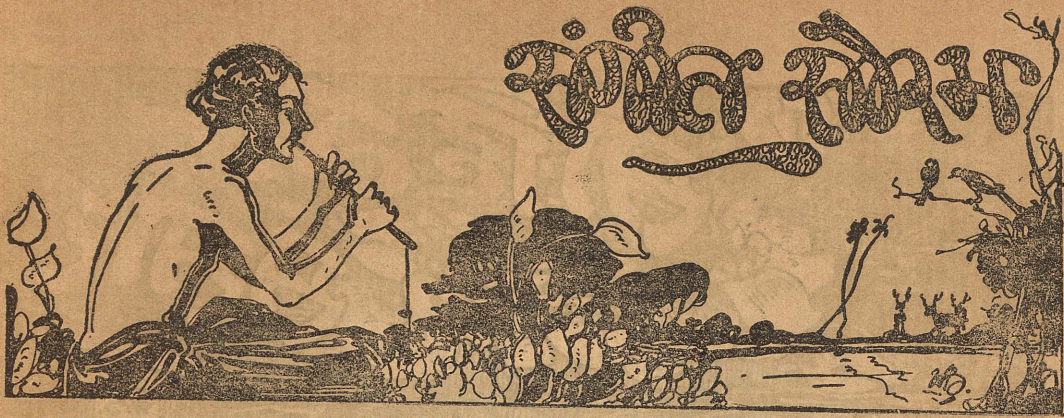
[स्वरकार—श्री० नीलू बाबू] **आसावरी—तीन ताल** [शब्दकार—श्री० बलदेव जी]

स्थायी—अब नहीं सोओ जगो मेरे भाई,
आँख खोल संसार को देखो। समय दशा पै नजर घुमाई ॥

अन्तरा—बदलत रङ्ग-ढङ्ग छिन-छिन में,
देह दशा देखो चित लाई।
पहले देखो दया ईश्वर की,
फिर देखो ज़रा अपनी कमाई ॥

फिर कुछ शर्म करो निज मन में,
काहे करावत लोग हसाई।
होश करो बलदेव तनक अब,
नाहिं तो रह जैहौ पछताई ॥

स्थायी

३			क	०		क		१				×क	क		
म	म	प	ध	म	प	ग	रे	स	रे	म	प	नी	ध	प	—
अ	ब	न	हीं	सो	ओ	वो	ज	गो	ओ	मे	रे	भा	आ	ई	—
								क				क	क		
सं	—	सं	सं	—	सं	रें	सं	गं	रें	सं	रें	नी	ध	प	—
आँ	—	ख	खो	—	ल	स	अं	सा	आ	र	को	दे	ए	खो	—
						क					क		क		
म	म	—	म	म	प	ध	प	म	प	म	ग	रे	ग	स	—
स	म	य	द	शा	आ	पे	ए	न	ज	र	घु	मा	आ	ई	—

अन्तरा

				क		क	क		क				क		
म	म	प	प	ध	—	ध	नी	—	नी	सं	सं	रें	नी	सं	—
ब	द	ल	त	रं	—	ग	ढं	—	ग	छि	न	छि	न	में	—
क		क	क					क				क			
गं	—	गं	गं	रें	—	सं	—	नी	सं	रें	सं	ध	—	प	—
दे	—	ह	द	शा	—	दे	—	खो	ओ	चि	त	ला	—	ई	—
क	क	क						क				क	क		
गं	गं	गं	—	रें	—	सं	सं	नी	सं	रें	[illegible]	नी	ध	प	—
प	ह	ले	—	दे	—	खो	द	या	आ	ई	ई	श्व	र	की	—
				क	क		क			क			क		
म	म	प	—	नी	ध	प	ध	म	प	ग	म	रे	ग	स	—
फि	र	द	—	खो	ओ	ज	रा	अ	प	नी	क	मा	आ	ई	—

मातृत्व या बच्चों की फ़िक्र—लेखक, पण्डित कृष्णाकान्त जी मालवीय, प्रकाशक अभ्युदय प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या प्रायः ५३६, आकार मझोला, काग़ज़ और छपाई साफ़। मूल्य ४)

पण्डित जी की यह स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी तीसरी पुस्तक है। इससे पहले 'सुहागरात' और 'मनोरमा के पत्र' नाम की स्त्रियोपयोगी दो और पुस्तकें आपकी लिखी हुई निकल चुकी हैं और यथोचित समादर भी प्राप्त कर चुकी हैं। प्रस्तुत पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रगट है। आरम्भ के २८ पृष्ठों में लेखक का 'निवेदन', उसके बाद आवश्यक उपदेशों के साथ एक सुदीर्घ समर्पण-पत्र है। पुस्तक देश की बहूरानियों को समर्पित की गई है। अभीष्ट विषय पत्रावली के रूप में, बड़े ही रोचक ढङ्ग और सरल भाषा में लिखी गई है, जिससे कम पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी पुस्तक से लाभ उठा सकें! प्रत्येक पत्र में मातृत्व सम्बन्धी अत्यावश्यक विषय पर प्रकाश डाला गया है, जैसे 'मातृत्व ही विकाश है', 'बच्चे की राम-कहानी', 'जननेन्द्रिय की कथा' और 'गर्भ की अभिवृद्धि' आदि-आदि। स्थान-स्थान पर तत्सम्बन्धी आवश्यक चित्र भी दे दिए गए हैं। स्त्रियों के साधारण स्वास्थ्योन्नति के लिए स्त्रियोचित व्यायाम का भी सचित्र विवरण दे दिया गया है। अशिक्षा के कारण हमारे देश में मातृत्व की जो दुर्गति हो गई है, हमें विश्वास है, इस समयोपयोगी पुस्तक द्वारा उसका बहुत-कुछ प्रतिकार हो सकेगा। शीघ्र ही मातृत्व का महान और गौरवपूर्ण पद प्राप्त करने वाली बहूरानियों को तो यह पुस्तक बड़े ही ध्यान से पढ़नी चाहिए। 'पतियों को सीख' शीर्षक पत्र में पण्डित जी ने 'वर राजाओं' को भी अत्यावश्यक उपदेश प्रदान किया है। हमारे मतानुसार यह विषय कुछ विस्तृत होता तो और भी अच्छा होता। क्योंकि वर्त्तमान समय में मातृत्व की जो छीछालेदर हो रही है, उसकी ज़िम्मेदारी इन 'वर राजाओं' पर भी कम नहीं है। ऐसी उपयोगी पुस्तकें कुछ और सस्ती हों, तो हमारे समाज का विशेष कल्याण हो सकता है।

❀

'रामायन मुसद्दस' (उर्दू)—रचयिता जनाब मुन्शी रामजीमल साहब सँभली 'राम', मौरावाँ, ज़िला उन्नाव। छपाई, काग़ज़ और जिल्द निहायत ख़ूबसूरत, आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या २५८, दाम २॥), सजिल्द ३)।

श्रीरामजी मल साहब कपूर 'चाँद' के पाठकों के परिचित हैं। संक्षिप्त परिचय और एक सुन्दर रचना के साथ आपका चित्र भी गत सितम्बर के 'चाँद' में छप चुका है। प्रस्तुत 'रामायन मुसद्दस' में आपने उर्दू के 'मुसद्दस' (छन्द विशेष) में रामायण की कथा लिखी है। आप श्रीरामचन्द्र जी के परम भक्त और उर्दू भाषा के सुकवि हैं। इन दोनों ने इस पुस्तक की उपादेयता को और भी बढ़ा दिया है। आपने भगवान श्रीरामचन्द्र के चरित्र का जिस दिलकश पैराए में वर्णन किया है, वह देखने से ही तअल्लुक़ रखता है। कहीं-कहीं तो आपकी रचना बड़ी ही उच्च कोटि की हुई है। भगवान रामचन्द्र का धनुष-भङ्ग, वन-गमन, भरत-मिलाप आदि का वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। पुस्तक का पढ़ना आरम्भ करने पर फिर छोड़ने को जी नहीं चाहता। केवल उर्दू जानने वाले राम-भक्तों के लिए पुस्तक बड़े काम की है।

देव-चतुर्दशी—लेखक, स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक; प्रकाशक सत्य-ग्रन्थमाला ऑफ़िस, नई देहली। पृष्ठ-सख्या २७८, मूल्य १)

इस पुस्तक के रचयिता स्वामी सत्यदेव जी हिन्दी के पुराने और विख्यात लेखक हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। आपकी शैली निराली और भाषा ओजपूर्ण होती है। प्रस्तुत पुस्तक में आपकी लिखी हुई चौदह कहानियाँ हैं, इसी से इसका नाम 'देव-चतुर्दशी' है। इस संग्रह में 'माला' और 'आश्चर्यजनक घण्टी' के सिवा बाक़ी सभी कहानियाँ स्वामी जी के "अपने मस्तिष्क की रचनाएँ" हैं। इसलिए अगर इस संग्रह में उपर्युक्त दो कहानियाँ न होतीं और इसका नाम 'देव-द्वादशी' रक्खा जाता, तो नाम में अनुप्रास का सुन्दर समावेश हो जाता और 'अपने मस्तिष्क की रचनाएँ' यह रचना की विचित्र प्रणाली भी सार्थक हो जाती। अस्तु, पुस्तक में संग्रहीत सभी कहानियाँ—हालाँकि 'मेरी बेचैनी', 'महापुरुष के दर्शन' और 'पार्टी पॉलिटिक्स के पाप' को कहानी कहना उतना ही अनुचित है, जितना कि स्वामी जी को कहानी-लेखक कहना—रोचक हैं। प्रत्येक कहानी में स्वामी जी के अनुभव हैं। 'गङ्गा कहार', 'फ़्रान्सीसी फन्दे' और 'लँगोटिया यार' आदि कई कहानियाँ बड़ी ही अच्छी हैं। पुस्तक नए ढङ्ग से लिखी गई है। पठनीय और संग्रहणीय है।

❀

क़ैदी—अनुवादक श्री० ऋषभचरण जैन, प्रकाशक, गङ्गा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, पृष्ठ-संख्या १७६, मूल्य १)

अलेक्ज़ैण्डर ड्यूमा फ़्रान्सीसी भाषा का एक विख्यात उपन्यास-लेखक हो गया है। प्रस्तुत पुस्तक उसी के 'दी ब्लेक ट्यूलिप' नाम के विख्यात उपन्यास का अनुवाद है। इसमें कर्नीलस नाम के एक क़ैदी की प्रेम-कहानी का वर्णन है, इसीसे अनुवादक ने इसका नाम क़ैदी रक्खा है। श्री० ऋषभचरण जैन हिन्दी के उदीयमान कहानी और उपन्यास-लेखक हैं। अब तक बहुत सी कहानियाँ और कई उपन्यास लिख चुके हैं। आप दिल्ली के रहने वाले हैं, इसलिए आपकी भाषा टकसाली होती है। ड्यूमा की इस पुस्तक का अनुवाद करने में आपने निस्सन्देह सफलता प्राप्त की है। मूल-पुस्तक की रोचकता का अनुवाद में बड़ी सावधानी से निर्वाह किया गया है। पुस्तक पढ़ने में मन लगता है।

❀

तपोभूमि—लेखक, श्री० जैनेन्द्रकुमार जैन और श्री० ऋषभचरण जैन; प्रकाशक, साहित्य-मण्डल, बाज़ार सीताराम, दिल्ली। पृष्ठ-संख्या ३३४ मूल्य २), सजिल्द का मूल्य २॥)

तपोभूमि एक सामाजिक उपन्यास है। कथानक अच्छा और भाषा रोचक है। उपन्यास के पात्रों ने स्वयं अपनी-अपनी कहानी कही है। वैसे तो इस उपन्यास के सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण में लेखकों ने सफलता प्राप्त की है, परन्तु हमें नवीन और धरणी के चरित्र में विशेष स्वाभाविकता मालूम हुई। पुस्तक की छपाई साफ़-सुथरी और काग़ज़ भी अच्छा है।

❀

पत्र-पत्रिकाएँ

'जागरण'—सचित्र साप्ताहिक समाचार-पत्र; सम्पादक, श्री० प्रेमचन्द जी, पता—सरस्वती प्रेस, काशी। आकार क्राउन, पृष्ठ-संख्या २४, वार्षिक मूल्य ३॥), एक अङ्क का दाम एक आना।

यह 'जागरण' का दूसरा जन्म है। पहले यह शुद्ध साहित्यिक रूप में पाक्षिक निकला करता था और सम्पादक थे श्री० शिवपूजनसहाय जी हिन्दी-भूषण, और अब सर्व-विषय विभूषित रूप में प्रति सप्ताह निकलने लगा है और सम्पादक हैं, सुप्रसिद्ध कहानी और उपन्यास-लेखक श्री० प्रेमचन्द जी। अब तक इसकी कई संख्याएँ हमने देखी हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि पत्र उत्तरोत्तर अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होता जा रहा है। प्रत्येक अङ्क में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों की लिखी हुई प्रचुर पाठ्य सामग्री होती है। अक्सर श्री० प्रेमचन्द जी की कहानियाँ भी छपा करती हैं। प्रति सप्ताह एक सुचिन्तित सम्पादकीय लेख और कभी-कभी सम्पादकीय टिप्पणियाँ भी होती हैं। इसके सिवा सप्ताह भर के चुने हुए समाचारों का भी सङ्कलन होता है। पुराने 'जागरण' की स्मृति-स्वरूप 'क्षण भर' शीर्षक के नीचे व्यंग्य-विनोद भी निकल जाता

है। साहित्य-समीक्षा, रङ्ग-मञ्च, मधुसञ्चय और महिला-जगत इसके स्थायी स्तम्भ हैं। हिन्दी के नामी कवियों की कविताएँ भी निकला करती हैं। तात्पर्य यह कि अभी और उन्नति की गुञ्जाइश के होते हुए भी पत्र अपने ढङ्ग का सुन्दर है। हमें विश्वास है कि आगे चल कर हिन्दी में इसका एक अपना स्थान होगा और कहानी तथा उपन्यास-क्षेत्र की तरह श्री० प्रेमचन्द जी इस क्षेत्र में भी सुयश और सुख्याति प्राप्त करेंगे। हमारी समझ में सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रति सप्ताह निकलनी चाहिएँ और समाचारों के सङ्कलन की ओर भी कुछ और ध्यान देने की आवश्यकता है। हम 'जागरण' का अन्तःकरण से स्वागत करते हुए, इसके चिरायु होने की कामना करते हैं।

❀

'विशाल-भारत'—(पद्मसिंह अङ्क) सम्पादक, पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी, वार्षिक मूल्य ६) एक अङ्क का मूल्य ।।-), पता—विशाल-भारत कार्यालय, १२०-२ अपर सरक्यूलर रोड, कलकत्ता।

'विशाल-भारत' का यह अङ्क स्वर्गवासी पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा की स्मृति में निकाला गया है। आरम्भ में शर्मा जी का एक सुन्दर चित्र है। इसके अलावा दो और चित्र भी हैं। इसके सिवा पण्डित जी से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले महाकवि शङ्कर जी, महाकवि अकबर और पण्डित भीमसेन जी शर्मा के भी चित्र हैं। अथ से इति तक सभी लेख भी पण्डित जी के सम्बन्ध में ही हैं। हम इस प्रयत्न के लिए पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी को शतशः धन्यवाद प्रदान करते हैं; क्योंकि आपने इसके द्वारा हिन्दी-संसार को अपने पूज्य महारथियों के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रगट करने का एक नवीन मार्ग दिखलाया है। अब तक तो किसी साहित्य-सेवी की मृत्यु पर अख़बार वाले एक शोक-सूचक नोट लिख कर, परमात्मा से उसकी आत्मा की शान्ति के लिए सिफ़ारिश कर दिया करते थे और जनता कहीं कोई सभा करके एक शोक-सूचक प्रस्ताव पास कर देती थी। बस, 'खोज मिलता था यहीं तक बाद अज़ाँ कुछ भी नहीं!' और इतना भी किसी बहुत बड़े साहित्य-महारथी के लिए ही होता था, साधारण साहित्यिकों को तो कोई पूछता भी न था कि कब मरा और कहाँ मरा! अस्तु—

प्रस्तुत अङ्क निकालने में चतुर्वेदी जी ने कुछ जल्दी तो अवश्य ही कर दी है, इसीलिए जैसा 'पद्मसिंह-अङ्क' निकलना चाहिए, वैसा यह अङ्क नहीं निकला है, तथापि इस बङ्गाली कहावत के अनुसार 'नाई छेले चेए काना छेलेई भालो!' इतने ही के लिए चतुर्वेदी जी को जितनी बधाई दी जाए थोड़ी है। साथ ही हमें यह भी आशा है कि हिन्दी-संसार इस अङ्क का आदर करेगा। क्योंकि इसमें पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा के सम्बन्ध में फिर भी बहुत सी बातें आ गई हैं। अङ्क संग्रहणीय है।

—'विवेचक'

❀

(१२८वें पृष्ठ का शेषांश)

ख़ूब करना चाहिए। भोजन को कई बार थोड़ा-थोड़ा करके खाना लाभदायक है। शराब, अफ़ीम, तम्बाकू आदि का सेवन छोड़ दिया जाय तो अच्छा है।

५—जितना भी हो सके, चारपाई में पड़ कर आराम करना चाहिए। थकावट—चाहे शरीर की हो चाहे मस्तिष्क की—इस प्रकार के रोगियों के लिए बहुत बुरी है। इसी प्रकार शोक, दुःख, उदासी आदि से भी बचना चाहिए तथा सदा प्रसन्न-वदन रहने का अभ्यास डालना चाहिए।

६—रोगी के वस्त्रों को घण्टे-दो घण्टे धूप में सुखाना अच्छा है।

७—मुख और दाँतों का साफ़ रखना भी आवश्यक है। जो व्यक्ति दातौन करने के आदी हैं वे दातौन करें, परन्तु उसका सिरा अच्छा होना चाहिए। जो ब्रश और पाउडर या पेस्ट से कोई इन्कार नहीं करते, उनके लिए वह अच्छा है।

८—अगर थर्मामीटर हो तो अच्छा है, क्योंकि इससे प्रातःकाल तथा सायङ्काल का बुख़ार नापा जा सकता है और डॉक्टर को दिखाया जा सकता है, जिससे उन्हें चिकित्सा में आसानी होती है।

इलाज चाहे डॉक्टर करे या वैद्य, या कोई भी न करे, परन्तु सबसे आवश्यक बातें एक क्षय के रोगी के लिए हैं—आराम, समय पर और पौष्टिक भोजन, शुद्ध वायु तथा अपने थूक आदि की सावधानी। —रतन प्रेम

बढ़ाई जिनसे उल्फ़त, जिनसे रस्मोराह पैदा की,

फिरीं नज़रें उन्हीं की बन गए दुश्मन वही दिल के !

[नाखुदाए-सखुन हज़रत 'नूह' नारवी]

फ़ना[1] के बाद भी निकले न दिल से हौसले दिल के,
मिला है ख़ाक होने के सिवा, क्या ख़ाक में मिल के।
निगाहे नाज़े क़ातिल में भी हैं अन्दाज़ क़ातिल के,
उधर आँखें फिरीं, और इस तरफ़ टुकड़े हुए दिल के !
यह अन्दाज़े[2] करम अब और ताज़ा क़ह[3] ढाएगा,
कहीं का भी न रक्खा आपने मुझको, गले मिल के,
निकालूँ मैं तो अब उनका निकलना सख़्त मुश्किल है,
वह रहते-रहते दिल में, हो गए मालिक मेरे दिल के !
यह दिल रखने की बातें हैं, कि दिल लेने की घातें हैं,
वह मिल कर हमसे कहता है मिला क्या आपसे मिल के !
जिन्हें तुम आते-जाते राह में पामाल[4] करते हो,
वह टुकड़े हैं कलेजे के, वह टुकड़े हैं मेरे दिल के।
निगाहे[5] शर्मगीं में शोख़ियों[6] को तो समाने दो,
अभी जौहर खुलेंगे आगे-आगे तेग़[7] क़ातिल के।
न निकलेगी कोई हसरत, न निकलेंगे कभी अरमाँ,
मेरे दिल से मेरे दिल की, मेरे दिल से मेरे दिल के।
उन्हें तूफ़ाँ उठाने के सिवा क्या और आता है,
डुबो देंगे जनाबे 'नूह' मुझको आपसे मिल के।

१—नाश होना, २—कृपापात्र, ३—ग़ज़ब, ४—कुचलना, ५—लज्जा भरी आँखें, ६—चञ्चलता, ७—तलवार।

[कविवर 'बिस्मिल' इलाहाबादी]

वह क्यों हों मेहर्बाँ, क्यों हमसे यह पूछें गले मिल के,
कहो हसरत है क्या दिल की, कहो अरमाँ हैं क्या दिल के।
यह उनसे कह गया एक मिलने वाला ख़ाक में मिल के,
तुम्हारे काम आएँगे कभी ज़र्रे मेरे दिल के।
क़यामत है कि नक़्शे[8] मुद्दआ जमने नहीं पाता,
वह मेरे दिल में मेहमाँ रह के मालिक बन गए दिल के।
बढ़ाई जिनसे उल्फ़त[9], जिनसे रस्मोराह पैदा की,
फिरीं नज़रें उन्हीं की, बन गए दुश्मन वही दिल के।
यह सूरत हो तो मुझको एतबारे ज़िन्दगी क्यों हो,
बदलते रहते हैं दम भर में सौ नक़्शे मेरे दिल के।
किसी को अपनी बज़्मे[10] नाज़ की रौनक़ बढ़ानी थी,
नुमाइश में वहाँ रक्खे गए टुकड़े मेरे दिल के।
हवा खानी पड़ी आख़िर उसे सय्याद के घर की,
चमन में फूल दुश्मन हो गए जाने अनादिल[11] के।
इसे पहुँचा दिया अल्लाह ने मेराजे[12] उल्फ़त पर,
जहाँ देखो वहीं होते हैं अब चरचे मेरे दिल के।
यह ख़ुद मिट जायगा, बरबाद होगा इश्क़ो उल्फ़त में,
हसीनाने जहाँ पीछे पड़े हैं क्यों मेरे दिल के,
जो आए हो तो हाथों को उठा कर फ़ातिहा पढ़ लो,
यह है 'बिस्मिल' की तुरबत[13] दफ़्न हैं टुकड़े यहीं दिल के।

८—मतलब, ९—प्रेम, १०—सभा, ११—बुलबुल, १२—शिखर पर, १३—क़ब्र।

['चाँद' के बम्बई के प्रतिनिधि द्वारा]

'प्राणेश्वरी' नाटक का फ़िल्म

'चाँद' के पाठकों को यह पढ़ कर प्रसन्नता होगी कि 'चाँद' के भूतपूर्व सम्पादक डॉ० धनीराम प्रेम द्वारा लिखित तथा चाँद प्रेस, लिमिटेड द्वारा प्रकाशित हास्य-रस के अद्वितीय नाटक 'प्राणेश्वरी' को बम्बई की सुप्रसिद्ध फ़िल्म कम्पनी 'श्रीरणजीत मूवीटोन कम्पनी' ने 'दो बदमाश' के नाम से बोलते फ़िल्म का रूप दे दिया है। हिन्दी-साहित्य का यह पहला ही हास्य-रस का ग्रन्थ है, जिसे सिनेमा-संसार में इतना आदर प्राप्त हुआ है।

अमेरिकन कम्पनियाँ हास्य-रस के फ़िल्मों को बनाने में प्रसिद्ध हैं। चार्ली चेपलिन, हैरोल्ड लॉयड, बस्टर कीटन आदि अभिनेताओं के नाम भारत में सभी कोई जानते हैं। परन्तु भारतवर्ष में हास्य-रस के फ़िल्मों की ओर किसी कम्पनी का ध्यान ही नहीं गया था। कुछ कम्पनियाँ अपने धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक फ़िल्मों में ही हास्य की कुछ बातें जोड़ दिया करती थीं। परन्तु उनमें से कुछ तो अश्लील हुआ करती थी, और कुछ ऐसी, जिनसे हँसी आने का नाम भी नहीं लेती थी। रणजीत मूवीटोन कम्पनी ने अमेरिकन फ़िल्मों के ढङ्ग से हास्य-रस के फ़िल्म बनाने का भारत में सब से पहले प्रयास किया है। उनके पहले फ़िल्म 'चारचक्रम' का वर्णन अक्टूबर मास के 'चाँद' में किया जा चुका है। 'दो बदमाश' (Two Impostors) उनका दूसरा हास्य-रस का बोलता फ़िल्म है। यह फ़िल्म संयुक्त-प्रान्त और पञ्जाब में शीघ्र ही दिखाया जाने वाला है।

'दो बदमाश' फ़िल्म, इसमें सन्देह नहीं, सिनेमा-संसार की एक अद्वितीय चीज़ है। इसके डाइरेक्टर हैं श्रीयुत जयन्त देसाई और इसमें मुख्य काम करते हैं भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध हँसोड़े ऐक्टर श्री० गोरी और श्री० दीक्षित।

कथानक—'प्राणेश्वरी' नाटक के कथानक से इसका कथानक कुछ भिन्न है। फ़िल्म को लोकप्रिय बनाने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। दो मित्र हैं, मदन और गोपाल। ये दोनों राजा श्यामदास के यहाँ जूता साफ़ करने की नौकरी करते हैं। गोपाल अपनी स्त्री के हाथों में कठपुतली की तरह नाचता है। उसकी स्त्री, लक्ष्मी, को कभी-कभी दौरा आता है और वह उस समय अपने सामने खड़े हुए किसी भी पुरुष के गले में चिपट जाती है और उसे तभी छोड़ती है, जब वह 'प्राणेश्वरी' कह देता है। मदन एक सुन्दर युवती मालती का चित्र देख कर उसे प्रेम करने लगता है और गोपाल के सामने अपने प्रम की डींग मारता है। गोपाल भी उसे एक झूठा प्रेम-पत्र भेजता है। मदन उसे सच्चा समझ कर पार्टी देता है। परन्तु पीछे से गोपाल का दूसरा पत्र पाकर उसकी आशाओं पर पानी पड़ जाता है।

राजा साहब के पैर में गठिया के कारण दर्द हो रहा था। ये दोनों मित्र ऐसे कौतुक करते हैं कि राजा साहब का दर्द और भी बढ़ जाता है। ये दृश्य हँसाते-हँसाते लोट-पोट करने वाले हैं। वे नौकरी से निकाले जाते हैं। मालती के यहाँ से राजा साहब को निमन्त्रण आता है। वह स्वयं न जाकर अपने सेक्रेटरी को पत्र के साथ भेजते हैं। ये दोनों मित्र उस पत्र को छीन लेते हैं और स्वयं ही राजा और सेक्रेटरी बन कर जाते हैं। वहाँ वे जिस

मूर्खता से काम करते हैं, वे सब दृश्य हँसी के पिटारे हैं। पीछे किस प्रकार वे एक दुष्ट, शङ्कर के जाल में फँसते हैं, किस प्रकार अपना और मालती का उद्धार करते हैं और राजा श्यामदास के क्या-क्या छिपे हुए भेद खुलते हैं, यह पर्दे पर देखने में ही आनन्द आता है।

अभिनय के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। गोरी और दीक्षित के नाम ही इसके लिए काफ़ी हैं। रिकार्डिङ्ग बहुत अच्छा हुआ है और सबसे बड़ी बात जो इसमें है, वह यह कि गाने बहुत कम और उपयुक्त स्थलों पर ही हैं। गानों की ध्वनें और शब्द ऐसे हैं कि वे संयुक्त-प्रान्त और पञ्जाब में प्रसिद्ध हुए बिना न रहेंगे। अपने ढङ्ग का पहला ही फ़िल्म होने के कारण इसमें कुछ दोषों का रह जाना स्वाभाविक है। परन्तु वे दोष ऐसे नहीं हैं, जो इसे एक आदर्श हास्य-रस का फ़िल्म बनाने में बाधा डालें। हम रणजीत मूवीटोन कम्पनी को उनकी इस सफलता पर बधाई देते हैं। यह भी हर्ष का विषय है कि सम्वाद और गाने स्वयं डॉक्टर धनीराम प्रेम के लिखे हुए हैं। आशा है, अन्य कम्पनियाँ भी हिन्दी के अच्छे ग्रन्थों को फ़िल्मों का रूप देना प्रारम्भ कर देंगी।

❀ ❀ ❀

हॉलीवुड और भारत

['चाँद' के अमेरिकन प्रतिनिधि द्वारा]

लॉस एञ्जिल्स (Los Angeles) आए हुए दो दिवस व्यतीत हो चुके थे। तीसरे दिन एक समाचार-पत्र देख रहा था कि "Entertainments" (आमोद-प्रमोद) के कॉलम में बड़े-बड़े अक्षरों में एक भारतीय नाम आँखों के सम्मुख पड़ा। नाम था "आयशा"। आप हॉलीवुड के "Philharmonic Audorium" में भारतीय नृत्य दिखाने वाली थीं। मेरी उत्सुकता का ठिकाना न रहा। साथ ही प्रसन्नता भी हुई कि भारतीय स्त्रियाँ यहाँ अमेरिका में भी अपने कला-कौशल का परिचय दे रही हैं।

सन्ध्या-समय ठीक समय पर "Auditorium" (रङ्गालय) में जा डटा। परदा फटा और आयशा देवी रङ्गमञ्च पर दृष्टिगोचर हुईं। पहला नृत्य आपका लहँगे-दुपट्टे में था। नाम था "Temple Dance" अर्थात् मन्दिर का नृत्य, जोकि दक्षिण भारत में अधिकतर देखने में आता है। फिर कुछ बर्मा और अन्य भारतीय नृत्य देखने में आए। सङ्गीत बिलकुल भारतीय तो न था, परन्तु जो कुछ भी हो, उसे भारतीय बनाने की अच्छी चेष्टा की गई थी। मुझे कुछ आश्चर्य न हुआ। मैं समझता हूँ, किसी को भी अमेरिका तथा अन्य विदेशों में ऐसे अवसरों पर भी ठेठ भारतीय सङ्गीत न पाकर आश्चर्य न होगा। कारण बताने की चेष्टा करना कदाचित् मेरे लिए अनावश्यक है।

"Performance" के पश्चात् मेरे हृदय में आपसे मिलने की अभिलाषा बलवती हो उठी। बाहर निकल कर अपना कार्ड भेजा, उस पर 'लखनऊ, इण्डिया' भी लिखा था। बाहर बड़े-बड़े लखपती भेंट करने और फूल आदि भेजने की बाट जोह रहे थे। मुझे बड़ा सङ्कोच होने लगा—कुछ फूल भी न ला सका, वहीं भेंट करता—अन्दर जाकर कैसे वार्तालाप आरम्भ करूँगा, इत्यादि, इत्यादि। आख़िर नौसिखिया ही ठहरा। ख़ैर, जाकर एक कोने में खड़ा हो गया। सोचा, ऐसे लखपतियों में मेरी सुनवाई कहाँ? कदाचित् कहीं अन्त में पारी आवे तो आवे! इतने ही में "Waiter" (वेटर) ने पुकारा—"मिस्टर सिंह!" मैं हकाबक्का सा हो गया। स्वप्न में भी आशा न थी कि मेरी पारी सब से प्रथम आवेगी। साहस करके धीरे-धीरे कमरे की ओर अग्रसर हुआ। सबकी दृष्टि मेरी ओर थी। मैं और भी घबरा सा गया। ख़ैर, किसी न किसी भाँति सकुशल अन्दर पहुँचा। आयशा देवी सामने ही उपस्थित थीं। आप ऐसी नम्रता और प्रसन्नता से मिलीं कि मेरा सारा सङ्कोच दूर हो गया। थोड़ी ही देर के वार्तालाप से ज्ञात हुआ कि आप भारतीय नहीं, अमेरिकन हैं। आपका असली नाम है डोरिस बूथ (Doris Booth)।

आपने कहा—"भारत से मुझे विशेष प्रेम है। कुछ वर्ष हुए, मैं रौशनआरा (प्रसिद्ध भारतीय नर्तकी) से मिली थी। न्यूयॉर्क में उनका नृत्य देखा। तभी से मैं भारतीय सङ्गीत और नृत्य पर रीझ सी गई। उन्हीं से सीखना भी आरम्भ किया। भारतीय सङ्गीत और नृत्य मेरी समझ में संसार में सबसे मधुर और आकर्षक है।"

आपका "Performance" (प्रदर्शन) लगभग दो सप्ताह रहा। इसके पश्चात् ही आपके सेक्रेटरी ने मुझे

एक दिन टेलीफ़ोन पर बुलाया और कहा—"आयशा आपसे मिलने की इच्छा प्रकट करती हैं !"

दूसरे ही दिवस मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, जबकि थोड़ी ही देर के वार्तालाप के पश्चात् आपने सौ डॉलर का एक नोट मेरे सामने रख दिया। मैं बड़े असमञ्जस में पड़ गया। सोच ही रहा था कि इसका अर्थ क्या है, क्या कहूँ, कि आप एकाएक क़हक़हा लगा कर हँस पड़ीं। मैं और भी हड़बड़ा गया। इतने ही में आप बोलीं—"रहने दीजिए, और अधिक हँसूँगी तो कदाचित् आपको अपना मुख शीशे में देखने की आवश्यकता पड़े। अब यह बताइए कि इस धन से मैं भारत की किस भाँति सहायता कर सकती हूँ ?"

मेरे हर्ष का वारापार न रहा, कह उठा—"मुझे एक अमेरिकन से यह सुनने की स्वप्न में भी आशा न थी।"

आप बोलीं—"अच्छा, तो अमेरिकन आपकी दृष्टि में इतने गिरे हुए हैं। ख़ैर, यदि Doris Booth के नाते नहीं तो 'आयशा' के नाते तो मुझे यह भेंट देने की आज्ञा आप देंगे ? फिर जो कुछ भारतीय स्त्रियाँ आजकल कर रही हैं, उसके सम्मुख तो यह कुछ भी नहीं है। मैंने भारतीय नाम केवल नाचने के लिए ही नहीं, सचमुच भारतीय बनने के लिए रक्खा है।"

इसके दूसरे ही दिन मेरे कथनानुसार आपने वे १०० डॉलर (३५० रुपए) Gandhi fellowship movement (गाँधी फ़ेलोशिप मूवमेण्ट) के प्रेसीडेण्ट को "Movement" की सेवा के लिए भेंट कर दिए, साथ ही अपनी "सदस्यता" का प्रार्थना-पत्र भी भेज दिया।

भारत से आपको हार्दिक प्रेम और सहानुभूति है और उसकी सहायता के लिए हाल ही में अपने अमूल्य समय में से कुछ समय निकाल कर आप एक "Concert" (कनसर्ट) देने वाली हैं, जिसकी कुल आमदनी भारत के हित के लिए अर्पण होगी।

यह लेख विशेषतः मैंने उनके लिए लिखा है, जो कि "हॉलीवुड" को केवल "पृथ्वी का स्वर्ग" कह कर पुकारते हैं, जिनके लिए हॉलीवुड, सुन्दर-सुन्दर परियों के ठाठ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

क्या हम आशा करने का साहस करें कि वे भारतीय स्त्री-पुरुष, जो अब भी घोर निद्रा में पड़े हैं, श्रीमती आयशा से एक उदाहरण ग्रहण करेंगे और देश की स्थिति पर ध्यान देंगे ?

—सतीशचन्द्र सिंह
हॉलीवुड, कैलीफ़ोर्निया

卐 卐 卐

आलिङ्गन

[श्री० बालकृष्ण राव]

प्रेम के साङ्केतिक सम्बाद,
मधुरिमा के मधुमय आगार !
सुखद सरिता-सागर संयोग,
मञ्जुता के मञ्जुल शृङ्गार !!

❀

कल्पना-कल्पद्रुम कमनीय,
स्नेह के हे सुखमय साफल्य !
मुग्ध हृदयों के कौतुक रम्य,
प्रेम के अति पावन प्राबल्य !!

शान्ति-वर्षा के कारण पुण्य,
जलद-गिरि के अनुपम सङ्घर्ष।
अहे, मन-उपवन-जीवन मञ्जु,
प्रणय के हे पुनीत उत्कर्ष !!

❀

स्वर्ग-सुख की सीमा स्पृहणीय,
मौन, मनमोहक, मृदु आह्वान !
वेदना-सुख के परिणय पुण्य,
भावना के आदान प्रदान !!

साहित्य-प्रेमियों के आग्रह से अवधि बढ़ा दी गई !

५,००० 'चाँद' मुफ़्त

संस्था के एक सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी (Public Limited Company) में सफलता-पूर्वक परिवर्तित होने के उपलक्ष में ३,००० ऐसे स्त्री-पुरुषों को एक वर्ष तक 'चाँद' मुफ़्त देने का निश्चय किया गया है, जो कम से कम १५) रु० मूल्य की पुस्तकें मँगाने का एक साथ ऑर्डर दें। २,००० ऐसे लोगों को भी, जो ८) रु० मूल्य की पुस्तकें मँगाने का एक साथ ऑर्डर देंगे, ६ मास तक 'चाँद' मुफ़्त दिया जायगा। नियम इस प्रकार हैं :—

आवश्यक नियम

(१) यह सुविधा 'चाँद' के ग्राहकों तथा उन लोगों के लिए भी है, जो 'चाँद' के अब तक ग्राहक नहीं हैं।

(२) जो लोग १५) रु० के मूल्य की पुस्तकें मँगावेंगे, उन्हें एक वर्ष तक 'चाँद' मुफ़्त दिया जाएगा। ऐसे व्यक्तियों की संख्या ३,००० से अधिक न होनी चाहिए।

(३) जो लोग ८) रु० के मूल्य की पुस्तकें मँगावेंगे, उन्हें ६ मास तक 'चाँद' मुफ़्त दिया जायगा। ऐसे व्यक्तियों की संख्या २,००० से अधिक न होनी चाहिए।

(४) पुस्तकों की जो सूची इस सूचना के साथ प्रकाशित हो रही है, इन्हीं पुस्तकों में से छाँट कर ऑर्डर भेजना चाहिए, इसके अतिरिक्त पुस्तकें नहीं भेजी जायँगी।

(५) इन समस्त पुस्तकों पर (चाहे वे संस्था द्वारा प्रकाशित हों, अथवा दूसरे प्रकाशकों द्वारा) किसी भी प्रकार का कमीशन नहीं दिया जायगा।

(६) डाक अथवा रेल-व्यय हर हालत में मँगाने वालों को ही देना होगा।

(७) यह रियायत केवल ३१ दिसम्बर १९३२ तक के लिए समझना चाहिए, इसके बाद आए हुए ऑर्डरों पर यह रियायत न की जायगी।

(८) जो लोग 'चाँद' के ग्राहक नहीं हैं, उनके नाम पुस्तकों का मूल्य वसूल होते ही 'चाँद' जारी कर दिया जायगा।

(९) जो लोग 'चाँद' के इस समय ग्राहक हैं (जिनका चन्दा जमा है), उनको भेजी हुई पुस्तकों का मूल्य वसूल होने पर जिस मास से उनका चन्दा समाप्त होगा, उसी मास से उनके नाम 'चाँद' जारी कर दिया जायगा।

(१०) ऑर्डर देते समय इस सूचना का हवाला अवश्य दीजिए और यदि आप ग्राहक हैं तो अपना नम्बर और यदि ग्राहक नहीं हैं, तो "नया ग्राहक" अपने पत्र में अवश्य लिखिए, नहीं तो भूल हो जाने की सम्भावना है।

(११) यदि १५) रु० की पुस्तकें मँगाना हो तो ऑर्डर २०) रु० का और यदि ८) रु० की पुस्तकें मँगाना हो तो ऑर्डर १२) रु० की पुस्तकों का बना कर भेजें, ताकि यदि कोई मँगाई हुई पुस्तक स्टॉक में न हो, तो उसके बदले में दूसरी पुस्तक भेजी जा सके।

आम के आम गुठलियों के दाम

☛ चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

चुनी हुई उत्तमोत्तम पुस्तकों की सूची

स्वयं पढ़िए तथा स्त्री और बच्चों को पढ़ाइए !

मुफ़्त में साल भर तक 'चाँद' लीजिए !!

पुस्तक	मूल्य
आनन्दमठ	।।।)
आत्मोद्धार	१॥)
पढ़ो और हँसो	॥)
अमेरिका कैसे स्वाधीन हुआ ?	॥)
आदर्श डाकू	३)
भारतीय सभ्यता	१)
भारतीय सम्पत्ति-शास्त्र	५)
भारत को स्वाधीनता का सन्देश	१।)
भूषण ग्रन्थावली	१)
मुक्ति-मन्दिर	।।।=)
मर्दानी औरत	१।)
मृणालिनी	१)
मानसी	॥)
मिलन	॥)
प्रिया	१॥=)
पथिक	॥)
प्रेमाश्रम	३॥)
प्रेम-पूर्णिमा	२)
प्रेम का पागल	२)
विद्रोही राजकुमार	२।)
विवेक वचनावली	।)
वीर-केशरी शिवाजी	४)
वेश्या-गमन	२)
बिखरा फूल	१॥)
नोक-झोंक	१।)
जैसे को तैसा	१।=)
सुभद्रा	॥)
अङ्गरेज़ी शिष्टाचार	२)
सदाचार और नीति	॥=)
जीवन-ज्योति	१।)
जुझार तेजा	॥)
गङ्गा-जमुनी (१ सेट)	४॥)
गार्हस्थ्य शास्त्र	१)
गोलमाल	१=)
गुब्बारा	॥=)
घर और बाहर	१।)
हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ	१।)
उलट-फेर	१।)
पाथेयिका	१)
फूलों का गुच्छा (१ सेट)	२)
तक़दीर का फ़ैसला	॥)
५१ खेल	॥)
वन्देमातरम्	१।।।)
२१ बनाम ३०	१॥)
विचित्र परिवर्तन	२)
मज़ेदार कहानियाँ	१)
चन्द्रगुप्त	१)
चिरकुमार-सभा	१।)
चन्द्रनाथ	।।।)
चरित्रहीन	३।)
चरित्र चिन्तन	१।)
चपटी खोपड़ो	१।)
हीरे की चोरी	१॥)
हिन्दी-साहित्य विमर्श	१।)
हिन्दू विधवा	॥)
हृदय का काँटा	१॥)
हरफ़न मौला	१)
हिन्दुओं के व्रत और त्योहार	२)
हिन्दी पद्य-रचना	।)
हरिद्वार का इतिहास	।=)
शैतानी करामात	१॥)
शराबी	२)
शान्ति-कुटीर	१=)
स्वदेश	॥=)
शाहजहाँ	१)
स्वाधीनता	२)
दक्षिण अफ़्रीका के मेरे अनुभव	२॥)
जननी-जीवन	१।)
प्राणनाथ	२॥)
गौरीशङ्कर	॥=)
ग्रह का फेर	।।।)
दाम्पत्य जीवन	२॥)
देवदास	२)
सफल माता	२)
शैलकुमारी	२)
अपराधी	२॥)
मनोरञ्जक कहानियाँ	१॥)
मनमोदक	।।।)
विधवा-विवाह-मीमांसा	३)
अनाथ पत्नी	२)
विदूषक	१)
आशा पर पानी	॥=)
राष्ट्रीय गान	।)
मानिक मन्दिर	२॥)
लालबुझक्कड़	२)
शिशु-हत्या और नरमेध-प्रथा	।)
दाम्पत्य सुहृद	१।)
सद्गुरु रहस्य	२।)

चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

पाक-चन्द्रिका ४)
चुहल १)
मेहरुन्निसा ॥)
स्त्री-रोग-विज्ञानम् ३)
देवताओं के गुलाम ३)
मणिमाला ३)
मालिका ४)
मनुज के प्रति ।=)
चित्तौड़ की चिता १॥)
नीच १)
ईसाई-बाला ॥।)
केसर की क्यारी ५)
सन्तान-शास्त्र ४)
मृदुदल २॥)
अञ्जलि ॥।)
प्राणेश्वरी ॥।)
विवाह-मन्दिर १॥)
समाज की चिनगारियाँ ३)
मनोरमा २॥)
वल्लरी २॥)
दुबे जी की चिट्ठियाँ ३)
महात्मा ईसा २॥)
बाल-रोग-विज्ञानम् २॥)
लम्बी दाढ़ी २॥)
विवाह और प्रेम २)
मूर्खराज १)
निर्वासिता ३)
लतखोरीलाल ४)
पुनर्जीवन ५)
रहस्यमयी १॥)
आदर्श चित्रावली ४)
व्यङ्ग चित्रावली ४)
Kamla's Letters to her Husband (English). 3/-
सती विपुला २)
सती चिन्ता १)

मायापुरी २॥)
सती रुक्मिणी २)
महात्मा विदुर १॥)
सती पञ्चरत्न १॥)
पाप-परिणाम १)
मोरध्वज १॥)
श्रीकृष्ण ५।)
विचित्र समाज-सेवक ३)
आदर्श लीला १॥।)
शैतानी माया १॥।)
कन्या विक्रय १॥)
पार्वती २)
सती मदालसा १॥)
देवयानी १)
चन्द्रकला १॥)
स्वास्थ्य-रक्षक २॥)
कृष्ण-सुदामा १)
विश्वामित्र १)
भारत का धार्मिक इतिहास ३)
व्रतकथा १॥।)
राजा शिवि १।)
शैतानी लीला १॥।)
शैतानी पञ्जा २॥)
शैतानी जाल १॥।)
शैतानी फन्दा १॥।)
समाज-कण्टक २।)
विपद कसौटी १)
दीर्घायु २॥)
चीना सुन्दरी १॥।)
जर्मन षड्यन्त्र १॥)
ताया का ख़ून ।)
भक्त सूरदास १)
वीर चरितावली १)
जेल-रहस्य १॥।)
भीषण भण्डाफोड़ ॥)
राजर्षि प्रह्लाद २।)

काला साँप ।=)
ख़ूनी औरत १।)
काला कुत्ता ॥)
बालक श्रीकृष्ण १।)
वीर अभिमन्यु १)
दरोगा का ख़ून ॥)
रायबहादुर ॥।)
रामचरित मानस की भूमिका ३)
रोम का इतिहास ।=)
रूस का पञ्चायती राज्य ।।)
कुललक्ष्मी १)
समाज-सङ्गठन ।=)
पं० जवाहरलाल जी की जीवनी २)
अफ्रीका-यात्रा ४॥)
भैषज रत्नावली ६)
गुणों का ख़ज़ाना २)
स्वास्थ्यवृत्त ॥)
योगरत्नाकर (१ सेट) १०)
सूक्ति स्तवक १)
सर जगदीशचन्द्र बोस ॥=)
गल्प-मञ्जरी २॥)
चरक-संहिता १०)
चक्रदत्त ३॥)
सुश्रुत ४)
रस-हृदय २)
रस-कौमुदी ॥)
पारद योग ॥)
कन्दर्प चूणामणि १०)
अनङ्ग-रङ्ग १॥)
रति-रहस्य ३॥)
पञ्चसायक ३।)
रतिरत्न ३)
नवनीतिकम् ३)
किशोरावस्था ॥=)
आत्मार्पण ॥।)

☞ चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

पुस्तक	मूल्य
मञ्जरी	१।)
ईश्वरी न्याय	॥=)
हठयोग	१।=)
चित्रशाला (१ सेट)	३॥।)
बहता हुआ फूल	२॥)
मनोविज्ञान	।॥)
हिन्दी नवरत्न	५)
विजया	१॥)
विश्व-साहित्य	१॥)
एशिया में प्रभात	॥)
बुद्ध-चरित्र	॥।)
भवभूति	॥=)
हिन्दी	॥=)
किसानों की कामधेनु	।=)
संक्षिप्त स्वास्थ्य-रक्षा	॥=)
पराग	॥)
भारतीय अर्थशास्त्र (सेट)	२॥)
प्रेम-गङ्गा	१)
अचलायतन	।)
उषा	॥=)
जीवन का सद्व्यय	१)
कर्मयोग	॥)
पवित्र पापी	३)
मिस्टर व्यास की कथा	२॥)
जासूस की डाली	१॥)
साहित्य सुमन	॥=)
अश्रुपात	१)
तात्कालिक चिकित्सा	१)
विवाह विज्ञापन	१)
सौ अजान और एक सुजान	१)
साहित्य सन्दर्भ	१॥)
जब सूर्योदय होगा	१)
कर्मफल	१॥।)
रतिरानी	१॥।)
अबला	१)
प्रेम-परीक्षा	॥।=)
फ़ेन	१)

पुस्तक	मूल्य
गढ़कुण्ढार	२॥)
गोरी	१)
क़ैदी	१)
कुण्डली चक्र	१।)
प्रसूतितन्त्र	२॥)
आँधी	२)
वे तीनों	२)
पेरिस का कुबड़ा	३)
नर-पशु	१)
एक घूँट	॥)
धूपदीप	॥।)
भूली बात	१)
देहाती सुन्दरी	१॥)
चार क्रान्तिकारी	१।)
षड्यन्त्रकारी	१॥)
तलाक़	२॥)
यौवन की आँधी	१॥)
विनाश की घड़ी	१)
तपोभूमि	२)
जेलयात्रा	२)
घरेलू चिकित्सा	॥।)
हिन्दू-त्योहारों का इतिहास	१॥)
स्मृति-कुञ्ज	३)
मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ	२)
परिमल	१॥)
लतिका	१)
मधुपर्क	१॥)
योगदर्पण	१)
सोहराब-रुस्तम	१।)
जासूसी चक्कर	२॥)
धन-कुबेर	१॥।)
पिशाचिनी	१॥।)
गुलाब में काँटा	१॥।)
चोर चौकड़ी पर	।-)
चित्रकाव्य (राजसंस्करण)	२॥)

पुस्तक	मूल्य
कीचक बध	॥=)
माया-महल	१)
जासूस के घर ख़ून	१॥)
राजसिंह	२।)
आर्य-महिला-रत्न	२)
कोहेनूर	१॥)
जासूसी पिटारा	॥।)
सचित्र बालरामायण	१)
चित्रकाव्य (साधारण)	२॥)
महाराष्ट्र वीर	१)
जासूसी कुत्ता	१॥)
नक़ली रानी	१।)
आत्म-हत्या	॥।)
जासूसी कहानियाँ	॥।=)
नवरत्न	१॥)
घटना-चक्र	२।)
जासूस की डायरी	१।)
जर्मन जासूस	१॥)
शिशुपाल-वध	२॥)
चण्डाल चौकड़ी	१॥।)
५७ का ग़दर (सेट)	८॥)
स्वास्थ्य-साधन	३)
सती सीता	॥=)
गोपालन-शिक्षा	॥)
लाल क्रान्ति	२॥)
विजय किसकी ?	१॥)
आख़िरी दुश्मन	१॥।)
बोलशेविक-रहस्य	१॥।)
कापालिक डाकू	१॥)
सती शकुन्तला	॥=)
नराधम्	१=)
सुन्दरी अमेलिया	१॥।)
विचित्र वाराङ्गना	१=)
टर्की का क़ैदी	१॥।)
शीश-महल	२)
सती दमयन्ती	॥=)
क़ैदी की करामात	१॥)

पुस्तक	मूल्य
डॉक्टर साहब	१॥)
जवाहरात का गोला	॥)
दुर्गादास	१॥)
रणभूमि का रिपोर्टर	१।॥)
वीर व्रतपालन	२।)
सती सावित्री	॥=)
शिव-सती	॥=)
सेवासदन	२॥)
सोने की खान	१)
सूक्ति-सरोवर	२॥)
सत सरोज	॥)
स्वप्नों के चित्र	।॥)
स्वप्न	।॥)
सच्ची कहानियाँ	॥)
अदल-बदल	।)
राजा साहब	॥)
अरब सरदार	॥)
घर का भेदिया	॥)
अङ्गरेज़ डाकू	१=)
भीषण डकैती	१॥)
हवाई क़िला	१॥)
दुरङ्गी दुनिया	=)
भीषण भूल	।=)
मुस्लिम-महिला-रत्न	१।)
अमीरअली ठग	।॥=)
योगिनी	॥)
चतुर जासूस	।॥)
हवाई जहाज़	१।॥)
रेगिस्तान की रानी	१।॥)
शोणित-चक्र	२)
लाल चिट्ठी	१।॥)
लन्दन-रहस्य (पूरा सेट ४५ भाग)	२२॥)
महेन्द्रकुमार (पूरा सेट ६ भाग)	५)
सदाचार दर्पण	२)
साहित्य-सुमन	॥=)

पुस्तक	मूल्य
रवीन्द्र कविता-कानन	२)
राजसिंह	१।॥)
रजनी	।॥=)
रागिणी	३)
पतन	१।॥)
स्वास्थ्ययोग आसन	१)
धर्म-शिक्षा	१)
बिखरा फूल	१॥)
अपना सुधार	॥=)
हृदय का काँटा	१॥)
मनुष्य-जीवन की उपयोगिता	॥=)
इच्छाशक्ति के उपाय	।-)
हमारा स्वर-माधुर्य	।-)
नेहरू द्वय	॥)
भोजन और स्वास्थ्य	।॥)
जीवन का मूल्य	१॥)
बालकथा कहानी (१ सेट)	४॥)
रहीम	॥)
यम का दूत (प्लेग)	-)
सिद्ध औषधि प्रकाश	१॥)
हरिधारित ग्रन्थ	।=)
साधारण नेत्र-रोग	१)
बालरोग	।॥=)
मनुष्य का आहार	१)
चारु चिकित्सा (१ सेट)	२।)
राज मार्तण्ड	॥)
अफ़ग़ानिस्तान	२)
विलायती उल्लू	१॥)
गर्विता	१॥)
कसक	१।)
राजस्थान	३)
आत्म-कथा (म० गां०)	२)
भाई के पत्र	१॥)
महात्मा शेख़ शादी	॥)
जमशेद जी नसरवान जी ताता	।)

पुस्तक	मूल्य
लोक-रहस्य	॥=)
पञ्जाब-हरण	२)
भारत में कृषी-सुधार	१।॥)
देशभक्त मेज़िनी के लेख	२)
गोलमाल	१=)
भक्तियोग	२)
तिब्बत में तीन वर्ष	२॥)
संग्राम	१।॥)
राजनीति विज्ञान	१।=)
कसौटी	२।)
अस्फुट कलियाँ	१)
विचित्र बूढ़ा	१।॥)
बारह बादाम	१॥)
मौत का नज़ारा	१)
सर्वस्व समर्पण	४॥)
प्रतिशोध (दो भाग)	३।॥)
नवनिकुञ्ज	१)
षड्यन्त्र	२)
नोकझोंक	१)
मार-मार कर हकीम	१।)
साहब बहादुर	१।)
नाक में दम	१।॥)
उलट-फेर	१।)
दुमदार आदमी	१।॥)
अपना सुधार	॥)
फ्रांस की राज्य-क्रान्ति	१।)
एब्राहिमलिङ्कन	॥=)
ग्रीस का इतिहास	१=)
रोम का इतिहास	।॥)
इटली की स्वाधीनता	॥)
मरहठों का उत्कर्ष	१।॥)
सचित्र दिल्ली	।॥)
कविता-कौमुदी १ भाग	३)
,, ,, २ ,,	३)
,, ,, ४ ,,	३)
,, ,, ५ ,,	३)
साहित्य-सीकर	१)

हास्यकला का चमत्कार ! हास्योपन्यासों का लकड़दादा !!

श्री० जी० पी० श्रीवास्तव

की

हास्यमयी लेखनी का अलौकिक चमत्कार !

लतखोरी लाल
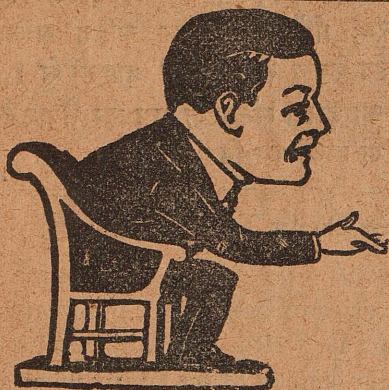
The Author Mr. G P. Srivastava himself writes to say :—

'You have made a wonderful publication of my *Latkhori Lal* and must have spent quite a lot over its pictures and get-up. Please accept my best thanks for such a nice printing."

यह वही उपन्यास है, जिसके लिए हिन्दी-संसार मुद्दतों से छटपटा रहा था ; जिसके कुछ अंश हिन्दी पत्रों में निकलते ही अङ्गरेज़ी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं में अनुवाद हो गए। क्योंकि इसके एक-एक शब्द में वह जादू भरा है कि एक तरफ़ हँसाते-हँसाते पेट में बल डालता है, तो दूसरी तरफ़ नौजवानी की मूर्खताओं और गुमराहियों की खिल्ली उड़ा कर उनसे बचने के लिए पाठकों को सचेत करता है। कहीं फ़ैशन और शान की छीछालेदर है। कहीं स्कूली बदकारियों पर फटकार है, कहीं वेश्यागमन का उपहास है। प्रकृति की अनोखी छटा निरखनी हो तो इसे पढ़िए। इससे बढ़ कर हास्यमय, कौतूहलपूर्ण, आश्चर्य-जनक, रोचक, स्वाभाविक और शिक्षाप्रद उपन्यास कहीं ढूँढ़ने से न मिलेगा। पुस्तक अत्यन्त सुन्दर, सजिल्द तथा सचित्र है और ६ खण्डों में समाप्त हुई है।

छहो खण्ड एक ही पुस्तक में; मूल्य ४) मात्र ! स्थायी ग्राहकों से ३)

☞ चाँद प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद

मनोरञ्जक
कहानियाँ
१७ बालोपयोगी सुन्दर कहानियों का सङ्कलन
लेखक अध्यापक ज़हूरबख़्श जी, 'हिन्दी-कोविद'। पृष्ठ-संख्या २२०; प्रोटेक्टिङ्ग कवर सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥) स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र ! पुस्तक का दूसरा संस्करण छप कर तैयार है। पहिला संस्करण हाथोंहाथ बिक चुका है।
The Indian Daily Telegraph :
Manoranjak Kahaniyan is the name of one of the series of impending publications intended by the writer for impressing on the receptive minds of children who are naturally fond of hearing stories, the various deeds and problems of the adventurous lives of heroic personalities in a novel manner. It contains 17 narratives extending to about 200 pages written in chaste simple style to suit the tastes of boys and girls in their rudimentary educational stages and to help them in their studies. It will be found useful to beguile the idle hours of relaxation and at the same time promote knowledge.
चाँद प्रेस लि०, इलाहाबाद
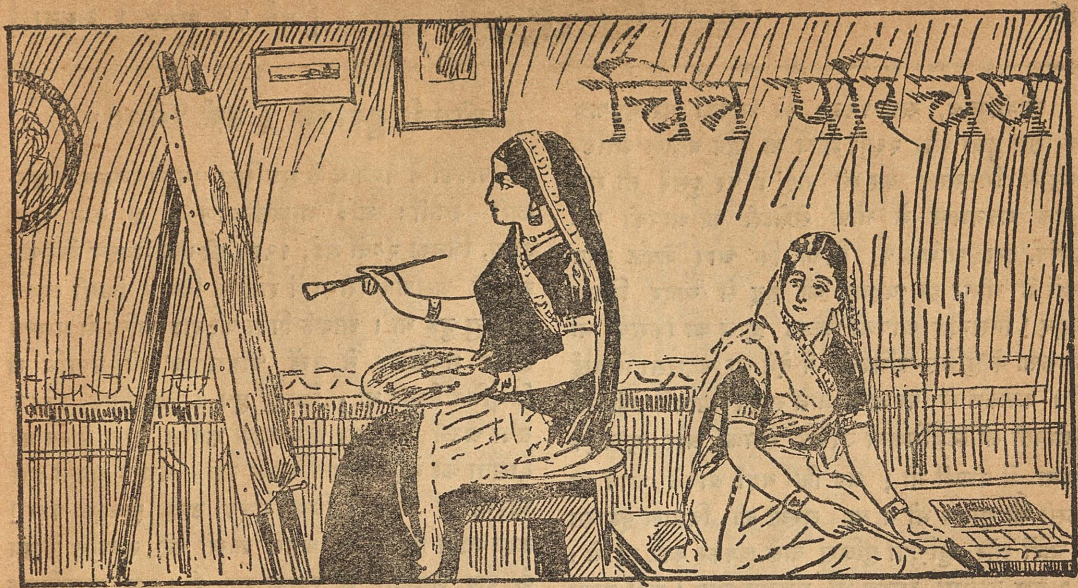
डॉक्टर (कुमारी) लीलावती

कुमारी लीलावती जी भारत तथा स्त्री-समाज का मुखोज्ज्वल करने वाली उन नवयुवतियों में से हैं, जिनके आदर्श पर भारत को सदा नाज़ रहा है, अतएव आपका संक्षिप्त परिचय 'चाँद' की पाठिकाओं को भेंट करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

कुमारी लीलावती जी शेख़ूपुरा (पञ्जाब) के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर चौधरी सदाराम जी की कन्या-रत्न हैं। आपके चाचा चौधरी मेलाराम जी पञ्जाब के सुप्रसिद्ध सिविल-सर्जन तथा आजकल चम्बा स्टेट (पञ्जाब) के चीफ़ मेडिकल ऑफ़िसर हैं। आपके पाँच भाई हैं। आपके सब से बड़े भाई श्री० बलदेव जी हैं, जो विलायत से बी-कॉम तथा अन्यान्य बैङ्क की परीक्षाएँ सफलतापूर्वक पास करके विगत सितम्बर, १९३० में लौटे थे, जिन्हें इम्पीरियल बैङ्क ऑफ़ इण्डिया ने तुरन्त ले लिया। इस समय आप इस बैङ्क की कलकत्ता की शाखा में कार्य कर रहे हैं। आपने अन्तर्जातीय विवाह किया है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शान्तादेवी उन कुमारी सुशीला देवी जी की सहोदरा हैं, जिनका नाम पाठिकाओं ने लाहौर तथा देहली षड्यन्त्र केसों के 'फ़रार' अभियुक्तों की सूची में देखा होगा। आप गुजरात (पञ्जाब) के एक पेन्शन-याफ़्ता आई० एम० एस० की कन्या-रत्न हैं। श्रीमती शान्तादेवी कन्या-महाविद्यालय की स्नातिका हैं। कला तथा सङ्गीत से आपको बहुत प्रेम है।

कुमारी लीलावती जी के छोटे भाई ब्रिटिश सेना में लेफ़्टेनेण्ट-पद को सुशोभित कर रहे हैं। आप सरकारी सेना के उच्च पदाधिकारियों (Commissioned Officer) की सूची में हैं। ५-६ वर्ष हुए, आप विलायत से शिक्षा प्राप्त करके लौटे हैं। आजकल आप बोलारम (हैदराबाद) की सेना में कार्य कर रहे हैं और शीघ्र ही आपको और भी प्रतिष्ठित पद मिलने की सम्भावना है। कुमारी लीलावती जी के अन्य तीनों भाई अभी स्कूल तथा कॉलेजों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

कुमारी लीलावती जी जालन्धर के सुप्रसिद्ध कन्या-महाविद्यालय से 'स्नातिका' की परीक्षा पास करने के अतिरिक्त पञ्जाब-विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में पास की, पर आपकी अभिरुचि डॉक्टरी की ओर विशेष रूप से रही। चूँकि भारत में महिला दन्त-चिकित्सकों का अभाव था और देवी जी ने अपनी सखी-सहेलियों में इस बात का अनुभव भी किया था, इसलिए आपने दन्त-चिकित्सा की उच्च शिक्षा ग्रहण करने के अभिप्राय से कलकत्ते के सुप्रसिद्ध डेण्टल कॉलेज में प्रवेश किया और ४ वर्षों की कठिन तपस्या के उपरान्त २४ मार्च, सन् १९३२ को आप सफलतापूर्वक सर्वोच्च परीक्षा (एल० डी० एस-सी०) में उत्तीर्ण हुईं। यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि इस समस्त कॉलेज में आप ही एकमात्र बालिका थीं।

२४वीं मार्च, सन् १९३२ को आपका परीक्षा-फल प्रकाशित हुआ और २६वीं मार्च को आप बङ्गाल ऑर्डिनेन्स में गिरफ़्तार कर ली गईं। पर दूसरे ही रोज़ बङ्गाल गवर्नमेण्ट के चीफ़ सेक्रेटरी का आपको एक फ़र्मान, इस आशय का मिला, कि आप केवल सात घण्टों के भीतर ही बङ्गाल की हद से बाहर निकल जाइए! निसन्देह आपको सेकेण्ड क्लास का किराया भी कलकत्ता के पुलिस-कमिश्नर ने देने की उदारता दिखाई थी। कलकत्ते से पञ्जाब जाते समय आपने श्रीमती विद्यावती जी से मिलना उचित समझा और एकाएक संस्था में पधारीं भी; जब कि यहाँ आपके आने का किसी को गुमान भी न था। संस्था की विशाल इमारत के चारों ओर .ख़ुफ़िया पुलिस वाले चक्कर काट रहे थे। २-३ बार दारोग़ा साहब भी तशरीफ़ लाए। यहाँ वालों के आश्चर्य का ठिकाना न था, पर देवी जी के आने से यह सारा रहस्य समझा जा सका। अस्तु—

यहाँ ४-५ रोज़ ठहर कर आप सीधी शेख़ूपुरा अपने पिता के यहाँ गईं; पर वहाँ पहुँचते ही आपको पञ्जाब गवर्नमेण्ट के चीफ़ सेक्रेटरी का एक फ़र्मान इस आशय का मिला कि "जब तक सपरिषद् गवर्नर (Governor in Council) आपको आज्ञा न दें, आप अपने को शेख़ूपुरा में ही नज़रबन्द समझें।" अतएव बाध्य होकर देवी जी को लगभग ३ मास शेख़ूपुरा में स्वतन्त्र होते हुए भी एक क़ैदी के समान व्यतीत करने पड़े। जिस रात को पुराने ऑर्डिनेन्स की अवधि समाप्त हुई, उसी रात आप अपनी माता जी के साथ देहली के लिए चल पड़ीं।

आपने देहली के परेड-ग्राउण्ड के सामने ही एक छोटे पैमाने से अपना दवाख़ाना खोला है। हमें यह जान कर परम सन्तोष हुआ कि देहली की स्त्रियों ने बड़े उत्साह से आपका स्वागत किया और आप बड़ी सफलतापूर्वक अपनी बहिनों की सेवा कर रही हैं। इस सिलसिले में यह बतला देना आवश्यक है कि समस्त भारत में अब तक केवल चार महिलाएँ दन्त-चिकित्सक (Dental Surgeon) हैं और उनमें भी देवी जी सर्व-प्रथम हिन्दू महिला हैं। हम देवी जी की सफलता चाहते हैं।

❀ ❀ ❀

श्रीमती दुर्गादेवी (उर्फ़ "भाभी")

पाठकों ने पञ्जाब के सुप्रसिद्ध एवं सुसम्पन्न विप्लवकारी—स्वर्गीय श्री० भगवतीचरण जी का नाम सुना होगा, जिनकी २८वीं मई, १९३० को एक भयङ्कर विस्फोटक की असफल-परीक्षा में रावी के किनारे किसी जङ्गल में मृत्यु हुई थी। आपके पिता की राजभक्ति से प्रसन्न होकर गवर्नमेण्ट ने उन्हें 'रायसाहब' की उपाधि से विभूषित किया था; किन्तु पुत्र का आजीवन उद्देश्य तथा अटल विश्वास हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा भारत को दासता की बेड़ी से मुक्त करना रहा—यद्यपि अपनी इस धारणा का बहुत अधिक मूल्य उन्हें चुकाना पड़ा! कहा जाता है, आपने अपनी लाखों की सम्पत्ति विप्लव के इस अनुष्ठान में स्वाहा कर दी। इस आकस्मिक मृत्यु के बहुत पूर्व ही आपकी गिरफ़्तारी के लिए वारण्ट निकल चुका था, किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी आप पुलिस के चङ्गुल में न आ सके और फलतः मृत्यु-पर्यन्त स्वतन्त्र रहे। लाहौर आदि स्थानों में आपके कई मकान तथा पैतृक जायदाद थी, जो कहा जाता है, गवर्नमेण्ट ने ज़ब्त कर लिया है। श्रीमती दुर्गादेवी जी, जिनका चित्र पाठकों को अन्यत्र मिलेगा, आप ही की सहधर्मिणी हैं।

कहा जाता है, कुछ सरकारी गवाहों के बयान के अनुसार आपकी गिरफ़्तारी का भी वारण्ट हो नहीं कट चुका था, पर साथ ही आपको पकड़ाने वाले के लिए एक यथेष्ट रक़म पुरस्कार-स्वरूप देने की भी घोषणा की गई थी; पर लाख प्रयत्न करने पर भी आपका पता पुलिस को न मिल सका। सब से मनोरञ्जक बात तो यह है कि सन् १९३० में बम्बई के लैमिङ्गटन रोड 'षड्यन्त्र' (जिसमें एक अङ्गरेज़ सार्जेण्ट के मारने का अभियोग था) के किसी सरकारी गवाह ने कहा था कि 'शारदा देवी' नामक जिस महिला ने सर्व-प्रथम सार्जेण्ट पर गोली-प्रहार किया था, वह लाहौर-षड्यन्त्र केस की 'फ़रार' अभियुक्त यही श्रीमती दुर्गादेवी थीं और 'हरि' नामक जो ७-८ वर्षीय बालक 'शारदा' के साथ था, वह आप ही का पुत्र था। पर न्यायाधीश के सामने, हमें यह जान कर प्रसन्नता हुई, पुलिस वालों की दाल गल नहीं सकी, यद्यपि यह सत्य है, कि श्रीमती दुर्गादेवी की गोद में भी एक ७-८ वर्षीय पिता-हीन

बालक है। बम्बई के इस उपहासजनक 'षड्यन्त्र' में क़रीब १७-१८ नवयुवक पुलिस द्वारा गिरफ़्तार किए गए थे और पुलिस की ओर से लगभग '१५० सरकारी गवाह' पेश करने की धमकियाँ दी गई थीं; किन्तु दूसरी पेशी में ही सुयोग्य न्यायाधीश महोदय ने इस निराधार 'षड्यन्त्र' का उपहास करते हुए पुलिस की जिन तीव्र शब्दों में निन्दा की थी और 'अभियुक्तों' को मुक्त करते हुए पुलिस की 'बेहूदा' हरकतों की जिन शब्दों में निन्दा की थी, वह समाचार-पत्रों के पाठकों से छिपा न होगा। फलतः मुक़दमा ही सबूत के अभाव के कारण उठा लिया गया! हमें बतलाना न होगा, देवी जी की यह प्रथम विजय हुई।

दूसरी विजय अब पाठकों के सामने है। कहा जाता है, श्रीमती दुर्गादेवी जी पिछले २ वर्षों से 'फ़रार' थीं, पर एकाएक वे १५ सितम्बर, १९३२ को प्रोफ़ेसर सम्पूरनसिंह टण्डन, एम० ए० (आप देहली कॉलेज में अङ्गरेज़ी के प्रोफ़ेसर थे। 'आसफ़' नाम के जिस व्यक्ति का नाम देहली तथा लाहौर षड्यन्त्र केसों में आया है, कहा जाता है वे आप ही हैं। आपकी गिरफ़्तारी के लिए देहली गवर्नमेण्ट की ओर से १५,००) रु० के पुरस्कार की घोषणा की गई थी, पर पिछले दो वर्षों से कहा जाता है, आपका पता भी नहीं चला था) के साथ अपने घर पहुँच कर पुलिस के पास आपने इस आशय का एक पत्र भेजा कि वे प्रोफ़ेसर सम्पूरनसिंह टण्डन सहित अपने ग्वालमण्डी (कूचा मिलखीराय) वाले मकान में (जिसे सरकार ने ज़ब्त कर लिया है) मौजूद हैं और यदि पुलिस उन्हें गिरफ़्तार करना चाहे, तो सहर्ष कर सकती है। यह समाचार पाते ही पुलिस ने दल-बल सहित आपके निवास-स्थान पर छापा मारा और तलाशी लेने के बाद आपको तथा प्रोफ़ेसर साहब को गिरफ़्तार करके क़िले में भेज दिया गया। गत २५ सितम्बर को आपका मामला सर्दार नरेन्द्रसिंह सिटी मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। पर पुलिस के पास आपके तथा प्रोफ़ेसर टण्डन के विरुद्ध यथेष्ट प्रमाण न होने के कारण मैजिस्ट्रेट महोदय ने दोनों को रिहा कर दिया। यह देवी जी की दूसरी विजय थी! पर जैसे ही पहिले जुर्म में आप रिहा की गई, वैसे ही सी० आई० डी० वालों ने पञ्जाब गवर्नमेण्ट के चीफ़ सेक्रेटरी द्वारा हस्ताक्षरित एक फ़र्मान के आधार पर आपको तथा प्रोफ़ेसर टण्डन को फिर 'इमरजेन्सी पावर ऑर्डिनेन्स' के अनुसार गिरफ़्तार कर लिया और फ़िलहाल आप दोनों दो महीनों के लिए नज़रबन्द करके शाही क़िले में रक्खे गए हैं।

हमारे एक प्रतिष्ठित सम्वाददाता ने हमें सूचित किया है कि इधर कुछ दिनों से आपको क्षय (तपेदिक़) हो जाने का सन्देह है और आप बहुत ज़्यादा कमज़ोर हो गई हैं। आपको प्रायः ज्वर बना रहता है।

यही आपका संक्षिप्त परिचय है।

❀ ❀ ❀

मिसेज़ जाफ़रअली उर्फ़ सावित्री देवी

आप एक आयरिश महिला हैं। कुमारावस्था में आपका नाम मिस एलिस था। पाठक 'चाँद' के इसी अङ्क में आपका १९०६ का चित्र भी देखेंगे। आपने अलीगढ़ के मि० जाफ़रअली नाम के एक मुस्लिम बैरिस्टर से विवाह कर लिया था और तब से आप मिसेज़ जाफ़रअली के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपको भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से बड़ा प्रेम रहा है, आप वर्षों से खद्दर का ही प्रयोग करती हैं और स्वदेशी वस्तु ही काम में लाती हैं। आजकल आप हिन्दू-वेष में ही रहती हैं और खाने-पीने तथा रहने-सहने का आपका सारा ढङ्ग हिन्दुओं का सा है। आपने अपना नाम भी बदल कर 'सावित्री देवी' रख लिया है। आपके दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन-सम्बन्धी बातों की चर्चा हम नहीं करना चाहते; केवल इस सिलसिले में इतना बतला देना आवश्यक है, आप पति द्वारा परित्यक्ता महिला हैं। आप स्थानीय क्रॉस्थवेट कॉलेज में अध्यापन का कार्य करती थीं।

२३वीं जनवरी, १९३२ को आपके यहाँ, श्री० यशपाल नामक पञ्जाब के एक सुप्रसिद्ध विप्लवकारी की गिरफ़्तारी हुई और कहा जाता है, तीन तमन्चे तथा रिवॉल्वर और १७ राउण्ड गोलियों की मिली थीं। मैजिस्ट्रेट के सामने आपका मुक़दमा होने के बाद आप सेशन्स सुपुर्द कर दी गई, जहाँ से आपको ५ वर्ष के कठिन कारावास का दण्ड प्रदान किया गया है, जिसकी पत्रों में बड़ी निन्दा हो चुकी है। इस समय आपकी अपील हाईकोर्ट में दाख़िल है और शीघ्र ही सुनी जाने वाली है।

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

ज़रा इन अछूतोद्धारकों की स्पर्द्धा तो देखो, कमबख़्त अँगुली पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ने लग गए और अगर यही दशा रही तो एक दिन बूढ़े सनातनधर्म दादा की गर्दन भी नाप डालेंगे।

❀

महामना मालवीय जी ने कहा था कि अस्पृश्यता को दिलोदिमाग़ से निकाल डालना होगा, तो निकाल डालिए; मना कौन करने जाता है? परन्तु यह 'सह-भोजन' की चाल तो बड़ी ही ख़तरनाक है। जराजीर्ण सनातनधर्म की कमर भला यह करारी चोट कैसे बरदाश्त कर सकेगी?

❀

वल्लाह, क्या मज़े का खेल बन गया था। अछूतों का छुआ जल जायज़ मान लिया गया। सेवा के लिए शूद्रों की संख्या बढ़ गई। खेती-बारी मोट-मजूरी के लिए आदमियों की क़िल्लत पड़ गई थी। कहीं-कहीं तो जनेऊ-धारी द्विजातियों को हल जोतने तक की नौबत आ गई थी। ऐसी दशा में अछूतों को एक-दो इञ्च आगे बढ़ा देना कोई अनुचित न था।

❀

परन्तु यह सब धान बाइस पसेरी का हिसाब तो, क़सम औलिया पीर की, बड़ा ही बुरा है। अछूत भी आदमी बन जाएँगे, और ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों की बराबरी करने लगेंगे तो बेचारे ऋषियों का पाला हुआ वर्णाश्रमधर्म जिएगा क्या कोंपर चूस कर?

❀

हमने तो सोचा था कि जो कुछ बीतेगी, पत्थर के देवता के सिर बीतेगी। उनकी जात-पाँत का ठिकाना ही क्या है; कोई तेलिहा पत्थर के बने हैं और कोई मरमर के। निर्जन स्थान के भग्न-कपाट मन्दिरों में तो कभी कुत्ते भी घुस जाते हैं और टाँग उठा कर देवता जी पर तृप्यन्ताम कर देते हैं, तो इससे किसका क्या बिगड़ जाता है?

❀

ख़ैर, निर्जन स्थानों की बात तो जाने दीजिए। काशी के विश्वनाथ का पुराना जनाकीर्ण मन्दिर तो आपने देखा ही होगा। अजी, वही जिसे औरङ्गज़ेब ने तोड़-फोड़ कर ख़ुदा का घर बना लिया था और जहाँ आजकल धोबी कपड़े धोते और अपने गधे बाँधते हैं।

❀

वहीं वह बड़ा सा कूप है, जिसमें यवन-स्पर्श के डर से बाबा विश्वनाथ अपने कुण्डी-सोंटे के साथ कूद पड़े थे। वहाँ की शिव-मूर्तियों पर के अक्षत मुर्ग़ियाँ चुगा करती हैं और अगर आवश्यकता होती है, तो वहीं बीट भी कर देती हैं। क्योंकि सनातनधर्म की ओर से उनके बीट-विसर्जन के लिए अभी तक कोई विशेष व्यवस्था नहीं की गई है।

❀

तात्पर्य यह कि जब मुर्ग़ियों के बीट-विसर्जन और कुत्तों के सरस तर्पण से हमारे देवता जी का कुछ नहीं बिगड़ता-बनता, तो अछूतों के मन्दिर में जाकर देव-दर्शन कर लेने से भी उनका कुछ नहीं बिगड़ने का।

❀

ऐसी दशा में अस्पृश्यतावर्जन की 'मुफ़्त की गङ्गा में हराम का ग़ोता' लगा कर थोड़ा सा सुयश अर्जित कर लेने के लिए आज बहुत से चतुर वर्णाश्रमी भी तैयार हैं और 'साँप मर जाय, पर लाठी न टूटे' इस प्राचीन नीति-वाक्य के अनुसार अस्पृश्यतावर्जन भी कर डालना चाहते हैं और अपने प्यारे वर्णाश्रम-धर्म को भी क़ायम रखना चाहते हैं।

❀

अरे भई, कहावत है कि 'जो शालिग्राम को भून सकता है, उसे बैंगन भूनते कितनी देर लगती है ?' जो अपनी जीती-जागती आत्मा को धोखा दे सकता है, उसके लिए पत्थर के देवता को चक़मा दे देना कौन सी बड़ी बात है। वल्लाह, यही तो सनातनधर्म और उसकी मुख्य शिक्षा ही ठहरी !

❀

इसीलिए कहीं-कहीं से यह वैज्ञानिक बाँग सुनने में आ रही है कि हम तो 'आचारो परमोधर्मः' के अनुयायी होने के कारण अपने बाप का छुआ भी नहीं खाते। परन्तु मरने पर उनके लिए सजीव छकड़ों पर पिण्डा-पानी लाद कर स्वर्ग भेज देते हैं, ताकि वहाँ भूखों न मर जाएँ या पानी विना बेशौचे ही न रह जायँ।

❀

भई, साफ़ बात तो यह है कि अस्पृश्यता रहे या भाड़ में जाए, परन्तु हमारे मरुभूमिवत् सपाट खोपड़ी वाले निरक्षर भट्टाचार्य महोदय की प्रधानता बनी रहे और उनकी सूजी की क़ब्र सी तोंद में प्रचुर घृतपक्व पड़ा करे और बस ! क्योंकि बुद्धिमानों ने पहले से ही कह रक्खा है कि "भोंदू भाव न जाने, पेट भरे से काम !"

❀

ख़ुदा न करे, अगर 'सहभोज' आन्दोलन के कारण बेचारी वर्णव्यवस्था को आत्महत्या कर लेनी पड़े तो बिना परिश्रम के कलाकन्द और खुरचन के लड्डू उड़ाने का मज़ा ही जाता रहेगा और बच्चों को ब्राह्मणेतर वर्णों की भाँति मेहनत की कमाई पर निर्भर करना पड़ेगा।

❀

फलतः मरने पर पिण्डा-पानी देना तो दूर रहा, लड़के गालियाँ देंगे और कहेंगे—'ददुआ स्यारु नितान्त स्वारु रहा ! खाने के लिए तो रख गवा कौंपर और मूँड़ पर लाद गवा, वार्षिक और मासिक श्राद्ध की महा-खर्चीली व्यवस्था !'

❀

इसलिए दुदुआ जी की 'भई गति साँप छुछून्दर केरी !' आख़िर, बेचारे करें तो क्या करें ? बस, इसी वजह से उन्होंने अस्पृश्यता-वर्जन के सम्बन्ध में अपना वही पुराना हथियार (कपट) थाम लिया है। अगर लगा तो तीर नहीं तो तुक्का ही सही !

❀

मगर 'मिसफ़ॉरच्यून नेवर कमस् एलोन'—दुर्भाग्य अकेला नहीं आता ! उदर-पूर्त्ति की बाप-दादा-विनिर्मित प्रणाली तो अस्पृश्यता-वर्जन की आँधी में पड़ कर क़ला-बाज़ी खा ही रही थी, कि आए-दिन की कुमारियों ने मरे पर सौ दुर्रे और जमाना आरम्भ कर दिया !

❀

कलकत्ता के निकटवर्ती ज़िला चौबीस परगने की घटना है। पिता ने दर-दर की ख़ाक छान कर कन्या के लिए सात घाट का जल पिया हुआ, अनुभवी पात्र चुना। बातचीत पक्की हो गई, तिलक-दहेज़ तय हो गया। सुसज्जित तञाम पर सवार होकर वर महोदय शादी करने के लिए भावी ससुर के दरेदौलत पर आगए। बस, इतने में कमन्द टूटी और सारी उमङ्गों पर पानी फिर गया ! हाय मेरी बीबी रे !

❀

बङ्गाल के हिन्दुओं में एक प्रथा है, उसे 'दृष्टि-विनिमय' कहते हैं—द्वार-पूजा के बाद वर कन्या को और कन्या वर को देख लेती है ! यहाँ कन्या ने जो वर महोदय को देखा तो मुँह बिचका कर रह गई और जैसे आप जनवासे पधारे, उसने अपने पिता जी के सामने घोषणा कर दी कि मैंने अपने लिए उपयुक्त वर चुन लिया है।

❀

यह लो ! कमबख़्त कहती क्या है ? पागल तो नहीं हो गई है ? अरे, ऐसा भी कहीं होता है; सारी कुल-मर्यादा ही मर मिटेगी। समाज में मुँह दिखाना दूभर हो जाएगा। जो सुनेगा, वही हँसी उड़ाएगा। और, फिर कन्या के जानोमाल का ठीका ता विश्वविधाता ने पिता को दे रक्खा है, उसे अपने विवाह के सम्बन्ध में कुछ बोलने का अधिकार ही कहाँ है ?

❀

परन्तु बाबा, यह बीसवीं सदी क्या आई, मानो हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्म के लिए काल हाँक लाई है। न कोई धर्मशास्त्रों की सुनता है, न पक्व केश बूढ़ों की! कमबख़्त लड़की ने भी किसी की न सुनी। हाय बाबा शाह मदार, अब यह धर्म की नैया कैसे पार लगिहै!

❀

ख़ैर जनाब, बेचारे पिता को राह-ख़र्च और हरजाना-स्वरूप ५०) नक़द वर महोदय की सेवा में अर्पण करके उन्हें कुँवारा ही घर लौटाना पड़ा और लड़की ने उसी दिन गोधुली लग्न में अपने मनोनीत वर से अपना ब्याह कर लिया।

❀

अब अगर यही दशा रही तो बेचारे दादा सनातनधर्म की क्या गति होगी, भगवान ही जानें। बेचारे बाबा और पोती की अलौकिक जोड़ी देख कर किसी तरह अपनी बुढ़ौती के इनेगिने दिन बिता रहे थे। कहीं कोई गङ्गा-मदार का जोड़ा दीख पड़ता था, तो बूढ़ी रगों के लिए 'टॉनिक' का काम कर जाता था?

❀

बूढ़ों के लिए परलोक-पथ का सुन्दर साथी जुटा कर पुरोहित जी भी दो पैसे उपार्जन कर लेते थे। धर्म के नाम पर कन्याओं की बलि चढ़ा कर माता-पिता भी अल्प आयास में ही प्रचुर पुण्य प्राप्त कर लेते थे। परलोक के लिए कोई विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। क़सम ख़ुदा की, बड़ा लुत्फ़ था, परन्तु दईमारी बीसवीं सदी ने मारा कि बण्टाढार करके धर दिया!

❀

गहनों से शरीर की शोभा और शान बढ़ती है। पुश्त-दर-पुश्त की सञ्चित सम्पत्ति सार्थक हो जाती है। वह कमबख़्त इज़्ज़तदार कैसा, जिसकी स्त्री और बच्चे-बच्चियों के शरीर पर सेर-दो सेर 'धातु' न लदा हो। आख़िर, भलेमानुस भगवान ने सोना-चाँदी बनाया किस लिए है?

इज़्ज़त का तो सारा दारोमदार ही इन गहनों पर है। आप अपने घर में मालपुआ चाबते हैं या सत्तू चाट कर सो रहते हैं, कौन देखने जाता है, परन्तु अगर आपके लड़के-लड़की के शरीर पर दो 'थान' गहने हैं, तो समाज में आपकी प्रतिष्ठा है, मान है; आप बड़े आदमी समझे जाते हैं। इसीका नाम तो इज़्ज़तदारी है, या उसके कोई दुम हुआ करती है?

❀

इसीलिए तो अगर किसी देहाती ठाकुर साहब के दरवाज़े पर चले जाइए तो उनकी 'अष्ट वर्षा भवेद्गौरी' के तन पर आपकी आँखों को एक धागा न दिखाई पड़ेगा, परन्तु सेर भर चाँदी देखने का सौभाग्य आपको अवश्य ही प्राप्त हो जाएगा। अरे वाह रे आप, खोपड़ी पर मढ़ी हुई आँखें निहाल हो जाएँगी?

❀

इसे आप चाहें तो ठकुराई का चमकीला साइनबोर्ड समझ सकते हैं। किसी से पूछना भी न पड़ेगा, देखते ही आप समझ जाएँगे, कि यह धूल के घरौंदे में बैठी हुई विवस्त्रा, किन्तु 'कड़ा-छड़ा पाज़ेब साँकरा' वाली बालिका ख़ास ठाकुर साहब की ही कन्या है। साथ ही इतने से ही आपको यह भी मान लेना पड़ेगा कि ठाकुर साहब अपने गाँव के बड़े आदमी, रईस और ज़िमींदार हैं।

❀

परन्तु इतने से ही बस न समझिए। क्योंकि उपर्युक्त गुणों के अलावा गहनों में मुक्ति प्रदान करने के गुण का भी पता लगा है। अगर आप अख़बार पढ़ते होंगे तो आपको अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि गहनों की बदौलत अक्सर बच्चे भव-बन्धन से विमुक्त हो जाते हैं। अभी हाल में ही किसी ने एक लड़के की हत्या करके उसके गहने उतार लिए हैं! फलतः गहने इहलोक और परलोक दोनों के लिए उपयोगी हैं, इसमें सन्देह ज़रा भी नहीं।

पति पर ठगने का इलज़ाम

मिसेज़ ग्लेडिस जेण्टिल नाम की गोरी स्त्री ने कलकत्ता के चीफ़ प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट की अदालत में अपने पति के विरुद्ध अर्ज़ी दी है, जिसमें उस पर ठगने का अभियोग लगाया गया है। उसका कथन है कि अभी तक मैं बङ्गाल टेलीफ़ोन कम्पनी में १४६) मासिक वेतन पर नौकरी करती थी। गत नवम्बर में मेरा परिचय मि० जेण्टिल से हुआ और दिसम्बर में उसके साथ शादी हो गई। शादी हो जाने पर पता लगा कि वह बेकार है और उसने जो यह कहा था कि मैं बिहार-उड़ीसा की पुलिस में नौकर हूँ, वह सब झूठ है। इसके बाद कुछ दिनों तक मेरे घर वाले उसे खिलाते-पिलाते रहे और कभी-कभी रुपया-पैसा भी देते रहे। मैं उसकी सहायता के लिए यहाँ तक राज़ी हो गई कि अपने ज़ेवर तक बन्धक रख दिए। अगस्त में उसने मेरे साथ मार-पीट की। जब मैं अस्पताल से लौटी तो उसने क्षमा माँगी और मैंने उसे स्वीकार कर लिया। इसके दो-चार दिन बाद उसने कहा कि मुझे पूना में बिरला ब्रदर्स के यहाँ नौकरी मिल गई है, तुम भी मेरे साथ चलो। मैंने मूर्खतावश उसकी बात पर विश्वास करके नौकरी से एकदम स्तीफ़ा दे दिया। इसके फल-स्वरूप मेरा २ हज़ार रुपए का प्रॉविडेण्ट फ़ण्ड ज़ब्त हो गया और कुल ७५०) रुपए मुझे मिले। जब मैं ऑफ़िस से निकली तो अभियुक्त ने तमाम रुपए मुझसे ले लिए और कुल १६२) रुपए बन्धक ज़ेवरों को छुड़ाने के लिए मुझे दिए। उसने मुझसे बन्धक वाले के यहाँ जाने को कहा और बतलाया कि मैं स्टेशन जाता हूँ, वहीं आकर तुम मुझसे मिलना। इसके बाद मैंने उसे कभी नहीं देखा। दो दिन बाद सुनने में आया कि उस रुपए को लेकर वह एक यूरोपियन लड़की के साथ भाग गया और वे दोनों एक रात के लिए ग्राण्ड ईस्टर्न होटल में अपने को पति-पत्नी बतला कर मिस्टर और मिसेज़ मेकी के नाम से ठहरे थे। अभियुक्त के नाम वारण्ट निकाला गया है।

❀ ❀ ❀

क्या पत्नी को पीटना जायज़ है ?

ढाका के अशरफ़ुद्दीन अहमद नामक मुसलमान ने मुन्सिफ़ की अदालत में दावा किया था कि उसकी विवाहिता पत्नी शहज़ादुन्निसा उसके साथ रहने से इन्कार करती है, इसलिए अदालत उसे इसके लिए बाध्य करे। पर जब मुन्सिफ़ को बतलाया गया कि वादी प्रायः अपनी पत्नी को पीटा करता है, तो उसने दावा ख़ारिज कर दिया। वादी ने इसके विरुद्ध सब-जज की अदालत में अपील की। सब-जज ने मुन्सिफ़ के फ़ैसले को ख़ारिज करके निर्णय किया कि "मुस्लिम क़ानून के अनुसार पति को पत्नी के लिए साधारण दण्ड देने और किसी हद तक पीटने का भी अधिकार है, और इसलिए शहज़ादुन्निसा क़ानूनन् अशरफ़ुद्दीन के साथ रहने को बाध्य है।" इस निर्णय के विरुद्ध पत्नी ने कलकत्ता-हाईकोर्ट में अपील की। अपील में कहा गया था कि क़ानून में ऐसी कोई धारा नहीं है, जिसके अनुसार किसी मुसलमान पति को अपनी पत्नी को पीटने का अधिकार हो। जस्टिस मुकर्जी ने इस दलील को ठीक माना और सब-जज के फ़ैसले को बदल कर वादी के दावे को रद्द कर दिया।

❀ ❀ ❀

मन्त्र द्वारा सन्तान

बम्बई के फानसवाड़ी नामक मुहल्ले में मञ्जीबाई नाम की एक स्त्री रहती है, जिसके पुत्र का विवाह हुए यद्यपि आठ साल हो गए, पर अभी तक उसके कोई

सन्तान नहीं हुई। मञ्जीबाई ने इस सम्बन्ध में नारायण हरी नामक नाई से बातचीत की, जिसने वादा किया कि मैं मन्त्र-बल से तुम्हारी बहू के सन्तान उत्पन्न करा सकता हूँ। इस कार्य के लिए वह मञ्जीबाई को समुद्र के किनारे ले गया और वहाँ कुछ क्रियाएँ की गईं। पर उस कार्यक्रम को नारायण हरी ने बीच ही में यह कह कर रोक दिया कि आज का दिन अशुभ है। इसके कुछ दिन बाद वह फिर मञ्जीबाई को कोलाबा की तरफ़ समुद्र के किनारे ले गया और उसकी बहू के सन्तान होने के लिए कुछ अनुष्ठान करने लगा। पहले उसने कुछ मन्त्र पढ़े और तब मञ्जीबाई से अपना मुँह खोलने को कहा। उसने उसके मुँह में दो नींबू रख दिए और कहा कि आँखें बन्द करके लेट जाओ। इसके पश्चात् उसने मञ्जीबाई के गले में एक रस्सी का फन्दा डाला और उसे खींचने लगा। इससे वह बेहोश होकर गिर गई। तब नाई उसके सोने के ज़ेवर को, जिसकी क़ीमत २५) थी और उसके बटुवे में रक्खे दो आने पैसे लेकर चम्पत हो गया। कुछ समय बाद ज़ोर की बारिश होने से मञ्जीबाई को होश आया और उसने कोलाबा के थाने में जाकर घटना की रिपोर्ट लिखाई। अभियुक्त गिरफ़्तार कर लिया गया और सोने का ज़ेवर एक दूसरे नाई के पास से बरामद हुआ। मौक़े पर जाँच करने से पुलिस को दोनों नींबू और रस्सी का टुकड़ा भी मिला।

❀ ❀ ❀

पूँजीपतियों की कोई श्रेणी नहीं

बम्बई की एक प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्री मिस मनीबेन कारा पर, जो वहाँ के कॉरपोरेशन की सदस्य भी हैं, दफ़ा १५३-ए और दफ़ा १२४-ए के अनुसार मुक़दमा चलाया गया था। सरकार की तरफ़ से कहा गया कि मिस मनीबेन ने मज़दूरों की एक सभा में भाषण देते हुए ऐसी बातें कहीं, जिनसे सम्राट की प्रजा की दो श्रेणियों में शत्रुता और घृणा का भाव फैलता है और जनता में सरकार के प्रति विरोध का भाव उत्पन्न होता है। चीफ़ प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को दोषी ठहरा कर साल भर की सख़्त क़ैद और ३००) जुर्माने की सज़ा दी थी। इसके विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की गई और चीफ़ जस्टिस ने क़ैद की सज़ा को रद्द करके केवल ३००) जुर्माने की सज़ा बहाल रक्खी। उन्होंने फ़ैसले में कहा है कि हमको व्याख्यान के किन्हीं वाक्यों पर विचार करने के बजाय सम्पूर्ण व्याख्यान के आशय पर ध्यान देना चाहिए। उसमें मज़दूरों को सङ्गठित होने और ऐसी अवस्था उत्पन्न कर देने के लिए, जिससे जनरल हड़ताल की जा सके, उत्साहित किया गया था। जब हम इस भाषण पर दफ़ा १५३-ए की दृष्टि से विचार करते हैं, तो हम चीफ़ प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट की इस सम्मति को स्वीकार नहीं कर सकते कि पूँजीपति कोई ऐसी श्रेणी है, जिसकी भली-भाँति व्याख्या की जा सकती है। पूँजीपति का शब्दार्थ ऐसा व्यक्ति है, जिसके पास कुछ पूँजी जमा हो, और ऐसा व्यक्ति शायद ही कोई होगा, जिसके पास कुछ न कुछ पूँजी जमा न हो। इसलिए 'पूँजीपति' शब्द से किसी विशेष दल या श्रेणी का आशय ग्रहण करना सर्वथा भ्रमपूर्ण है। इसके सिवाय यह व्याख्यान पूँजीपतियों के प्रति घृणा का भाव फैलाने के लिए काफ़ी ज़ोरदार नहीं है। पूँजीपतियों के विरुद्ध केवल यही कहा गया है कि वे मज़दूरों द्वारा ख़ूब रुपया कमाते हैं और उनको कम वेतन देते हैं। यह बात ऐसी नहीं है, जो दफ़ा १५३-ए के अनुसार शत्रुता और घृणा उत्पन्न करने वाली मानी जा सके।

पर दफ़ा १२४-ए वाला अभियोग इससे भिन्न प्रकार का है। व्याख्यानदाता ने गवर्नमेन्ट पर अभियोग लगाया है कि वह पूँजीपतियों के साथ मिल कर मज़दूरों का विरोध करती है। यह बात स्पष्टतः गवर्नमेण्ट के विरुद्ध शत्रुता का भाव उत्पन्न करने वाली है। यह मनीबेन के वकील ने बतलाया है कि वह उस अवसर पर भाषण के प्रवाह में बह गई थी और साथ ही उसने भविष्य में सरकार पर आक्षेप करने वाले भाषण न देने का वचन दिया है। इसलिए क़ैद की सज़ा रद्द करके केवल जुर्माने की सज़ा दी जाती है।
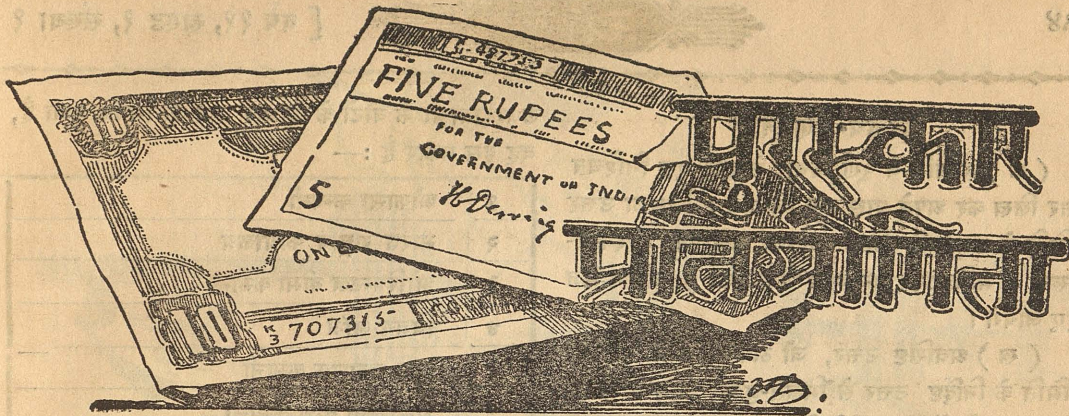
५२) का नक़द पुरस्कार

अबकी बार पुरस्कार-प्रतियोगिता में भाग लेने वालों के लिए २१), १३), ११) और ७) नक़द के चार पुरस्कार रक्खे गए हैं। कृपया नीचे लिखी नियमावली को ध्यान-पूर्वक पढ़िए :—

नियम

(१) नीचे दिए हुए नियमों का ठीक-ठीक पालन किए बिना जो उत्तर आएँगे, वे पुरस्कार-प्रतियोगिता में कदापि शामिल न किए जाएँगे।

(२) यह प्रतियोगिता 'चाँद' के सभी पाठकों के लिए है। जो 'चाँद' के स्थायी ग्राहक हैं, उन्हें उत्तर-पत्र पर अपना ग्राहक-नम्बर और पूरा पता अवश्य ही लिखना चाहिए और उत्तर के साथ ही ।) का टिकट भी भेजना चाहिए। परन्तु जो 'चाँद' के स्थायी ग्राहक नहीं हैं, उन्हें ।।।) का टिकट भेजना चाहिए। टिकिट के पैसे मनीआर्डर द्वारा न भेजे जायँ।

(३) एक व्यक्ति (चाहे वह ग्राहक हो या अग्राहक) केवल एक ही उत्तर भेज सकता है।

(४) उत्तर के साथ टिकिट के सिवा किसी प्रकार का पत्र आदि नहीं आना चाहिए।

(५) पुरस्कार-प्रतियोगिता में भाग लेने वाले सज्जनों को 'चाँद' के इस अङ्क में प्रकाशित 'चाँद प्रेस लिमिटेड' (Chand Press, Limited) के सभी विज्ञापनों को ध्यानपूर्वक आद्यन्त पढ़ कर यह बताना होगा कि उनमें से कौन-कौन से चार ऐसे विज्ञापन हैं, जो लेखन-शैली, सजावट और पढ़ने वालों के उपकार की दृष्टि से अधिक उपयोगी और आकर्षक हैं।

इसके बाद उन्हें उन चार विज्ञापनों की श्रेष्ठता के अनुसार नीचे दिए कूपन के ख़ानों में दर्ज करना होगा। जो सब से अच्छा प्रतीत हो वह पहले ख़ाने में, उसके बाद का दूसरे ख़ाने में, आदि-आदि।

(विशेष—पाठकों को याद रखना चाहिए कि इस प्रतियोगिता में केवल 'चाँद प्रेस लिमिटेड' के विज्ञापन ही शामिल हैं, दूसरे नहीं।)

(६) प्रतियोगिता सम्बन्धी उत्तर, नीचे लिखे पते पर हमारे पास आगामी १५ दिसम्बर तक आ जाना चाहिए। इसके बाद के आए हुए उत्तरों पर कोई ध्यान न दिया जाएगा।

पता—'चाँद' प्रतियोगिता विभाग,
चाँद प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद

The CHAND Puzzle Deptt ,
The Chand Press, Ltd., Allahabad.

(७) कटा-छटा, संशोधित और अस्पष्ट उत्तर नियम-विरुद्ध समझा जाएगा।

(८) चाँद प्रेस, लिमिटेड के कर्मचारियों को इस प्रतियोगिता में भाग लेने का अधिकार न होगा।

(९) निर्णय का सम्पूर्ण अधिकार नीचे लिखी निर्णायक समिति को होगा।

निर्णायक-समिति

इस समिति में पाँच सज्जन रक्खे गए हैं—(१) चाँद प्रेस, लिमिटेड के मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर श्री० आर० सहगल, (२) प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०, (३) भूतपूर्व उर्दू 'चाँद' के सम्पादक मुन्शी कन्हैयालाल साहब, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट, इलाहाबाद हाईकोर्ट, (४) 'चाँद'-सम्पादक मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव और (५) श्री० सत्यभक्त जी।

निर्णय-प्रणाली

(क) समिति ने पूर्ण विचार के बाद एक निश्चित उत्तर लिख कर अपने पास रख लिया है। जिसका उत्तर समिति के उत्तर से मिल जायगा, उसे २१) पुरस्कार-स्वरूप (मनिऑर्डर कमीशन काट कर) फ़ौरन भेज दिए जायँगे।

(ख) अवशिष्ट उत्तर, जो ठीक न होने पर भी समिति के निर्दिष्ट उत्तर से मिलते-जुलते होंगे, वे क्रमानुसार ग़लतियों की कमीबेशी के लिहाज़ से तीन भागों में बाँट दिए जाएँगे और उनके भेजने वालों के नाम काग़ज़ के अलग-अलग चिटों पर दर्ज कर लिए जाएँगे। इसके बाद तमाम चिट क्रमानुसार तीन बक्सों में डाल दिए जाएँगे और एक अबोध बालक द्वारा प्रत्येक में से एक-एक चिट बारी-बारी से निकलवा लिया जायगा। और इस तरह जिसका-जिसका नाम निकलेगा, वे पुरस्कार पाने के अधिकारी होंगे।

(ग) एक से अधिक ठीक आए हुए उत्तरों का निर्णय भी उपर्युक्त विधि से ही किया जाएगा।

कूपन और प्रतिज्ञा

१	
२	
३	
४	

प्रतिज्ञा

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उन नियमों का पालन करूँगा और निर्णायक-समिति के निर्णय को स्वीकार करूँगा तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा।

नोट—जो उत्तर इस लिखित प्रतिज्ञा के साथ न आएँगे, उन पर ध्यान न दिया जाएगा।

ग्राहक-नं०———————

नाम———————

पूरा पता———————

सितम्बर की पहेली नं० १ का परिणाम

(१) इस पहेली के उत्तरों की सम्मतियों के अनुसार प्रत्येक विज्ञापन की श्रेष्ठता पर वोट लिए गए थे। उत्तरदाताओं के वोटों के आधार पर जो निर्णय हुआ है, वह इस प्रकार है :—

१	ओकासा कम्पनी
२	भारत राष्ट्रीय कार्यालय
३	ओरियन्टल बीमा कम्पनी
४	विजय लॉज
५	सुख सञ्चारक कम्पनी
६	अमेरिकन वाच कम्पनी
७	न्यू इन्टरनेशनल ट्रेडिङ्ग कम्पनी
८	के० मणिलाल एण्ड को०
९	डाबर लिमिटेड
१०	बङ्गाल केमिकल एण्ड फ़र्मास्युटिकल

(२) इस निर्णय से किसी पाठक का उत्तर नहीं मिला। निम्नलिखित पाठकों के उत्तर सब से अधिक ठीक हैं, अतः उन्हें 'चाँद' छः मास तक मुफ़्त भेजा जायगा—

१—श्री० काशीरामसिंह गौड़, छोटापारा (२९६५७)

२—श्री० रामकृष्ण मिश्र, रतनगढ़ (२०७३४)

सितम्बर की पहेली नं० २ का ठीक उत्तर

न	×	न	र	म	×	न	वा	ला
म	न	×	म	हा	न	दी	×	×
×	र	न	×	न	बी	×	रा	ज
आ	क	×	न	×	×	त	ब	ला
जी	×	न	व	जी	व	न	×	श
व	की	ल	×	×	न	×	हि	य
न	ट	×	ट	न	×	न	र	×
×	×	ध	न	स	म	×	न	स
कि	सा	न	×	र	त	न	×	न

श्रीमती रमामोहनी वर्मा (ग्रा० नं० २९९२०) का उत्तर बिल्कुल ठीक था, इसलिए पुरस्कार २५) उनकी सेवा में भेज दिए गए।
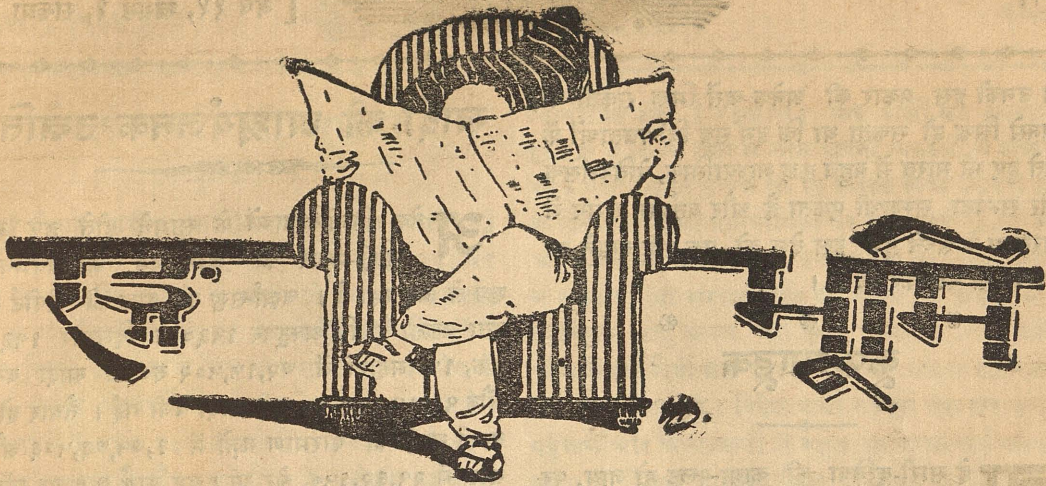
[सम्पादकीय]

सरकारी प्रचार-कार्य

भारत-सरकार इस देश की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति तथा अन्य सार्वजनिक विषयों के सम्बन्ध में प्रतिवर्ष एक पुस्तकाकार रिपोर्ट प्रकाशित किया करती है, इसके प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य पार्लामेण्ट के मेम्बरों और इङ्गलैण्ड के राजनीतिज्ञों को भारतवर्ष की तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान कराना होता है। इसलिए भारतीय नौकरशाही स्वभावतः इसे ऐसे ढङ्ग से तैयार कराती है, जिससे इस देश के राजनीतिक आन्दोलन की बदनामी हो और इङ्गलैण्ड वालों का मनोभाव भारतवासियों के सम्बन्ध में विरोधपूर्ण बना रहे अथवा कम से कम उनके हृदय में यहाँ वालों की राजनीतिक आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति का भाव उत्पन्न न हो सके। हमारे इन विचारों की पुष्टि सन् १९३०-३१ की रिपोर्ट से होती है, जो केवल महीने भर पहले प्रकाशित हुई है। इसमें पहले सत्याग्रह आन्दोलन का विस्तृत वर्णन किया गया है, पर उसे ऐसे ढङ्ग से तोड़ा-मरोड़ा गया है, जिससे मालूम होता है कि आन्दोलनकारियों का उद्देश्य सिवा ख़ून-ख़राबी के और कुछ न था। समस्त घटनाओं का सारांश रिपोर्ट के लेखकों ने यह निकाला है कि "अनुभव द्वारा फिर यही सिद्ध हुआ कि भारत के समान देश में एक सङ्गठित और शक्तिपूर्वक परिचालित आन्दोलन का, जिसका उद्देश्य सरकार और क़ानून की अवज्ञा करना हो, फल इसके सिवा कुछ नहीं हो सकता कि देश की परिस्थिति गम्भीर हो जाय और चारों तरफ़ उपद्रव होने लगे।" रिपोर्ट में इस आन्दोलन को 'ख़ून-ख़राबी की बाढ़' के नाम से याद किया गया है और बतलाया है कि इसी कारण लाचार होकर गवर्नमेण्ट को बहुत अधिक संख्या में गिरफ़्तारियाँ करनी पड़ीं। अन्य विषयों में भी इसी प्रकार भारत के दावे को कमज़ोर बनाने की चेष्टा की गई है। उदाहरणार्थ एक जगह लिखा है—"जब हम भारत और पश्चिमी यूरोप का मुक़ाबला करते हैं, तो मालूम होता है कि जहाँ पश्चिमी यूरोप में समस्त जनता ईसाई-धर्म की अनुयायी है और दो-तीन नस्लों में बँटी है, वहाँ भारत में असंख्यों नस्लें और मज़हब हैं और लोगों में अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है। स्वाभाविक रीति से समय बीतने पर इन विभिन्न नस्लों और संस्कृतियों का एकीकरण हो सकता था, पर कितनी ही सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं ने, जिनमें सब से अधिक महत्वपूर्ण जाति-प्रथा है, ऐसी सम्भावना को निष्फल कर दिया।" इस प्रकार की बातों का उद्देश्य यही है कि विदेश वाले नौकरशाही की इस पुरानी दलील की याद न भूल सकें कि भारत विभिन्न प्रकार की परस्पर विरोधी जातियों और मज़हबों का समूह है, जिसको केवल ब्रिटिश सरकार की तलवार ने एक बना रक्खा है, और जहाँ वह ताक़त यहाँ से हटी कि यह एक दिन में तीन-तेरह हो जायगा। यदि रिपोर्ट के लेखकों का ऐसा स्वार्थयुक्त उद्देश्य न होता और वे निष्पक्ष रीति से परिस्थिति का दिग्दर्शन कराना चाहते,

तो उनको इस प्रकार की अनेक बातें मिल सकती थीं, जिनसे सिद्ध हो सकता था कि इन सब विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में बहुत कुछ आध्यात्मिक, ऐतिहासिक और सभ्यता सम्बन्धी एकता है और वर्तमान समय में भारतवर्ष के सच्चे पुत्र इस देश को एक राष्ट्र बनाने का प्राणपण से यत्न कर रहे हैं।

❀ ❀ ❀

कूप-मण्डूक

चाहे सारी दुनिया की काया-पलट हो जाय, पर हमारे सनातनी भाइयों को कूप-मण्डूक बने रहने में ही सुख है। वे जिस कीचड़ में पड़े हुए हैं, वह उनको ऐसा प्यारा लगता है कि सुधार या उन्नति का नाम सुनते ही वे एकदम चौंक पड़ते हैं और कोई ध्यान दे या न दे, अपना पृथक् राग अलापने लगते हैं। देश में शासन-सुधारों की जो चर्चा चल रही है, उससे उनको इस बात की चिन्ता हुई है कि कहीं सर्वसाधारण को ऐसे अधिकार न मिल जायँ, जिससे वे पुरा कूड़े-कर्कट को साफ़ करके नवजीवन के निर्माण की चेष्टा करें। इसलिए जब कि समस्त देशभक्त व्यक्ति और राजनीतिक कार्यकर्ता यह शिकायत कर रहे हैं कि सरकार भारतवासियों को बहुत थोड़ा अधिकार दे रही है, ये कूप-मण्डूक वॉयसरॉय के पास इस बात की अर्ज़ी लेकर गए थे कि अगर भारतवासियों को राजनीतिक अधिकार दिए जायँ तो उसमें ऐसा अड़ङ्गा लगा दिया जाय, जिससे वे उनका भली-भाँति उपयोग न कर सकें। इसके लिए सब से अच्छा उपाय उन्होंने यह बतलाया है कि प्रत्येक प्रान्त में एक के बजाय दो व्यवस्थापक सभाएँ रहें और कोई भी धार्मिक या सामाजिक प्रस्ताव तब तक पास न हो, जब तक दोनों सभाओं के दो तिहाई सदस्य उसे स्वीकृत न कर लें। देश के प्रत्येक समझदार राजनीतिज्ञ की सम्मति में इस प्रकार दो व्यवस्थापक सभाओं का होना राजनीतिक विकास तथा प्रजातन्त्र शासन की उन्नति के लिए घोर बाधा-स्वरूप है, पर ये दक़ियानूसी लोग रेवड़ी के लिए मसजिद ढहाने में कुछ भी लज्जा अनुभव नहीं करते।

❀ ❀ ❀

खादी की आश्चर्यजनक उन्नति

अनेक विघ्न-बाधाओं के सामने होते हुए भी खादी-प्रचार का आन्दोलन आश्चर्यजनक रूप से बढ़ रहा है। चर्ख़ा-सङ्घ की हाल की रिपोर्ट से पता चलता है कि अक्टूबर १९३० से दिसम्बर १९३१ तक, १५ महीनों में ७२,१५,५०२ रु० की खादी बनी और ९०,९४,९३२ रु० की खादी बेची गई। तैयार होने वाली खादी का परिमाण गज़ों में १,७५,७६,५७६ और तोल में २९,६२,१५० सेर था। यह कार्य ७ हज़ार गाँवों में किया गया तथा २ लाख कातने वालों तथा ५ हज़ार बुनने वालों को इससे रोज़ी मिली। ये संख्याएँ केवल चर्ख़ा-सङ्घ के विभिन्न केन्द्रों और उससे सम्बन्धित संस्थाओं की हैं। व्यक्तिगत रूप से जो खादी घरों में बनाई जा रही है अथवा देशी रियासतों में इस सम्बन्ध में जो काम हो रहा है, उसकी सम्भवतः इस रिपोर्ट में गणना नहीं की गई है। उदाहरणार्थ मैसूर-सरकार के औद्योगिक विभाग द्वारा खादी-कार्य किया जा रहा है और सन् १९३१ में ४१,६६५ रु० की ८६,३३९ वर्ग गज़ खादी तैयार की गई है। इन आँकड़ों से विदित होता है, कि चाहे वर्तमान यन्त्र-युग में खादी स्थायी रूप से प्रचलित न हो सके, पर जब तक भारत का स्वाधीनता-संग्राम जारी है और वह वस्त्रों के लिए विदेशों का मुखापेक्षी है, तब तक खादी-आन्दोलन अवश्य ज़ोर पकड़ता जायगा और उससे देश की आर्थिक स्थिति किसी अंश में अवश्य सुधरेगी। यद्यपि मिल भी इस सम्बन्ध में प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं, पर खादी का महत्व उनसे कहीं अधिक है। मिल वालों को अपनी आय का एक बड़ा अंश मैशीनों के लिए विदेश भेजना पड़ता है और वे करोड़ों रुपए की विदेशी रुई भी ख़रीदते हैं। कितनी ही मिलों में बड़ी-बड़ी तनख़्वाह पाने वाले यूरोपियन नौकर हैं, जिनकी तमाम आमदनी एक प्रकार से विदेशों को ही जाती है। पर खादी में इनमें से कोई दोष नहीं है और उसकी बिक्री का अधिकांश रुपया अत्यन्त ग़रीब लोगों को मिलता है। इस दृष्टि से खादी-प्रचार जितना अधिक बढ़े, उतना ही देशोन्नति की दृष्टि से कल्याणजनक है।

❀ ❀ ❀

मिल वालों की मूर्खता

वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय कपड़े की मिल वालों के लिए ऐसा स्वर्ण-सुयोग उपस्थित कर दिया है कि अगर वे चाहें तो अपने व्यवसाय की दुगनी-चौगुनी उन्नति कर सकते हैं और विदेशों के प्रतिद्वन्द्वियों को सदा के लिए दबा सकते हैं। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि वे इस अवसर का उपयोग बुद्धिमानी के साथ नहीं कर रहे हैं। उनको अपने लाभ का ख़्याल ज़रूर है और इसके लिए वे 'स्वदेशी' का बहुत कुछ शोर मचाते हैं, पर उन्होंने इस बात की अभी तक कोई चेष्टा नहीं की है कि इस देश के वस्त्र-व्यवसाय का नवीन ढङ्ग से सङ्गठन किया जाय, जिससे कम ख़र्च में अधिक माल तैयार हो सके और जनता कम क़ीमत में कपड़ा पा सके। माननीय मालवीय जी ने अपने कलकत्ते के भाषण में सच कहा था कि—"क्या यह घोर आश्चर्य का विषय नहीं है कि विदेश वाले भारतवर्ष से रुई ख़रीद कर जहाज़ पर अपने देश ले जाते हैं और वहाँ उसका कपड़ा बना कर इस देश में भेजते हैं, और फिर भी वह कपड़ा इस देश की मिलों में बनने वाले कपड़े से सस्ता पड़ता है।" इस आश्चर्यजनक घटना के रहस्य पर 'इण्डियन टेरिफ़ बोर्ड' के चेयरमैन डॉ० मथाई ने प्रकाश डाला है। उनकी सम्मति में भारतीय मिलों में बड़ा कुप्रबन्ध है और वे बड़ी फ़िज़ूलख़र्ची करती हैं। इङ्गलैण्ड और जापान के मिल वाले जिस प्रकार पारस्परिक सहयोग की वृद्धि करके ख़र्च को अधिक से अधिक घटाने की चेष्टा में संलग्न रहते हैं, उस प्रकार की चेष्टा भारतीय मिल वालों ने कभी नहीं की। वे तो समझे बैठे हैं कि स्वदेशी के नाम पर जनता उनका मँहगा माल भी ख़रीद लेती है। जब इससे काम नहीं चलता तो टेरिफ़ बोर्ड से विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा करने की अपील करते हैं, और विदेशी वस्त्रों पर कर लगवा कर उन्हें भी अपने माल की तरह मँहगा करा देते हैं। यह सच है कि कोई भी देशभक्त भारतीय स्वदेशी उद्योग-धन्धों के रक्षार्थ अतिरिक्त कर लगाने का विरोध नहीं करेगा, पर मिल वालों की बदइन्तज़ामी और फ़िज़ूलख़र्ची का फल साधारण जनता भोगे, यह भी न्यायोचित नहीं है। इसलिए मिल वालों का कल्याण इसी में है कि वे शीघ्र से शीघ्र अपनी व्यवस्था में सुधार करके ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दें, जिससे बिना संरक्षण ही वे विदेश वालों की प्रतियोगिता कर सकें। क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव सदा एकसा नहीं बना रहेगा और न सरकार सदा संरक्षण-नीति को क़ायम रख सकती है। हम ऐसा कोई कारण नहीं देखते, जिससे मिल वालों को अधिक दिनों तक इस प्रकार की बाहरी सहायता आवश्यक जान पड़े। विदेश वालों को इस देश तक माल पहुँचाने और अन्य कार्यों में बहुत सा रुपया ख़र्च करना पड़ता है, जिससे भारतीय मिल वाले बचे हुए हैं। इसी प्रकार इङ्गलैण्ड और जापान दोनों को कपड़ा बनाने के लिए रुई भी हज़ारों मील दूर से मँगानी पड़ती है। पर भारतीय मिल वालों को अपने स्थान से कुछ कोस पर ही चाहे जितनी रुई मिल सकती है। इन सब सुभीतों के होते हुए भी यदि वे विदेशियों से सस्ता कपड़ा नहीं बेच सकते, तो यह निश्चय ही उनकी अयोग्यता का प्रमाण माना जायगा।

❀ ❀ ❀

सिनेमा का सदुपयोग

हमारे देश में सिनेमा केवल दिल-बहलाव की चीज़ समझा जाता है। कितने ही लोग तो उसे देशोन्नति की दृष्टि से हानिकारक समझते हैं। क्योंकि बहुत से नवयुवक उसके कारण शृङ्गार-रस के प्रेमी हो जाते हैं और कितने ही असद् उपायों द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करने की चेष्टा करने लगते हैं। पर वास्तव में सिनेमा की कला कोई बुरी चीज़ नहीं है और जिस प्रकार ज्ञानी व्यक्ति प्रत्येक चीज़ का सदुपयोग करके लाभ उठा सकता है, उसी प्रकार सिनेमा से भी बहुत-कुछ देश-हित साधन हो सकता है। इस सम्बन्ध में रूस ने संसार को नया रास्ता दिखलाया है और वहाँ आजकल जितनी फ़िल्में तैयार होती हैं, वे सब शिक्षा-विभाग द्वारा नियुक्त एक कमिटी द्वारा स्वीकृत की जाती हैं। उस देश में धार्मिक प्रचार अथवा केवल प्रेम या मनोरञ्जन के लिए फ़िल्म तैयार नहीं की जा सकतीं। प्रत्येक

फ़िल्म का उद्देश्य जनता को किसी आवश्यकीय विषय की शिक्षा देना होना चाहिए। प्रेम सम्बन्धी, साहसपूर्ण और मनोरञ्जक कृत्यों को फ़िल्म द्वारा दिखलाने की मनाही नहीं है, पर ये उन उपयोगी विषयों के सहायक होने चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूस सरकार ने सिनेमा सम्बन्धी सब प्रकार की मैशीनों और अन्य सामग्री के लिए बड़े-बड़े कारख़ाने स्थापित किए हैं तथा कार्यकर्त्ताओं की शिक्षा के लिए बहुत से स्कूल खोले गए हैं। रूस का आदर्श निस्सन्देह अनुकरणीय है और भारत भी उसके द्वारा अपने यहाँ फैली हुई अनेक सामाजिक कुरीतियों और अशिक्षा का बहुत-कुछ प्रतिकार कर सकता है।

❀ ❀ ❀

क्षुद्र हृदयता

कितनी ही बार सरकारी अधिकारी राजनीतिक विषयों में ऐसी सङ्कीर्णता का परिचय देते हैं कि उसका कारण उनकी क्षुद्र हृदयता के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता। इसका एक ताज़ा उदाहरण पञ्जाब से प्राप्त हुआ है। लाहौर के म्युनिसिपल बोर्ड ने स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू का तैल-चित्र ख़रीद कर म्युनिसिपल-हॉल में लटकाने का निश्चय किया था। लाहौर डिवीज़न के कमिश्नर ने बोर्ड को इसके लिए अनुमति देना अस्वीकार कर दिया। कमिश्नर के इस कार्य का इसके सिवाय क्या कारण हो सकता है कि वह भारतीय देशभक्तों का सम्मान होता देख नहीं सकता। पण्डित जी अगर कोई षड्यन्त्रकारी या गुप्त हत्या आदि के दोषी होते, तो समझा जा सकता था कि सरकार इस प्रकार के भावों को उत्तेजना नहीं मिलने देना चाहती और इसलिए उनके चित्र का इस प्रकार लटकाया जाना बुरा समझती है। पर पण्डित जी एक सुप्रसिद्ध नागरिक तथा देश-विख्यात वकील थे और उन्होंने सर्वथा वैध उपायों से देश-सेवा की थी। देश के लिए उन्होंने जो अनुपम आर्थिक त्याग किया था, उसे भी प्रत्येक भारतीय श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। इनमें से कोई बात ऐसी नहीं है, जिसका अनुकरण करना ग़ैर-क़ानूनी अथवा निन्दनीय कहा जा सके। अगर कमिश्नर ने सार्वजनिक धन को इस प्रकार के कामों में न खोने के उद्देश्य से ऐसी आज्ञा दी है तो यह भी कोरा बहाना है। अगर बोर्ड किसी बड़े अङ्गरेज़ हाकिम या गवर्नर अथवा वॉयसरॉय का चित्र लटकाने का प्रस्ताव करता, तो क्या कमिश्नर साहब उसे इस प्रकार अस्वीकार कर सकते थे?

❀ ❀ ❀

अन्धा पक्षपात

अङ्गरेज़ी अधिकारियों और अङ्गरेज़ी समाचार-पत्रों ने इस समय मुसलमानों का पक्षपात करने पर कमर कस ली है और इसमें वे उचित-अनुचित का ज्ञान रखना भी छोड़ रहे हैं। हाल में कलकत्ता यूनीवर्सिटी में 'इण्डियन फ़ाइन आर्ट' के प्रोफ़ेसर का पद ख़ाली हुआ था, जिसके लिए श्री० शाहिद सुहरावर्दी को, जो यूनीवर्सिटी के वर्तमान वाइस चान्सलर के भतीजे हैं, मनोनीत किया गया है। समाचार-पत्रों में इस विषय में जो लिखा-पढ़ी हुई है, उससे पता चलता है कि मि० सुहरावर्दी को केवल यूरोपियन चित्रकला के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान है, पर भारतीय चित्रकला का अध्ययन उन्होंने कभी नहीं किया। इस पद के लिए अन्य कितने ही उम्मेदवार ऐसे थे, जो इस विषय का पूर्ण ज्ञान रखते हैं और इस पद का कार्य-सञ्चालन कहीं अधिक योग्यता से कर सकते थे। पर साम्प्रदायिक बँटवारे का ख़याल करके उन सबकी उपेक्षा की गई और मि० शाहिद सुहरावर्दी सफल हो गए। इस चुनाव का समर्थन करते हुए 'स्टेट्समैन' ने लिखा है कि अगर सरकारी नौकरियों में विभिन्न सम्प्रदाय वालों को समान रूप से अवसर दिया जाय तो इसमें कुछ अनुचित नहीं है। यदि 'स्टेट्समैन' इस बात को साधारण क्लर्की या फ़ौज और पुलिस की नौकरियों के सम्बन्ध में लिखता, तो यह किसी दृष्टि से ठीक मानी जा सकती थी। पर एक उच्च कोटि की ललित कला की प्रोफ़ेसरी के सम्बन्ध में इस नीति से काम लेना मूर्खतापूर्ण और हानिकारक है। ऐसे पदों पर तो सबसे अधिक योग्य और अनुभवी व्यक्ति को नियत करने से ही विद्यार्थियों और देश का हित-साधन हो सकता है। पर पक्षपात मनुष्य को अन्धा कर देता है और उस दशा

में वह उचित-अनुचित का निर्णय कर सकने में असमर्थ हो जाता है।

❀ ❀ ❀

भारत में बेकारी

कितने ही समय से भारत में बेकारी की समस्या भीषण रूप से बढ़ती जाती है। वैसे तो उद्योग-धन्धों की कमी से यहाँ का शिक्षित-समाज सदैव ही बेकारी का रोना रोया करता है और एक साधारण नौकरी के लिए सैकड़ों नहीं, हज़ारों उम्मेदवार टूट पड़ते हैं, पर गत तीन-चार वर्ष से संसार-व्यापी आर्थिक सङ्कट और सरकार के ख़र्चे घटाने की स्कीम के फल से इसने और भी भयङ्कर रूप धारण कर लिया है। अब नए लोगों को कार्य मिलना तो दूर रहा, पुराने लोगों की नौकरियाँ भी छूटती जाती हैं। लोगों की आमदनी घट जाने से दुकानदारी आदि से गुज़ारा कर सकना भी कठिन हो रहा है। रह गई खेती, उसकी दुर्दशा का तो पूछना ही क्या। भारत के ग़रीब किसान सदा ही आधा पेट रहते थे, अब उनके लिए अपना सर्वस्व बेच कर लगान चुकाना और बाद में धीरे-धीरे घुल कर मर जाना, यही एक रास्ता रह गया है। यद्यपि भारत-सरकार अन्य देशों की गवर्नमेण्टों की तरह प्रति सप्ताह या प्रति मास बेकारों की संख्या प्रकाशित नहीं करती, न वह उनकी गिनती करना आवश्यक समझती है, पर अनुमानतः उनकी तादाद चार-पाँच करोड़ से कम न होगी, यह संख्या यूरोप और अमेरिका के बेकारों की सम्मिलित संख्या से कम से कम दुगनी अवश्य है। यद्यपि सार्वजनिक नेताओं को देश की इस दुरवस्था का ज्ञान है और समाचार-पत्र भी इस पर प्रकाश डालते रहते हैं, पर यह एक ऐसा विषय है, जिसके प्रतिकार का उपाय देश की शासन-कर्त्री सरकार के सिवा और कोई नहीं कर सकता। क्योंकि इस दुरवस्था का मुख्य कारण उद्योग-धन्धों का अभाव होता है और इस विषय में तब तक उन्नति की आशा नहीं की जा सकती, जब तक सरकार सर्व-साधारण को इसके लिए प्रोत्साहित न करे और विभिन्न रूप से सहायता न दे। क्योंकि प्रथम तो अधिकांश लोगों के पास नए कारबारों के लिए काफ़ी पूँजी ही नहीं होती और यदि पूँजी का प्रबन्ध कर भी लिया जाय, तो यह आशा करना कि वे एकाएक सैकड़ों वर्षों से जड़ जमाए हुए विदेशी व्यवसाइयों का मुक़ाबला करके लाभान्वित हो सकेंगे, निरर्थक है। इसलिए जिन देशों की सरकारें राष्ट्रीय हैं, वहाँ पर जनता को शिल्प-कला और कारीगरी की शिक्षा देने के लिए बड़े-बड़े स्कूल और कॉलेज खोले जाते हैं। नए कारबार जारी करने को लोगों को आर्थिक सहायता दी जाती है, देश के लिए विशेष रूप से लाभजनक और आवश्यकीय कारबार करने वालों को इस बात की गारण्टी कर दी जाती है कि तुमको इतना नफ़ा अवश्य होगा और यदि उसमें कमी पड़ेगी तो उसे सरकार पूरा करेगी। इसके सिवा जब सरकार देखती है कि कोई कारबार विदेशी व्यवसाइयों की प्रतियोगिता के कारण पनप नहीं पाता, तो वह बाहरी माल पर अतिरिक्त कर लगा कर उसकी रक्षा करती है। यद्यपि भारत-सरकार जनता के बहुत-कुछ पुकार मचाने और कॉङ्ग्रेस आदि संस्थाओं के वर्षों तक आन्दोलन करने के फल से कुछ वर्षों से इन कामों को किसी अंश में करने लगी है, पर देश की विशालता और जनता की दुर्दशा को देखते हुए सरकारी उद्योग-विभाग एक प्रकार का खिलौना है। रूस, टर्की, चीन आदि भारतवर्ष की तरह ही उद्योग-धन्धों में पिछड़े हुए थे, पर जनता का शासन क़ायम होते ही उनकी काया-पलट हो गई और केवल आठ-दस वर्षों में वे इतनी उन्नति कर सके हैं, जितनी भारत ने अङ्गरेज़ों की अधीनता में डेढ़ सौ वर्षों से अधिक रह कर भी नहीं कर पाई है।

❀ ❀ ❀

अस्पृश्यता और जाति-भेद

महात्मा गाँधी ने हाल में अभय आश्रम (कुमिल्ला, बङ्गाल) के कार्यकर्ता डॉक्टर सुरेशचन्द्र को एक पत्र में लिखा है कि "अस्पृश्यता एक घोर पापपूर्ण विचार है, जिसका फल मनुष्य की आत्मा को अपमान द्वारा निर्जीव बना देना है ; और जाति-भेद एक सामाजिक व्याधि है।" महात्मा जी का उद्‌गार बड़ा महत्वपूर्ण है और इसमें गूढ़ अर्थ निहित है। आजकल कितने ही लोग अस्पृश्यता दूर करने का अर्थ जाति-भेद

को मिटा देना समझते हैं, और इसी आधार पर कितने ही कूपमण्डूक श्रेणी के लोग सर्वसाधारण को भड़काते हैं कि म० गाँधी और अन्य सुधारक जात-पाँत को नष्ट करके ब्राह्मण, वैश्य, चमार, मेहतर आदि सब जातियों को एक कर देना और उनमें पारस्परिक खान-पान और शादी-विवाह का प्रचार करना चाहते हैं। शायद इसीलिए म० गाँधी ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि अस्पृश्यता और जाति-भेद पृथक्-पृथक् चीज़ें हैं। यद्यपि जाति-भेद भी कोई प्रशंसनीय गुण नहीं है और उसके कारण हिन्दू-समाज छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट कर निर्बल बन गया है तथा विवाह और खानपान के सम्बन्ध में घोर असुविधा भोग रहा है, पर इस दोष की तुलना अस्पृश्यता से नहीं की जा सकती। अस्पृश्यता तो ऐसा पाप है; जिसको एक दिन स्थिर रखना भी लज्जाजनक है। पर जाति-भेद प्राचीन वर्णाश्रम-धर्म का विकृत रूप है और उसका सुधार एक दिन में नहीं किया जा सकता। हिन्दू-समाज वर्तमान जाति-भेद की हानियों को समझने लग गया है और पिछले दस-बीस वर्षों से इसमें कुछ परिवर्तन भी होने लगा है। कितनी ही जातियों की महासभाएँ अपने अन्तर्गत विभिन्न उप-जातियों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा कर रही हैं। कुछ ही वर्षों में ऐसा समय आवेगा, जब कि इस कुप्रथा का स्वयमेव अन्त हो जायगा। पर अस्पृश्यता का कारण धार्मिक अहङ्कार और स्वार्थ-बुद्धि है और उसका निवारण बिना प्राणपण से चेष्टा किए नहीं हो सकता।

❀　❀　❀

'चाँद' का नवीन वर्ष

इस अङ्क के साथ 'चाँद' का ग्यारहवाँ वर्ष आरम्भ हो रहा है। यों तो 'चाँद' को अपने जीवन के आरम्भ ही से अनेक विघ्न-बाधाओं का मुक़ाबला करना पड़ा है, पर इसका गत वर्ष जैसी कठिनाइयों में बीता है, वैसी कठिनाइयों का अनुभव अब तक नहीं हुआ था। यह समय व्यवसाय के लिए कितना भयङ्कर था और सब प्रकार के कारबारों की आर्थिक दशा कैसी सङ्कटपूर्ण हो गई थी, इसे तो सभी भुक्तभोगी और साधारण लोग भी भली प्रकार जानते हैं। 'चाँद' कार्यालय को भी इस अवसर पर करारा धक्का लगा और कितने ही महीने घोर आर्थिक कठिनाइयों में व्यतीत हुए। चारों तरफ़ से रुपए की तङ्गी होने के कारण इसको भी अपना कार्य-क्षेत्र सङ्कुचित करना पड़ा। आर्थिक हलचल के साथ ही इसके सञ्चालक को सरकारी अधिकारियों की कोप-दृष्टि का भी शिकार होना पड़ा और एक के बाद दूसरा मुक़दमा पीछे लगा रहा, जिसमें बहुत-कुछ रुपया और शक्ति का नाश हुआ तथा बेहद परेशानी उठानी पड़ी। सच पूछा जाय तो यह समय 'चाँद' ही क्या, सभी स्वतन्त्र विचार के पत्रों के लिए आपत्तिकाल है, और इसमें जो जीवित रह सके उसका परम सौभाग्य है। देश की राजनीतिक परिस्थिति दिन पर दिन गम्भीर होती जाती है, उसका प्रभाव व्यवसाय-वाणिज्य के लिए भी घातक सिद्ध हो रहा है, सरकारी दमन उग्ररूप धारण करता जा रहा है, ऐसी दशा में पत्रों की उन्नति की बात तो दूर, उनका अस्तित्व ही ख़तरे में समझना चाहिए। तो भी 'चाँद' यथासाध्य इन तमाम कठिनाइयों को पार करके अपने कर्तव्य-पालन में दत्तचित्त है। वह अपनी पूरी शक्ति लगा कर यह चेष्टा कर रहा है कि उसका 'स्टैण्डर्ड' किसी दृष्टि से घटने न पावे, और वह अपने प्रेमियों की उससे बढ़ कर सेवा करे, जितनी अब तक करता आया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इसके सञ्चालक ने अपार स्वार्थ-त्याग करके उसे सार्वजनिक कम्पनी का रूप दे दिया है, जिसकी योजना के सफल होने पर 'चाँद' में अपूर्व उन्नति दिखलाई देगी और इस संस्था का कार्यक्षेत्र पहले से कहीं अधिक विस्तृत हो जायगा। 'चाँद' को और भी श्रेष्ठ बनाने की चेष्टा अभी से की जा रही है, जिसका अनुभव पाठकगण नवीन वर्ष के इस प्रथम अङ्क से ही भली प्रकार कर सकेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि 'चाँद' के प्रेमी पाठक जिस प्रकार अब तक इस पर कृपा-दृष्टि रखते आए हैं, उसी प्रकार भविष्य में भी इसकी सहायता करते रहेंगे।

(एक क्रान्तिकारी महिला की आत्म-कथा)

तीन सुन्दर चित्रों से सुशोभित, मूल्य १॥)

देवी वीरा

भूमिका-लेखक—
श्री० बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

प्रसिद्ध अङ्गरेज़ी-पत्र 'बॉम्बे क्रॉनिकल' लिखता है—

"Vera Figner is regarded as one of the most well-known of the Russian revolutionaries of the time of the Czars. Her Hindi biography will be read with interest."

'भविष्य' में पण्डित वेङ्कटेशनारायण तिवारी एम० ए० लिखते हैं—"विषय जितना चित्ताकर्षक है, उतनी ही सजीव और मनोहर भाषा में श्री० सुरेन्द्र शर्मा जी ने 'देवी वीरा' के नाम से हिन्दी पुस्तक लिखी है। पुस्तक सुन्दर है और समयोपयोगी भी है।"

'विशाल भारत' लिखता है—"××× देवी वीरा का आत्म-चरित क्या है, एक अत्यन्त मनोरञ्जक उपन्यास है, क्रान्तिकारियों की मानसिक दशा का अध्ययन करने के लिए मनोविज्ञान की पुस्तक है, रूस के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है और देशभक्तों के बलिदान का एक हृदय-बेधक नाटक है। ××× महाप्राण वीरा का आत्म-चरित अत्यन्त पठनीय और तुरन्त संग्रहणीय है।"

वीरा फ़िगनर

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर श्री० रामकुमार वर्मा, एम० ए० लिखते हैं—"पुस्तक पढ़ते समय मुझे उसमें मौलिकता का स्वाद मिला। लेखक ने बड़ी सरल और मनोरञ्जक भाषा में अपने विषय का प्रतिपादन किया है। परिच्छेद छोटे-छोटे हैं और उनमें मुझे मैकाले की शैली के समान प्रवाह और भाव-विन्यास मिला।"

प्रोफ़ेसर जयचन्द्र विद्यालङ्कार लिखते हैं—"देवी वीरा को आद्योपान्त पढ़ने के बाद मुझे ऐसा अनुभव हुआ, मानो मेरा मन और मस्तिष्क गङ्गा-स्नान करके पवित्र हो गया है।"

'प्रताप' लिखता है—"भाषा और शैली की रोचकता से प्रस्तुत पुस्तक में उपन्यास का सा आनन्द आता है। प्रत्येक देशभक्त को इस पुस्तक का कम से कम एक बार पारायण कर लेना चाहिए।"

चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

PIONEER

Monaay, August 8, 1932

Of these eleven Hindi short stories some have appeared in the CHAND while others are published for the first time in this collection. Dr. Prem is one of the few young Hindi short story writers who really know how to tell a story. His characters seem to be real and the reader has sympathy with them. *Dora* and *Dora ka Rumal* are very good.

लन्दन-प्रवासी जिन डॉक्टर धनीराम प्रेम की कहानियों को पढ़ने के लिए 'चाँद' के पाठक उत्सुक रहते हैं, जिनकी पहली ही कहानी 'डोरा' ने कहानी-संसार में हलचल मचा दी थी, वल्लरी उन्हीं की ग्यारह सरस सुन्दर कहानियों का संग्रह है। इसकी 'डोरा' कहानी में जहाँ आप करुणा की आहत सिसकियों से तड़प उठेंगे, 'कहानी-लेखक' में हास्य और कौतूहल का सामञ्जस्य देख कर अवाक् रह जायँगे, वहीं 'वेश्या का हृदय' और 'वह मुसकान' में अन्तर के घात-प्रतिघातों का चित्र देख कर आपको स्तम्भित रह जाना पड़ेगा। इन कहानियों के प्रत्येक शब्द में ज़ोर है, भाषा में प्रवाह है, और है आदि से अन्त तक एक भावुक हृदय की कलित कल्पना का मनोहर चित्र। 'चाँद' और 'भविष्य' में छपी हुई कई कहानियों के अतिरिक्त इसमें 'वह मुसकान', 'गीत' और 'डोरा का रूमाल' आदि कई नई कहानियाँ भी हैं। जिन्होंने डोरा नाम की कहानी पढ़ी है, वे यह जानने के लिए उत्सुक होंगे कि 'डोरा के रूमाल' का क्या हुआ। यह बात पाठकों को 'डोरा का रूमाल' कहानी पढ़ने पर ही मालूम होगी और यह कहानी इसी पुस्तक में पढ़ने को मिल सकेगी।

प्रचार की दृष्टि से मूल्य लागत मात्र २।।) रु०; स्थायी ग्राहकों से १।।।=)

चाँद प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद

नीच

यह नाटक भारतीय समाज के जीवन-संग्राम का जीता-जागता करुण चित्र है। पाप के प्राङ्गण में सत्य का क्रन्दन मालती के हृदय से निकल कर जान पड़ता है इस नाटक-रूप में आया है। हिन्दू संस्कृति के स्तम्भ, वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने वाले संन्यासी के अधरों से एक प्रेम का मधुर गान निकल कर इस नाटक के वायु-मण्डल में एक विचित्र प्रकार की मस्ती, सुषमा, श्री, देवत्व का प्रभाव डाले हुए है। यह नाटक प्रकृति, सत्य तथा मानव-हृदय के विकारों के युद्ध की छाया है। यौवन के उन्माद से उन्मत्त समाज-सेवक अन्त में परिपाटी के चक्र में पड़ कर अपना सत्यानाश करके समाज के सामने उन अगणित युवकों का चरित्र दिखाता है, जो सेवा करना चाहते हैं, किन्तु नहीं कर सकते और एक मानसिक मृत्यु के शिकार होते हैं।

मू० १); स्थायी ग्राहकों से ।।।)

निम्न-लिखित नए ग्राहकों का चन्दा सितम्बर तथा अक्टूबर माह में प्राप्त हुआ है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे अवश्य लिखा करें। बिना ग्राहक-नम्बर के पत्रों की उचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१२०५	श्रीयुत लालसिंह धीमान, अलमोड़ा	६)
३१२०७	„ जनार्दनसिंह अमीन, पो० ओरन	६॥)
३१२०८	मिस्री बाँकेराम पो० नवाबशाह	„
३१२०९	श्रीमती आद्यावतीदेवी, भागलपुर	„
३१२११	मास्टर एस० आर० हाडबाग, जबलपुर	„
३१२१२	लाला छगनलाल रकजाम, दिल्ली	„
३१२१३	श्रीयुत श्यामसुन्दरलाल, पो०	
	लालगञ्ज (रायबरेली)	„
३१२१४	हेड मास्टर, एस० एस० एच० ई०	
	स्कूल, जगदीशपुर (शाहाबाद)	„
३१२१५	श्रीयुत महाबीरप्रसाद सिंह, दरभङ्गा	„
३१२१६	श्रीमती जानकीदेवी Yenangyaung	
	बाज़ार (बर्मा) ...	„
३१२१९	श्रीयुत सरजूप्रसाद, जहानाबाद (गया)	„
३१२२०	ठाकुर सुरेन्द्रसिंह बी० ए०, रावलपिण्डी	„
३१२२१	बाबू रणजीतलाल जी, उदयपुर स्टेट	„
३१२२२	महम्मद महमूद ख़ाँ कदवी, रायपुर	३॥)
३१२२३	मेसर्स स्वामीदयाल गुरुप्रसाद, उन्नाव	„
३१२२४	श्रीयुत एस० यू० ख़ाँ, साँभर लेक	„
३१२२५	सेक्रेटरी श्रीमारवाड़ी पुस्तकालय,	
	कानपुर	६॥)
३१२२७	श्रीयुत मेवालाल गुप्त, रङ्गून ...	„
३१२२८	हेड मिस्ट्रेस, गर्ल्स हाई स्कूल, जम्मू	„
३१२२९	मिसेज़ श्यामनन्दन सहाय, पटना	„

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१२३०	श्रीयुत प्रयागलाल दास, पो० गोरीफा	६॥)
३१२३१	श्रीयुत अयोध्याप्रसाद, कानपुर ...	„
३१२३२	श्रीयुत शिवपूजनप्रसाद गुप्त, पो०	
	गड़हनी (शाहाबाद) ...	„
३१२३३	कुमारी कृष्ण शिवराज, शाहपुर सदर	„
३१२३४	ठाकुर रामनरेशप्रसाद सिंह, पुर्निया	„
३१२३५	ठाकुर हरीप्रसादसिंह, जि० सुलतानपुर	„
३१२३६	श्रीयुत गोपीनाथ सहाय, हज़ारीबाग़	३॥)
३१२३७	श्रीयुत महेन्द्रनारायण सिनहा	
	(भागलपुर) दक्षिण	„
३१२४०	श्री० डी० वी० गुप्त (मेरठ) ...	„
३१२४१	श्री० नन्दकिशोर मुनीम, बरेली ...	६॥)
३१२४१ए	डॉक्टर लाभसिंह, श्वेबो, बर्मा ...	„
३१२४४	श्रीयुत विश्वनाथ शरण, (फ़तेहगढ़)	६॥)
३१२४५	श्रीयुत शिवनारायण अग्निहोत्री	
	सागर, सी० पी०	„
३१२४६	श्रीयुत हरिदास अग्रवाल, आज़मगढ़ ..	३॥)
३१२४७	श्रीयुत आर० पी० सिंह (जौनपुर) ..	„
३१२४८	सेक्रेटरी, युवक पुस्तकालय, मारवाड़	३॥)
३१२५०	श्रीयुत हरशङ्कर पाठक, इटावा ...	३)
३१२५१	म्युनिसिपल रीडिङ्ग रूम, ज्वालापुर ...	५)
३१२५२	श्री० वी० कृष्ण भट्ट, साउथ कनारा	३॥)
३१२५३	श्रीयुत कुन्दनमल सेठिया, पो०	
	फारबेसगञ्ज	„
३१२५४	श्रीयुत मथुराप्रसाद, झाँसी ...	६॥)
३१२५५	श्रीयुत बाबूसिंह, मुज़फ़्फ़रनगर ...	„
३१२५६	श्रीयुत शोभाराम, जबलपुर ...	„
३१२५७	पण्डित मदनलाल पुरोहित, लुधियाना	„
३१२५८	आर० बी० जगन्नाथप्रसाद, बिलासपुर	„
३१२५९	श्रीयुत द्वारकादास, अमृतसर ...	„

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१२६५	श्रीयुत रामभरोसेसिंह, नागपुर ...	६॥)
३१२६६	श्रीयुत मङ्गीलाल, नसीराबाद ...	,,
३१२६७	डॉक्टर बी० एस० राज, हैदराबाद ...	,,
३१२६८	श्रीयुत रामचन्द्र शर्मा, केन्या कलोनी	४॥=)
३१२६९	श्रीयुत शिवधारीसिंह, दिल्ली ...	६॥)
३१२७०	श्रीमती राधेदेवी, चिन्दवीन (बर्मा)	,,
३१२७१	श्रीयुत वी० के० लोहिया (बर्दवान)	३॥)
३१२७२	मेसर्स भोलानाथ भुलावचन्द, आगरा	६॥)
३१२७३	श्रीयुत ख्यालीराम शर्मा, सिंहभूमि	,,
३१२७४	कुँवर शेरसिंह, मैनपुरी ...	,,
३१२७५	मेसर्स चन्देल एण्ड कं०, धार, सी० आई०	,,
३१२७६	श्री० उमादत्त आर्य, सुलतानपुर सिटी	३॥)
३१२७७	सेक्रेटरी आर्य-समाज, इटावा ...	५)
३१२७८	मेसर्स लक्ष्मीनारायण ऋषभदेव, कलकत्ता	३॥)
३१२७९	श्रीयुत जगदीश शरणलाल, मुज़फ़्फ़रपुर	३॥)
३१२८०	डॉक्टर सी० एल० गुप्त (बिलासपुर)	६॥)
३१२८३	श्रीयुत नागेश एन देशपाँडे, घाटनजी	,,
३१२८४	बाबू पूर्णसिंह (बुलन्दशहर) ...	३॥)
३१२८५	सेठ सूरजप्रसाद (रायबरेली) ...	६॥)
३१२८६	श्रीयुत भूरामल (फ़रीदपुर) ...	,,
३१२८७	मेसर्स हीरालाल बद्रीदास, कटक ...	,,
३१२८८	मेसर्स शिवप्रसाद विधातादीन, रायबरेली	३॥)
३१२८९	मेसर्स देवचन्द खेमचन्द शाह, केन्या कलोनी	८॥)
३१२९०	ऑनरेरी जनरल सेक्रेटरी, केन्या एण्ड उगण्डा रेलवे इनस्टिच्यूट, नैरोबी	१७)
३१२९१	कुमारी चन्द्रकली देवी, कानपुर ...	६॥)
३१२९२	कप्तान के० अरीलाल नसीराबाद (राजपूताना)	,,
३१२९३	ऑनरेरी सेक्रेटरी, इण्डियन रेलवे इन्स्टिच्यूट, गङ्गापुर सिटी ...	,,
३१२९४	श्रीयुत बम बहादुर, पो० जोगबनी	,,
३१२९५	बाबू गोपालसिंह मेहता, उदयपुर	,,
३१२९६	मिस्टर प्रभाशङ्कर शर्मा, स्टेशन भवानी मण्डी	३॥)
३१२९७	श्री० एम० पी० त्यागी मीनमल ...	५)
३१२९८	श्रीयुत बैजनाथ पाँडे (डिब्रूगढ़) ...	३॥)
३१२९९	डिप्टी मैजिस्ट्रेट, केकरी ...	६॥)
३१३००	श्रीमती सुशीला देवी आगरा ...	,,
३१३०१	श्रीयुत अञ्जनीप्रसाद पाँडे, देहरादून	,,
३१३०२	श्रीयुत केवलचन्द (बीकानेर) ...	३।)
३१३०३	स्टेशन मास्टर, जोधपुर रेलवे, मेरटा रोड	६॥)
३१३०४	श्रीयुत लाजपत राय, लाहौर ...	६॥)
३१३०५	श्रीयुत माधोराम शर्मा (करनाल)	५)
३१३०६	श्री० पी० सी० नाहर, कलकत्ता ...	६॥)
३१३१६	श्रीमती मानकुमारी चोरडिया, हैदराबाद	,,
३१३२८	श्रीमती शान्तिदेवी, छिन्दवाड़ा ...	,,
३१३२९	श्री० आर० एम० खाण्डेरकर बम्बई नं० २२	,,
३१३३०	श्रीयुत रत्नपालसिंह, पेशावर ...	,,
३१३३१	मिस्टर वी० पी० श्रीवास्तव, लखनऊ	,,
३१३३२	श्री० जे० एन० खन्ना, बरेली ...	,,
३१३३३	सरदार अमरसिंह, गोरखपुर ...	३॥)
३१३३४	श्रीयुत राधाराम मुनीम, आरा ...	,,
३१३३५	श्रीयुत तुलयप्रसाद श्रीवास्तव, हैदराबाद	,,
३१३३६	मैनेजर, करनाटिक न्यूज़ एजेन्सी, मैसूर	३)
३१३३९	श्रीयुत के० वी० वर्मा, भण्डारा ...	६॥)
३१३४१	श्रीमती श्यामलतादेवी, जयपुर सिटी	६॥)
३१३४३	श्रीयुत हुकमचन्द जोशी, इटावा ...	३॥)
३१३४४	श्रीमती जगतीसुरी, मथुरा ...	६॥)
३१३४६	श्री० वी० ओ० जैन, ज्ञानवर्धक मण्डल, नैरोबी	८॥)
३१३४७	श्रीमती सुशीलाकुमारी, ब्यावरा ...	६॥)
३१३४८	श्रीयुत सुखलाल फोंन्दीलाल वर्मा भरतपुर स्टेट	६॥)
३१३४९	श्रीयुत दौलतराम, सुनेल ...	६॥)
३१३५०	श्री० एस० डी० भट्ट, भीलवाड़ा ...	६॥)
३१३५१	श्रीयुत वी० एस० चौधरी, मेरठ ...	६॥)
३१३५१	ठाकुर नरेन्द्रबहादुरसिंह, रायबरेली	६॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१३५३	मेसर्स साधुराम भेरामल, मेरठ ...	६॥)
३१३५४	पण्डित रामकृष्ण शर्मा, पो० ब्योहारी (रीवा स्टेट) ...	६॥)
३१३५५	श्री० प्रकाशदेव मेहता, अबोटाबाद ..	६॥)
३१३५६	पं० राजकुमार मिश्र, मैनपुरी ...	६॥)
३१३५७	डॉक्टर अब्दुल अज़ीज़ सबलगढ़ (ग्वालियर स्टेट) ...	६॥)
३१३५८	श्रीयुत जे० एच० भण्डारी, ३०१ कालबादेवी, बम्बई नं० २ ...	६॥)
३१३५९	सेठ भगवानदास गुप्त, बाँदा ...	६॥)
३१३६०	ठाकुर गणेशसिंह सेक्रेटरी, हैदराबाद (दक्षिण)	६॥)
३१३६१	श्रीमती पो० कमलाबाई, मङ्गलोर ..	६॥)
३१३६२	बाबू हरप्रसाद भार्गव, बुलन्दशहर	६॥)
३१३६३	श्रीयुत मरोतसिंह पटवाल, बालाघाट	३॥)

श्रीमती श्यामादेवी जी के दान का अनुकरण कर श्री० एस० पी० एस० ने, जोकि बागलकोट ज़िला बीजापुर के रहने वाले हैं, १००) भेजे थे। इन रुपयों से १९ बहिनों तथा एक संस्था को एक-एक साल के लिए 'चाँद' मुफ़्त दिया गया है। अभी हमारे यहाँ क़रीब ५,००० आवेदन-पत्र पड़े हैं, जिनको 'चाँद' नहीं दिया जा सका ; क्योंकि दान सिर्फ़ २० ही बहिनों के लिए था। हम देश के धनी तथा दानी सज्जनों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर, प्रार्थना करते हैं कि इन बहिनों की ज्ञान-पिपासा को सन्तुष्ट करने के लिए श्रीमती श्यामादेवी जी तथा एस० पी० एस० का पदानुसरण करें और विद्या-दान के पुण्य के भागी बनें। जिन बीस बहिनों तथा संस्था को 'चाँद' श्री० एस० पी० एस० के दान से एक वर्ष के लिए जारी किया गया है, उनके नाम ग्राहक नं० सहित नीचे दिए जा रहे हैं।

३११०७ ऑनरेरी सेक्रेटरी, बाणी मन्दिर, मुट्ठीगञ्ज, इलाहाबाद।

३१३०८ श्रीमती रामेश्वरी देवी, मु०-पोस्ट राजनगर, दरभङ्गा।

३१३०९ श्री० विद्यादेवी शर्मा, मु० उहाना, पोस्ट गुलावठी (बुलन्दशहर)।

३१३१० श्रीमती सावित्रीदेवी, मु० कटरा, पोस्ट हाजीपुर (मुज़फ़्फ़रपुर)।

३१३११ श्रीमती मोतीबेन हीरभाई, पोस्ट पालनपुर (गुजरात)।

३१३१२ श्रीमती ईठाबाई माहेसदे, १२२३ अन्ड्रीसन रोड, महू सी० आई०।

३१३१३ श्रीमती रामीबाई, मु० पोस्ट कङ्करोली, (मेवाड़)।

३१३१४ श्रीमती रामदुलारी, मु० सहावा, (बिजनौर)

३१३१५ श्रीमती गङ्गादेवी, हिन्दी-रत्न, मु० पोस्ट मरथल, जि० रोहतक।

३१३१७ श्रीमती शक्तिदेवी, श्रीमद्दयानन्द अनाथालय, अजमेर।

३१३१८ श्रीमती सुशीला देवी, बिचला बाज़ार, भिवानी।

३१३१९ श्रीमती शान्ति देवी, सीतला गली, आगरा

३१३२० श्रीमती शान्तिदेवी 'विमलेश' मु० पोस्ट राजगिर (पटना)।

३१३२१ श्रीमती भीषम देवी, मु० गनपत बीघा, पोस्ट हिलसा, (पटना)।

३१३२२ श्रीमती कृष्णकुमारी; मु० तिवारी जी, फ़र्रुख़ाबाद।

३१३२३ श्री० मेदाबाई गुबरहारी, मु० तुनेहता, पोस्ट बरखेरी (होशङ्गाबाद)।

३१३२४ श्रीमती यशोदा देवी, बजाजा गली, सहादतगञ्ज, लखनऊ।

३१३२५ श्रीमती कमलेश्वरी देवी, मु० बेहटा, पोस्ट बेनीपट्टी (दरभङ्गा)।

३१३२६ श्रीमती गोदावरी देवी, मु० पछार, पोस्ट धरमधर, (अलमोड़ा)।

३१३२७ श्रीमती गोमती बाई, हाथीथान, बीकानेर।

सितम्बर तथा अक्टूबर मास में हमें निम्नलिखित पुराने ग्राहक नम्बर के ग्राहकों के रुपए मिले हैं।

ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म
२९३२५	६॥)	२६५४२	६॥)
२९२३१	"	२००१८	"
१९७१६	"	१४५७८	"

ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म
२००९३	६।।)	१९६३१	६।।)	२९३३८	६।।)	२९३३५	६।।)
३५७०	"	२०३१८	"	२९३२३	"	२९३०६	"
१९७३६	"	२०२८५	"	२६७२४	"	२६६५०	"
१०६५७	"	१३१११	"	२०४९९	"	२०४४६	"
१४४९५	"	३०४४२	"	२०३५५	"	२०३५४	"
२६७२०	"	१९९२७	"	२०२८८	"	२०२३०	"
१९८६२	"	१९७८१	"	२१०२०	"	१९३३७	"
२९४६९	"	१९५६७	"	७८१२	"	३७१३	"
२७३३	"	१०७३९	"	२७४३	"	३०२०६	"
१२०१८	"	१४६२३	"	२८०५५	"	२८०२३	"
१३०८८	"	४३६८	"	२९३४३	"	२९२२६	"
२७४९	"	४४९०	"	२९३०८	"	२९३०१	"
२९४८१	"	३०३९७	"	२९३०९	"	२९२३६	"
२९२४२	"	२९२४६	"	२९२२४	"	२९३१५	"
२९३१६	"	२९३३१	"	२९३१४	"	२९३३३	"
२९२५५	"	२९२९३	"	२९३४६	"	२९३४७	"
२९३०५	"	२९४६०	"	२९१५५	"	२९४६७	"
२९३८५	"	२०१६३	"	२९३९१	"	२९४६८	"
२०२१४	"	२०२२१	"	२९४७८	"	२९४४३	"
२०२४२	"	२०३९७	"	२९५५८	"	२५१४४	"
२०४८६	"	२१०७४	"	१०६४२	"	२०५००	"
२०३२४	"	२६७६०	"	२१०८०	"	२१९०८	"
२६६७३	"	२००८१	"	२०२९५	"	२०२६९	"
१७३३२	"	१०३८१	"	२०३३७	"	२०२९२	"
६९४१	"	६८६०	"	२०३९८	"	२००६१	"
६८५७	"	४४२१	"	१९९६६	"	१९३९१	"
४३३०	"	३१०७	"	१९९१८	"	१९९३४	"
२७१४	"	७०१	"	१९९६५	"	१९९६२	"
१०६८५	"	१४६७७	"	१९९३७	"	१९८६९	"
१४७८५	"	१४७९०	"	१९९५५	"	१९९६३	"
१४८२२	"	१४८८६	"	२५८१३	"	२६८४३	"
१९८७५	"	१९९१३	"	२६६७०	"	२६६७५	"
१९९५२	"	१९९०१	"	२६७२२	"	२६७०३	"
२००१६	"	१९९३५	"	२६७३५	"	१४६०८	"
३०२८७	"	१९९२४	"	१४८६४	"	१४९३७	"
२९४५७	"	२९४३७	"	१४९३०	"	१४६८०	"
२९३७६	"	२९३४४	"	१४७१४	"	१४६८६	"

ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म
६८६६	६॥)	६८५८	६॥)
६८२१	"	६८००	"
४४१३	"	४४३१	"
८१८९	"	२२१३०	"
२६६५८	"	१९४७५	"
२९४१४	"	२९३४२	"
२०४४२	"	२०३३८	"
२०१८७	"	४३७१	"
१४६०५	"	७३४४	"
६८२७	"	६७४	"
१३२४५	"	१३१९९	"
७६६६	"	५०३३	"
२१३१२	५)	१६२३	"
५६४७	६॥)	१०४४६	"
१९८८९	"	१४९७२	"
२९४६२	"	२९२७३	"
२९१८६	"	२०१८०	"
१४६९९	"	२९५५१	"
६६३६	"	२९६७४	"
२०१८४	"	९९८५	"
४३२८	"	३०३१६	"
२९४१२	"	२९२८६	"
२०४३४	"	३०४९७	"
२०३९०	"	१०७४१	"
१०७३६	"	१४६१६	"
२७२५	"	२६५३७	"
२०१९१	"	२९३४१	"
२७१५३	"	१९९५१	"
२०३०१	"	३०२१०	"
२०३२२	"	२५५२४	"
२९०६३	"	२९२८१	"
२९३८९	"	२०५३३	"
२९४६६	"	२९३३२	"
२०५१०	"	२९१३४	"
५६९९	"	१४४९७	"
२००४४	५)	२९७१८	"
१४७८३	६॥)	२३२९९	"

ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नम्बर	प्राप्त रक़म
२३२७७	६॥)	२१४४३	६॥)
२८३६५	"	२२३४३	"
३०१८८	"	२०४१३	"
२९४४६	"	२९५१७	"
२०३८१	"		

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों को दिसम्बर ३२ का अङ्क वी० पी० द्वारा पहले सप्ताह में भेजा जायगा। आशा है, वी० पी० स्वीकार कर बाधित करेंगे।

५७५ ५७९ ६३८ ६४५ ७०४ ९७२ ९८४ १०५९
१७३२ १७५६ १७६४ १७८४ १८१७ १८२७ १८५३
१८८३ १८८५ १९२३ १९२५ २०१५ २१५७ ३०९१
३११७ ३१२० ३१६८ ३१७० ३१८२ ३४५६ ३८९०
४६३१ ४८४७ ४९२६ ५०४९ ६०३३ ७२०२ ७२०५
७३५९ ७४०२ ७५३२ ७५४१ ७७४० ७७६६ ७८१८
७८६८ ११२१७ ११२५९ ११२६५ ११२७४ ११४२०
११४६३ ११५०७ ११७६० ११७९५ ११८४३ १२५६८
१२६४९ १४७५२ १५११० १५३०२ १५३१५ १५३६६
१५४५७ १५४६५ १५४६८ १५४६९ १५४७८ १५६२६
१५६६६ १५७०२ १५७३२ १५७५० १५७५२ १५७७९
१५७८६ १५७८७ १५७९४ १५७९६ १५७९८ १५८४८
१५८५८ १५८६० १५८६१ १५८७८ १५८९० १५८९१
१५८९८ १५९०१ १५९१० १५९९५ १६०७३ १६२४२
१६२५२ १७१४६ २१७८९ २१८८९ २१९४४ २२३८०
२२५५० २२५५७ २२५९० २२५९७ २२६०३ २२६०६
२२६१० २२६५६ २२६५८ २२६८२ २२६८७ २२६९०
२२६९१ २२६९३ २२७०३ २२७१५ २२७१७ २२७२६
२२७३६ २२७६१ २२७६७ २२७८५ २२७८८ २२७९३
२२८१३ २२८१७ २२८३६ २२९१३ २२९२८ २३०२८
२३०३७ २३०५५ २३१८९ २३२२२ २३२२६ २३२६४
२३२७३ २३२७४ २३२८२ २३३१३ २३३२० २३३४७
२३३६० २३३९९ २३४०२ २३४०३ २३४०७ २३४०९
२३४३५ २३४४५ २३४४९ २३४५५ २३४९५ २३५१८
२३५५२ २३५६९ २३५७९ २३६४५ २३६७७ २३७४५
२३७४६ २३७९५ २४२१७ २४४०९ २५४२१ २५५४७
२५५८३ २५८९९ २५९२४ २५९३७ २५९७९ २५९९२

२६००२ २६०७० २६५८६ २७०१६ २७०३८ २७०३९
२७०४२ २७०४६ २७०४७ २७०५९ २७०६१ २७०७१
२७०७३ २७०८० २७०८१ २७०८३ २७०८९ २७०९०
२७०९२ २७०९५ २७०९९ २७१०० २७१११ २७११२
२७११३ २७११५ २७१२२ २७१२३ २७१२४ २७१२५
२७१२६ २७१२९ २७१३२ २७१३६ २७१५६ २७१९७
२७२२७ २७२२९ २७२५५ २७२९३ २७२९४ २७२९९
२७३२२ २७३९९ २७४०२ २७४२० २७८०९ २८४२२
२८४२५ २८४३३ २८४८७ २८५२६ २८५४६ २८५५३
२८५९४ २८६१५ २८६१७ २८६९१ २८७१९ २८७६७
२९६३८ २९६३९ २९६६० २९६७८ २९६७९ २९६८०
२९६८१ २९६८३ २८६९१ २९६९२ २९६९४ २९७०४
२९७०५ २९७०८ २९७१५ २९७१६ २९७१७ २९७१८
२९७२३ २९७३१ २९७३२ २९७३८ २९७४९ २९७५०
२९७५१ २९७६१ २९७६५ २९७६६ २९७६७ २९७७०
२९७७४ २९७७५ २९७७६ २९७७७ २९७७८ २९७७९
२९७८० २९७८५ २९७८९ २९७९१ २९७९२ २९७९३
२९७९५ २९७९६ २९८०३ २९८०४ २९८०५ २९८१०
२९८१२ २९८१३ २९८१५ २९८२३ २९८२५ २९८३५
२९८४० २९८५२ २९८५३ २९८५४ २९८७३ २९८७४
२९९४० २९९६७ ३००५१ ३००६१ ३०१६१

निम्न-लिखित ग्राहक नम्बर के ग्राहकों को सितम्बर ३२ का अङ्क दुबारा भेजा गया है :—

३०५९९, २८८११, ५३१८, ३०३१३, २११०५
२५२०८ ३०९१५ २८५३९ ३००७६ १४९१८ २५९४४
१८९१७ २२३६३ २६३९२ ३०७४४ १४८७४ १८०९६
२७९३९ २०३२२ २४३८७ १३६६० १६२३ ४०१८
१४८७४ ३००१४ ३०८९९ ३००३४ २४५८३ २११७५
२६२९४ २९४६४ २१२३१ ११००९ ५९२७ ११८६९
३०५९० १३१६२ ५१८० ३१२०१ २४४७४ १३११०
३८४१ २५५९६ २६२६४ २९४५० १३७६९ २५८८७
२९७८५ १५९३५ ३११२२ २९९३७ २८१४१ ३०१४३
१६३७३ ३०२४१ १६१२२ १९७३६ २८२७० २९४७७
[illegible]२५७ ३१०१४ ३००२८ २९९७० ३१०६६ २९९६३
२५८१९ १७५२३ ३०३५८ ८९१०१ २९३९५ ९०४९

३०१२० २०२८८ २२८५० २६७९१ २२४८९ ३०८२६
२८३५७ १६८९४ २९४९८ ३०५५६ २९०९४ ३७५१
३०७५७

अगस्त ३२ का अङ्क दुबारा भेजा गया है :—

२१११८ २२३६३ १६२३ २९९०१ २९९३४ २८५५३
१६३७३

अक्तूबर ३२ का अङ्क दुबारा भेजा गया है :—

२०२४ १३११० २६३९२ १३७४३ ४८८३ ३८४१
१२२५१ १२८१६ २८४५१ ९३१० २९४९६ १६४७६
१५३६६ २४५८३ १३९५३ १७९६६ १८२४९ १३९६०
२१३६० ९७७५ ३११९६ ३१०१५ २७५०६ १३३३४
२९५३८ २८४०१ ३०३१६

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों के पते बदल दिए गए हैं :—

७९०४ ७७०७ २२३७५ २९०९२ ३०४५५ ३०७९६
३०६९० ११६२६ ३०४२५ २९९७० २९९५८ १८८९४
१५९७० २०५७४ ३०७९१ ३०८१६ ३०८१३ ३१२१७
२८३१ १६३४२ १२७५१ २१६२२ २९००२ २४३३४
२००८१ १७६७७ २१४९५ २१५२० ३०२४८ १८०३३
३१२६४ २०५०० २१३७६ २३६२ ३८६६ २७९६१
५०३ १३४७२ ४३७० ३०१११ १८१०६ १००२३
२२९१८ २७८९७ २४५८३ ५७२० ३०७५४ २३९४४
२३५१८ १३८६२ ८८८१

सूचना

हमें खेद है कि 'चाँद' द्वारा कई बार प्रार्थना किए जाने पर भी हमारे ग्राहक आपने पत्र-व्यवहार में अपना ग्राहक नं० लिखने की कृपा नहीं करते। इससे पत्रों को कार्यवाही करने में कितनी कठिनाई होती है, उसे हमी अनुभव करते हैं। आशा है, भविष्य में ग्राहकगण अपने ग्राहक नं० के साथ पत्र-व्यवहार करेंगे। जिस पत्र में ग्राहक नं० नहीं रहेगा, उसकी कार्यवाही होने में विलम्ब होने के उत्तरदायी हम नहीं होंगे।

पुनर्जीवन
मूल-लेखक—
महात्मा
काउण्ट टॉलस्टॉय
अनुवादक—
प्रोफ़ेसर रुद्रनारायण जी
अग्रवाल, बी० ए०
पृष्ठ-संख्या क़रीब ८००
यह रूस के महान् पुरुष काउण्ट लियो टॉलस्टॉय की अन्तिम कृति है। यह उन्हें सबसे अधिक प्रिय थी। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार कामान्ध पुरुष अपनी अल्प-काल की लिप्सा-शान्ति के लिए एक निर्दोष बालिका का जीवन नष्ट कर देता है; किस प्रकार पाप का उदय होने पर वह अपनी आश्रयदाता के घर से निकाली जाकर अन्य अनेक लुब्ध पुरुषों की वासना-तृप्ति का साधन बनती है, और किस प्रकार अन्त में वह वेश्यावृत्ति ग्रहण कर लेती है। फिर उसके ऊपर हत्या का झूठा अभियोग चलाया जाना, संयोगवश उसके प्रथम भ्रष्टकर्ता का भी जूररों में सम्मिलित होना, उसकी ऐसी अवस्था देख कर उसे अपने किए पर अनुताप होना, और उसका निश्चय करना कि
इस पतित दशा का एकमात्र वही
प्रायश्चित्त भी करना
हैं, औ
उद्रेक,
जो उसे सा
आँसू बहाइए
किस प्रकार
सजिल्द पुस्तक
चाँ
लिमिटेड, इला

छप रहो है ! छप रहो है !!

हृदयग्राही रोचकताओं का अपूर्व भण्डार ! — "पागल" की — औपन्यासिक कलाओं का अद्भुत चमत्कार !!

दिल की आग

उर्फ़

दिल-जले की आह

सात खण्डों में

यह उपन्यास नहीं, उपन्यासों का चक्रचूड़ामणि है। पुस्तक हाथ में लेकर छूटना तो अलग रहा, बार-बार पढ़ने पर भी तृप्ति नहीं होती। कभी रोंगटे खड़े हो जाते हैं, कभी होश उड़ जाते हैं! कभी कलेजा भर आता है, कभी आँसुओं की धारा बहती है, कभी हृदय कसमसा कर रह जाता है और बिना पढ़े किसी तरह भी चैन नहीं मिलता। कहानी ऐसी अपूर्व और अनोखी है और साथ ही ऐसी नवीनता और प्रवीणता से ढाली गई है कि अन्त तक उत्कण्ठा का हृदय बराबर धड़कता रहता है और पता नहीं मिलता आगे क्या होने वाला है। चरित्र-चित्रण और भाव-प्रदर्शन की ख़ूबियाँ कला को मुग्ध कर रही हैं, तो मानव-प्रकृति की गुत्थियाँ ज्ञान को भी दङ्ग किए हुए हैं। भावों की गहराई और बारीकियों पर स्वयं मनोविज्ञान मस्त है तो रहस्यों के कौतुक और चमत्कार पर साक्षात जादू और तिलस्म भी निछावर है। और ऐसा कि स्वाभाविकता दोनों हाथों से बलाएँ ले रही है। और तारीफ़ यह कि साहित्यिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक तथा [illegible] करने नहीं [illegible] है। इस रङ्ग, इस ढङ्ग, इस कोटी और इस चोटी का उ[illegible] कहीं भी ढूँढ़ने से न मिल[illegible]। यह वह उपन्यास है, जिसको समय भी नीचा [illegible] सकता और जो हिन्दी-साहित्य के लिए "बरं एको गुणी पुत्रो ×××" की [illegible]रितार्थ करता है। तभी इसके लेखक [illegible] को जानने के लिए 'चाँद' के पाठकों में [illegible] लगी थीं। हज़ारों की माँग आ चुकी है [illegible]भी-अभी ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा [illegible] दूसरे संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

पृष्ठ-संख्या लगभग ७००, मूल्य लगभग ५) रु०, स्थायी तथा 'चाँद', 'भविष्य' त[illegible] पुस्तक-माला के ग्राहकों से केवल ३।।।) रु० !

जो ग्राहक नहीं हैं उनके भी जो ऑर्डर १५ दिसम्बर तक पहुँच जायँगे, उन्हें भी पुस्तक पौने मूल्य में ही दे दी जायगी।

चाँद प्रेस लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

[illegible]shed for and on behalf of The Chand Press, Limited, by Shrimati Laksmhi Devi, [illegible]e Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone R[illegible], Chandralok—Allahabad.